सिक्ख इतिहास माला के अन्य पुष्प ।

प्रथम पुष्प ।

श्री गुरु नानकदेव जी—अब तक प्रकाशित जीवनियों में यह जीवनी एक विशेष स्थान रखती है और बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। मूल्य १॥)

द्वितीय पुष्प ।

सिक्खों के गुरु—श्रीगुरु अङ्गददेव जी द्वितीय गुरु से लेकर नवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुर जी तक अर्थात् आठों गुरुओं का जीवन चरित्र। मूल्य १॥) रु०

तृतीय पुष्प ।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी—यह पुस्तक आप के हाथ में है। मूल्य १॥) रु०

चतुर्थ पुष्प ।

वीर ख़ालसा—श्री गुरुगोविन्दसिंह जी से लेकर वर्तमानकाल तक। यह अनुपम ग्रन्थ न केवल सिक्खों के मनन करने की वस्तु है परन्तु हिन्दु मात्र को इसे पढ़कर शक्ति-संञ्चय करना चाहिये। बलिदान के जीते जागते चित्र। मूल्य १॥) रु०

अपूर्व प्रतिकार—प्रतिकार किसे कहते हैं? उसका आदर्श कितना उच्च है देखना हो तो इस पुस्तक को पढ़िये और अपने जीवन को स्वर्गीय आभा से भरिये। मूल्य ≈) आना

सिक्ख इतिहास माला का तृतीय पुष्प—१

 १ ओंकार सद्गुरु प्रसाद।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

और

अमृत-वाणी।

दी यूनाइटेड सिक्ख मिशनरी सोसाइटी,

जनरलगंज, मथुरा।

१०००] १९३५ ई० [मू० ।॥)

पूज्य माता जी! आपने ही सर्व प्रथम मेरे हृदय में श्री गुरु चरणों में भक्ति भावना तथा श्रद्धा का बीज वपन किया था। उसी के फल स्वरूप यह तुच्छ भेंट लेकर आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ।

—जसवन्तसिंह

दो शब्द ।

इस पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन तथा उनके विचारों और शिक्षाओं में सामञ्जस्य दिखाना है। हिन्दी भाषा में अभी तक एक भी ऐसी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई जिसके द्वारा हमको गुरुजी के जीवन की सच्ची स्थिति मालूम हो सके। उनके जीवन में उन सभी सद्‌गुणों तथा मानवी विभूतियों का सम्मिश्रण मिलता है जिनको देखकर चकित होजाना पड़ता है। वे अद्वितीय थे और इसी कारण उनके बारे में जितने भी कथानक प्रचलित हैं उन पर एक दम विश्वास करने को जी नहीं चाहता। और यही कारण है कि ऐसे सज्जनों के द्वारा लिखित उनका जीवन चरित्र पक्षपातपूर्ण भ्रमोत्पादक तथा अपूर्ण है।

अधिकांश मनुष्यों का मत है कि गुरु गोविन्दसिंह केवल एक वीर योद्धा होगये हैं और उन्हों ने अपने जीवन में शान्ति प्रिय सिक्खों को प्रथम श्रेणी के योद्धाओं में परिणत कर दिया। यद्यपि यह निर्विवाद सिद्ध है कि वे भारतवर्ष के एक बड़े ही योग्य वीर योद्धा थे परन्तु हमको यह स्मरण रखना चाहिये कि वीरता का बाना जो उन्हों ने धारण किया था वह केवल उन अनेक बानों में से एक था जिनको वह अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिये परमावश्यक समझते थे। उन्हों ने स्वयं ही कहा है—

हम इह काज जगत मो आए। धर्म्म हेत गुरुदेव पठाए ॥
जहाँ तहाँ तुम धर्म्म बिथारो। दुष्ट दोखियन पकरि पछारो ॥
इहै काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधू सभ मनमं ॥
धरम चलावन सन्त उबारन। दुष्ट सभन को मूल उपारन ॥

वह समय भारत वर्ष के लिये बड़ी कठिन परीक्षा का था। औरंगजेब की कट्टर धर्म प्रियता के कारण हिन्दु समाज की बड़ी दुर्दशा थी। लोगों का विचार है कि गुरु गोविन्दसिंह जी ने इसी कारण औरंगजेब से लोहा लिया। यहाँ वे भूल करते हैं। जहाँ मुगलों के राज्य काल में प्रजावर्ग को बहुत सी राजनैतिक असुविधायें थीं, पुजारियों और मौलवियों ने अपने देशवासियों को धार्मिक दासता की शृंखला में जकड़ रक्खा था। जहाँ राजा अपनी प्रजा को कीड़े मकोड़ों की तरह समझता था, धर्मध्वजा धारी नेतागणों ने करोड़ों लोगों को अस्पृश्य क़रार दे दिया था। राज नैतिक अत्याचार का दौर दौरा कभी कभी ही और इनेगिने लोगों के साथ था परन्तु धार्मिक अत्याचार बराबर प्रतिदिन बहुत काल तक होता रहा—धर्म चौके चूल्हे, ग्राम कूपों देवालयों और शतसः स्थानों पर अपने अत्याचार का डंका बजाता रहा। इससे बढ़कर तो कदाचित ही कोई दूसरा पाप होगा जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ कर सकता है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने स्वयं ही कहा है—

पाप करो परमारथ कै जिह पापन ते अति पाप लजाहीं।

समस्त पापकार्य सुसंगठित था। मुग़लों ने राजनैतिक पाप को सुसंगठित किया था और पुजारियों ने धार्मिक पाप को। गुरु गोविन्दसिंह जी को इन दोनों ही पाप संगठनों का सामना करना पड़ा और इसी कारण इन्हों ने सिक्खों का संगठन किया।

गुरुजी को मुग़लों और हिन्दु राजाओं की पूर्ण शक्ति का मुक़ाबला करना पड़ा और आवश्यक समझ कर ही उन्होंने मुक़ाबला किया भी। लेकिन गुरुजी का यह कार्य्य कोई ऐसे महत्त्व का नहीं था जिससे कि उनका नाम अमर होता। गुरु जी की

वास्तविक महत्ता तो समस्त मानव समाज को उठाने में है। उन्हों ने पुनर्वार नये सिरे से मनुष्य को चरित्रबल दिया और ऐसा बल दिया, उसको ऐसी शक्ति से भर दिया, जिसके द्वारा मुट्ठी भर आदमी हजारों आदमियों का कार्य्य सम्पन्न कर सकें—पाप की जड़ में मट्ठा डालदें और पुण्य की जड़ को हरा रक्खें।

उन्हों ने मनुष्य को उठाने के लिये मन्त्रों और मौजजों का सहारा नहीं लिया बल्कि चरित्र बल को ही सर्वस्व समझा। क्यों कि चरित्र बल ही कठिनाई के समय में काम आता है। भलाई बुराई और पाप पुण्य की समस्याओं को सुलझाने के समय चरित्र बल का ही आश्रय लिया जाता है।

जीवन में बहुत से ऐसे अवसर आते हैं जब हमको तुरन्त ही अपने कार्य में अग्रसर होना पड़ता है, सोचने का समय नहीं होता। पाप के सामने आते ही तुरन्त उसको दबोच देना पड़ता है। पुण्य कार्य करने का अवसर आते ही, तन मन धन की बलि देदेनी होती है। ऐसे सुवर्ण अवसरों पर ही मनुष्य की परीक्षा होती है। जितना ही मनुष्य में चरित्र बल होता है उतनी ही उसको सफलता मिलती है। इसी लिये भारत वर्ष के उस संकट समय में एक योग्य नेता की तरह, एक ऋषि की दूरदर्शिता से गुरु गोविन्दसिंह जी ने समझ लिया कि यदि हम को विजय-श्री प्राप्त करनी है तो हमारे पुरुषों में चरित्र बल भर देना होगा जो विद्युत वेग से कार्य करे, लोभ को विचार में बैठने का अवसर ही न दे। इसी कारण गुरुओं ने कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी जिसमें चरित्र बल निर्माण के नियम दिये हों परन्तु पुश्त दर पुश्त उन्हों नें लोगों को बुद्धि और अनुभव के वह पाठ सिखाये जिससे कि एक समय ऐसा आवे कि लोगों में चरित्र

घल फूट फूट कर भरा हुआ मिले। इसी लिये सिक्ख धर्म में एक गुरु नहीं है प्रत्युत दस गुरु हैं।

गुरुओं ने सिखाया कि समस्त मानव जाति एक है और मनुष्य चाहे वह किसी जाति, वर्ण तथा धर्म का हो अन्त तो गत्वा मनुष्य ही है और इसी लिये उसका आदर तथा सम्मान करना चाहिये—

"मानस की जाति सबै एकै पहचानबो।"

ऐसी शिक्षा में जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता को भला कहाँ स्थान? मनुष्य मनुष्य समझा जाने लगा। जो सदियों से अपने को नीच, पतित तथा दास समझते आये थे उनमें नई आशा, नये साहस का सञ्चार होने लगा और वे भी अपने को मनुष्य की कोटि में समझने लगे।

आत्म सम्मान की वृद्धि हुई। इसकी सहायतार्थ गुरु जी ने भी उन सभी रुकावटों को अलग कर दिया जिससे मनुष्य अपनी मनुष्यता को खो बैठा था। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं था। मनुष्य इतना दुर्बल प्राणी है कि जरा से प्रलोभन से ही मारा जा सकता है। पाप का सामना करने के लिये अपने बल चाहिये। आदर्श पूर्ण जीवन के लिये पूर्ण शक्ति की अपेक्षा होती है। उस शक्ति की प्राप्ति के लिये किसी ने ज्ञान को उत्तम कहा है, किसी ने तपस्या और किसी ने त्याग की महिमा गाई है, परन्तु गुरु गोविन्दसिंह जी ने दूसरे ही मार्ग का अवलम्बन लिया। वह इस बात को भली भांति जानते थे कि मनुष्य के लिये पाप का सामना करना और परोपकार में तत्पर होना कोई सरल कार्य नहीं है परन्तु यदि उसमें किसी दूसरे के

व्यक्तित्व की विद्युत शक्ति भर दी जा सके तो वह सत्कार्य्य करने की क्षमता प्राप्त कर सकता है।

एक सिक्ख के लिये यह अनिवार्य है कि वह अपने को गुरुशक्ति से पूर्ण समझे और तबही वह अपने में अनन्त शक्ति का अनुभव कर सकेगा। एक सिक्ख जिसका हृदय शुद्ध है और जो अपने गुरु में श्रद्धा रखता है वह महा शक्ति मान है और यदि वह अपने में गुरु गोविन्दसिंह जी की अद्वितीय व्यक्तित्व का जिस में विद्युत शक्ति की स्फूर्ति थी अनुभव कर सके तो वह मनुष्य नहीं देवता है। वह ख़ालसा कहलाने का अधिकारी है, गुरु के व्यक्तित्व का प्रतिरूप है। गुरुजी ने कहा है कि मैं ही खालसा हूँ, उसी में मेरा अस्तित्व है—

खालसा मेरो रूप है खास। खालसे में हौं करों निवास॥

जिसका केवल सिक्ख धर्म में विश्वास है वह अकेला ही है लेकिन जब वह अपने को स्वयं गुरु गोविन्दसिंह की शक्ति से पूर्ण समझता है वह अपने को सवालाख के बराबर समझता है। परिवर्तन केवल उसकी शारीरिक शक्ति में ही नहीं होता परन्तु वह होता है उसकी मानसिक आध्यात्मिक शक्तियों में भी। उसकी प्रकृति में इतना परिवर्तन हो जाता है कि चाहे उसके चारों ओर हजारों मर कट जायें परन्तु वह युद्धस्थल में अन्त तक अकेला ही लड़ता रहेगा और पराजय स्वीकार नहीं करेगा, वह अपने को पूरी फ़ौज के बराबर समझेगा।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने जनता को अपनी ही शक्ति से। अपने ही व्यक्तित्व से भर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि

जनता में कुछ विशेषताओं का सञ्चार हुआ। आध्यात्मिक और मानसिक परिवर्तनों के कारण बाह्य परिवर्तन भी बहुत हुआ। शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि हुई और सच्चाई और ईमानदारी के कारण लोगों का अधिक सम्मान होने लगा।

इसके साथ ही साथ उनमें एक गुण और आ गया। वे हर एक कार्य के योग्य समझे जाने लगे। उनको धर्मादेश था कि वे शरीर को सुदृढ़ रक्खें—उनमें बल हो, स्फूर्ति हो, स्वच्छता हो, उनका मानसिक स्वास्थय ठीक रहे। चाहे वे कैसी ही आपत्ति में क्यों न हों, कैसा ही संकट का सामना क्यों न हो, उनको प्रफुल्लित रहने का धर्मादेश था। उनको अपना जीवन ऐसे सांचे में ढालने का आदेश था कि इस लोक और परलोक दोनों में ही वे सुख पूर्वक रहें। उनको ईश्वर दत्त सब शक्तियों का सदुपयोग करने का आदेश था।

गुरुजी ने पुराने ढकोसलों के पुजारी साधु के स्थान में नवीन स्फूर्ति, नवीन आदर्श, नवीन दृष्टिकोणयुक्त साधु महात्माओं की सृष्टि की। सिक्खों को आत्म समान से पुष्ट किया, ईश्वर के प्रेम से परिपूर्ण किया। निःस्वार्थ पूर्ण जीवन व्यतीत करने का कठोर आदर्श उनके समक्ष उपस्थित किया। जाति को उन्नति की ओर लेजाने वाले पुरुषों की नवीन सृष्टि की। उनमें दृढ़ उत्साह, अथक धैर्य्य भरा। उनको दुर्दमनीय बनाया। वह चट्टान की तरह अटल, धैर्ययुक्त स्थिर रहेगा चाहे दुख उसको रेजा रेजा क्यों न करदे।

गुरुजी ने संगतों का भी संगठन किया और उनको भी अपने व्यक्तित्व से भर दिया। गुरुजी ने केवल व्यक्तियों की ही सृष्टि नहीं की परन्तु ऐसे मानव समूहों तथा समाजों की

सृष्टि की जो मनुष्य मात्र की सेवा में अपना जीवन न्यौछावर करदें, जिनके द्वारा सद्गुण संसार में फैलें। उन्होंने सेवाहि परमो धर्मः का आदर्श उपस्थित किया।

संगत का संगठन गुरुजी ने अपने ही जीवन काल में करा दिया और जो व्यक्ति उसके सदस्य थे वे इतने योग्य थे कि उनको ही गुरु के स्थान पर माना जाने लगा और वे पन्थ कहलाने लगे। गुरु गोविन्दसिंह जी के पश्चात पन्थ ने ही गुरु का स्थान लिया और व्यक्ति गत कोई भी गुरु न बना। गुरुजी की प्रेरणा से अपने को पूर्ण करने के लिये उन्हों ने धर्म पुस्तक श्री गुरु ग्रन्थ साहब जी का आश्रय ग्रहण किया।

अनेक प्रकारेण सिक्ख धर्म सुसंगठित हुआ। उसका अस्तित्व किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं रहा। उसको किसी के आश्रम की आवश्यकता नहीं रही। मुग़लों ने सिक्खों का अस्तित्व ही मिटाना चाहा था। प्रत्येक सिक्ख के सिर के लिये ८०) रु० का इनाम भी दिया परन्तु सब निष्फल। जिस समय गुरुजी के पास कुछ भी नहीं रहा उस समय भी उन्हों ने अकेले शहंशाह का मुक़ाबला किया और "ज़फरनामा" लिखा जिसके पढ़ने से स्पष्ट है कि ऐसी निस्सहायावस्था में भी गुरु गोविन्द सिंह जी का कितना बड़ा हौंसला था, हिम्मत थी। प्रत्येक शब्द से वीरता टपकी पड़ती है। प्रत्येक वाक्य लाञ्छन की अग्नि से प्रज्वलित है। सर्वस्व छिन गया है पर क्या ही शौर्य्य है—"क्या हुआ जो तूने मेरे चार पुत्र मार लिये हैं। अभी मेरा पाँचवाँ पुत्र 'खालसा' एक बड़ा जहरीला साँप जिन्दा है। यह क्या बहादुरी है कि चिन्गारियों को बुझाकर प्रचण्ड अग्नि को जागृत किया जाय।"

यह गुरु गोविन्दसिंह जी ही का काम था कि उन्हों ने ऐसे विकट संकट के समय में भी सिक्खों का संगठन किया। लोगों ने गुरु गोविन्दसिंह जी को समझने का प्रयत्न नहीं किया है अन्यथा वे देख लेंगे कि उनके से व्यक्तित्व का दूसरा महा पुरुष मिलना मुश्किल है।

यह पुस्तक इसी विचार से प्रेरित होकर प्रकाशित की जा रही है कि पाठक स्वयं देखें, समझें, विचारें कि उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह जी की ओर से तटस्थ रहकर उनके साथ, अपने साथ और मानव समाज के साथ कितना घोर अत्याचार किया है।

इस पुस्तक के तैय्यार करने में मैंने समस्त प्रकाशित तथा उपलब्ध साहित्य से सहायता ली है। विशेष धन्यवाद के पात्र 'कलगीधर चमत्कार' पुस्तक के रचयिता हैं जो पञ्जाबी साहित्य का अनुपम रत्न है। प्रस्तुत पुस्तक के अन्त में मैंने कुछ गुरुजी की अनुपम कवितायें भी जोड़दी हैं। हिन्दी भाषा भाषी सज्जनों के लिये यह सौभाग्य कदाचित प्रथम वार ही प्राप्त हुआ होगा कि वे इन कविताओं का रसास्वादन करें। वे स्वयं देख लेंगे कि इनमें कितना ओज तथा कितना रस भरा है।

अन्त में मैं उन सब मेरे अनेक मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिनकी कृपा पूर्ण सहायता से यह ग्रन्थ रचा जा सका। विशेष धन्यवाद मैं अपने जैपुर के मित्र सरदार अजीतसिंह जी को देता हूँ जिनके अमूल्य परामर्शों के बिना कदाचित यह पुस्तक प्रकाशित ही न हो पाती।

जसवन्तसिंह।

❀ विषय सूची ❀

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

ओवति कुदावति कुरंग ज्यों तुरंग को।

तुम्हरी महिमा अपर अपारा ।
जाँका लहेउ न किनहूँ पारा ॥
देव देव राजन के राजा ।
दीन दयाल गरीब निवाजा ॥
कहा बुद्धि प्रभु तुच्छ हमारी ।
वर्न सकै महिमां जु तिहारी ॥
हम न सकत करि सिफ़्त तुम्हारी ।
आप लेहु तुम कथा सुधारी ।

—"विचित्र नाटक"

छाय जाती एकता अनेकता विलाय जाती,
धाय जाती कुचलता कतेबन कुरान की।
पाप ही प्रपक्क जाते धरम धसक जाते,
बरन गरक जाते सहित विधान की॥
देवी देव देहरे सन्तोष सिंह दूर होते,
रीति मिट जाती कथा वेदन पुरान की।
श्री गुरु गोविन्द सिंह पावन परम शूर,
मूर्ति न होती जो पै करुणा निधान की॥

१ ओंकार श्री वाहगुरु जी की फ़तह ॥

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

—:❖:—
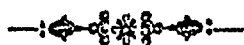
१—अवतार कथा ।

वह देखिये एक हिमाञ्चल धार के साथ लगता हुआ तिब्बत के हिमाच्छादित पर्वतों में एक हेमकूट नामक स्थान है। सात चोटियाँ सुशोभित हो रही हैं। सातों ही बर्फ़ के टिकाव से मानों चांदी के कलश बन रहे हैं। प्रातः काल का चन्द्रमा लुप्त हो रहा है। आकाश आज निर्मल है और सूर्योदय की लाली छा गई है। इस लाली का अक्स हेमकूट की सातों चोटियों पर पड़ रहा है जिससे देखिये उनका रङ्ग कैसा होगया है। अब सूर्य्य-नारायण ने भी अपना मुख बाहर निकाल लिया है। अब देखिये सातों चोटियाँ हेम की मानिन्द चमक उठी हैं। सूर्य्य की किरणों का सातों चोटियों पर पड़ना और फिर आपस में एक दूसरी चोटी पर से लौट कर फिर सातों पर पड़ना, यह दृश्य सोने की चमक की झलक का नज़ारा आँखों के आगे बाँध देता है। इसी से इस स्थान को हेमकूट कहते हैं।

बर्फ़ की चोटियों के नीचे की ओर एक ढलान के साथ लगता हुआ एक छोटा सा समस्थल है जहाँ एक पानी का

सोता निकला हुआ है। करतार के कौतुकों का नमूना देखिये कि इस हिमपूर्ण अत्यन्त शीतल स्थान में यह सोता गरम पानी दे रहा है। यहीं एक मनमोहनी वाटिका बनी हुई है जिसमें एक छोटी सी कुटिया है। इस कुटिया के अन्दर एक लम्बे पतले डील के तपस्वी नेत्र मूँदे समाधिस्थ बैठे हैं। इनके शरीर पर मांस नाम मात्र को ही है, सूक्ष्म जैसा पिंजड़ा ही प्रतीत होता है, ऊपर देखने मात्र ही त्वचा है, परन्तु कान्ति में इस दशा में भी आभा है। तपस्वी जी ने बड़ा उग्र तप किया है और सदा ध्यान में लवलीन रहते हैं, परन्तु अभी उस अरूप के रूप में लीन होने की इच्छा बाक़ी है। देखिये तपस्वी जी की श्रुति अब चली है:—

> चली पूतरी लोन की थाह सिन्ध की लैन।
> नाथ आप आपहिं भई पलट कहै को बैन?

रस और रंग के देश होती हुई श्रुति आनन्द घर पहुँची, फिर अनन्त और अन्त की सीमा पर पहुँची। पहिले कई बेर पहुँची थी परन्तु आज अनन्त में से कोई झोका लगा, ऐसा लगा कि अन्त की अणी में से निकाल अनन्त में लेगया। अब कोई क्या पता बताए? अनन्त का पता अन्त वाली जिह्वा से बताना और अन्त वाले कानों द्वारा सुनना कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है, परन्तु हमारी समझ के लिये उस दशा का वर्णन कुछ यों हो सकता है:—

जाने वाले महापुरुष तपस्वीजी को यह अनुभव हुआ कि अनन्त कोई निर्जीव वस्तु नहीं अर्थात् जड़ पदार्थ नहीं किन्तु सजीव है और स्वयं प्रकाशमान चेतन्यता है। वह अनन्त कोई ज्ञान रहित न समाप्त होने वाला समय नहीं परन्तु चेतन्य

शरीर वाला मूर्ति-अमूर्ति, अकालमूर्ति है। वह अनन्त कोई एक रस रहने वाली मुर्दा तत्वों की दशा वा अदशा नहीं पर अयोनि, अनादि, अनन्त, जीवन रूप आनन्द स्वरूप है। परन्तु ऐसा नहीं जैसा हम समझते हैं किन्तु ऐसा जैसा हम नहीं समझते पर वह अनन्त आप समझता है। निर्विकार एक रस उसमें गई श्रुति को मानो अचम्भा हो रहा है कि परब्रह्म में उसका ज्ञात उसके आनन्द प्रेम के बिना कुछ और खेल भी है जिससे वह अक्रिय का अक्रिय है परन्तु फिर सर्वक्रिया उसही से हैं और जिस खेल द्वारा वह निरङ्ग है और फिर भी सहस्र नैनों वाला चोजी होकर सारे नैनों की ज्योति वह आप है। अलेप है परन्तु सारा आडम्बर उससे और उसमें ही है।

तपस्वीजी देखते हैं कि अनन्त में यह चमत्कार है परन्तु फिर अनन्त अनन्त ही है। वह अन्त में नहीं आता। उसके कार्य्य और विचार भी अनन्त की एक गति हैं जो हमारे विचार से परे हैं।

इस चमत्कार का नाम है "आयसु"। इस समय तपस्वीजी को सुध आई कि पृथ्वी के बुद्धिमान मनुष्य कैसे सीमाबन्ध किया करते हैं। आप सीमा वाले होकर कैसे असीम के कार्य्य और विचारों को अपने कार्य्य और विचारों के तुल्य मान लिया करते हैं। यह जो आप अनन्त है इसके कार्य्य और विचार भी अनन्त ही हैं। जैसे इसको समझना और कहना असम्भव है तैसे ही इसके कार्य्य और विचारों को कहना और समझना असम्भव है। यदि पृथ्वी के बुद्धिमान पास ही देखें तो मालूम होगा कि समुद्र जो

एक जल स्वरूप है उसमें भी पृथ्वी की भान्ति स्रोत चलते हैं। उस एक ही रूप स्रोत प्रवाही समुद्र में अनेक प्रकार के रौ चलते हैं परन्तु हैं सब समुद्र रूप ही। इसी प्रकार इस अनन्त में सर्व अनन्त ही अनन्त है। परन्तु देखिये इसमें एक खेल "आयसु" है और वह भी अनन्त ही है।

इस अचम्भे से आगे तपस्वीजी देखते हैं कि यह "आयसु" आपको कह रहा है कि तुम मर्त्यलोक में जाओ और वहाँ जाकर आदर्शकला का मनुष्य बनाओ, आग बनकर बताओ, बताकर सिखाओ, सिखाकर "ख़ालसा" पैदा करो जो सबसे ऊँची कला के आदर्श का नमूना हो। मैंने मनुष्य को जो पृथ्वी का सरदार बनाया था वह नहीं रहा, तुम नमूना होकर बताओ, गुरु होकर सिखाओ, पिता होकर अपने बल द्वारा पालन करो तो जो पृथ्वी सुखी हो।

यह आज्ञा पाकर तपस्वीजी मानों घबराए। जन्मों तप करके महाकाल अकाल की आराधना करके आज अकाल, अदेश, अनन्त पूर्ण में विश्राम मिला परन्तु आज आते ही अकाल, अनन्त में से आयसु का चमत्कार कहता है "मर्त्यलोक जाओ और काम करो," क्या? आदर्श मनुष्य पैदा करो। जिसके पैदा करने में बड़े बड़े लोग असफ़ल हुए, वह मैं करूँ? परन्तु मैं कैसे करूँ? हैं......! परन्तु आज्ञा लौटाना भी वश में नहीं, धर्म नहीं, सम्भव नहीं, उचित नहीं। अच्छा देखें तो सही मर्त्यलोक में हो क्या रहा है।

तब तपस्वीजी ने अपनी सर्व दृष्टि दौड़ाई और क्या देखा कि एक ओर भारतवर्ष है जहां औरङ्गज़ेब का राज्य है, प्रजा हिन्दू मुसलमान और अनेक मत मतान्तों की है। अन्ध-

कार छा रहा है, अविद्या फैल रही है, हिन्दुओं में डर, वहम और कायरता छा रही है। मुसलमानों में भ्रम, अन्ध विश्वास अत्याचार, निर्दयता जारी है। दीनदारों और पंडितों में झगड़े फैले हुए हैं, सृष्टि निर्बल है।

औरङ्गज़ेब दरबार में बैठा है, बाप क़ैद में डाला हुआ है। बड़े भाई दारा का सर काट कर पेश होता है। आज्ञा देता है कि ख़ूब धो कर मुँह साफ़ करो, फिर पहिचानता है कि हाँ ठीक दारा ही है और कलेजे में ठण्ड पड़ती है। औरङ्गज़ेब ने विजय पाली, सारे भाई जीत लिये और बादशाह हो गया। शुक्राने में देहली की मसजिद बनी है। उधर भाई और रिश्तेदार क़त्ल किये जा रहे हैं, इधर मसजिद बनाई जा रही है कि अल्लाह का शुक्रिया है!!! हिन्द का पादशाह फ़क़ीरी वेष में मसजिद आता और इमाम का काम करता है, परन्तु हाँ जहाँ एक ओर उसका एक हाथ दुआ के लिये ख़ुदा की ओर उठ रहा है, वहीं दूसरी ओर उसका दूसरा हाथ अपने रिश्तेदारों के क़त्लनामों पर हस्ताक्षर कर रहा है।

औरङ्गज़ेब की आज्ञानुसार हिन्दुओं पर जज़िया लग रहा है। मूर्ति पूजा के त्योहार बन्द कर दिये गए हैं और हिन्दुओं के त्योहारों पर मेले भी बन्द कर दिये हैं। सड़कों पर महसूल बढ़ा दिया है। राग, नाच, भाण्ड और महलों के गवैयों के विरुद्ध आज्ञा होगई है। कवि और ज्योतिषी हटा दिये गए हैं। कविता रचनी या पढ़नी बन्द करदी गई है।

औरङ्गज़ेब मसजिद को जा रहा है, हिन्दू बाज़ारों में विनती करने के लिये खड़े हैं कि जज़िया माफ़ किया जाय। हिन्दुओं की इस क़दर भीड़ है कि बाज़ार खचा खच भरे पड़े

हैं, रास्ता विलकुल नहीं है परन्तु औरङ्गज़ेब आज्ञा देता है:— "कूच"— बस हाथी और घोड़े दौड़ पड़ते हैं और प्रजा को बड़ी निर्दयता से कुचलते हुए निकल जाते हैं। *

इस प्रकार के घोर अत्याचारों को तपस्वीजी ने बात की बात में देख लिया और समझ गए कि एक ओर मनुष्य भयभीत होकर और वैरभाव द्वारा निर्वल और कायर बने हुए हैं और दूसरी ओर तृष्णा ने कुछ मनुष्यों को निर्दयी और अत्याचारी बनाया हुआ है। आदर्श या ईश्वरीय मनुष्य कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। एक पूर्ण वा आदर्श मनुष्य का नमूना जैसा परमेश की प्रकृति चाहती है बना दिखाना यह महा कठिन कार्य्य तपस्वी जी ने अपने सामने देखा। प्रजा के मनों का चित्र, कमज़ोरी, गिराव और बादशाह के मन का चित्र, संकोर्णता, कठोरता, अत्याचार आदि जब देखा तो तपस्वीजी सोच में पड़ गए कि अनन्त की प्राप्ति पर कैसा कठिन कार्य्य हमारे बट में आ गया है। परन्तु "आयसु" का उत्साह आपको तैयारी में लारहा है।

अब तपस्वीजी ने उस अनन्त में क्या देखा कि एक अत्यन्त आश्चर्य जनक सुन्दर शहर है जिसकी उपमा लिखनी मनुष्य की लेखनी से परे है क्योंकि इसकी बनावट ऐसे पदार्थों द्वारा हुई हुई है कि जिनको मनुष्य समझ ही नहीं सकता। इस शहर के घर कभी गिरते, टूटते वा पुराने नहीं होते। दिन और रात का वहाँ पता ही नहीं और न दुःख दर्द का ही नाम है। इस शहर का नाम "बेग़म पुरा" है। कोई चोर जूआरी यहाँ नहीं बसता, किसी पुलिस चौकी का

* एलफ़िन्स्टन, पृष्ट ४६४

पहरा नहीं। एक से एक अधिक सुन्दर महल वा मन्दिर साधु पुरुष की वृत्ति न्याईं अडोल खड़े हैं। फिर यह मकान ऐसे हैं कि जिस समय जैसा सोचो वैसे ही बन जाते हैं। यह मकान ईंटों पत्थरों के नहीं परन्तु किसी विचार से भी अधिक सूक्ष्म वस्तु के बने हुए हैं। इन घरों में रहने वाले धर्ममूर्ति हैं जिनके चेहरों पर ऐसा प्रकाश है कि जैसा सूर्य्य का भी नहीं होता। उनके हृदय वसन्त ऋतु के आकाश की भान्ति निर्मल सुगन्धित और शुद्ध हैं। इनके तन पर प्रेम के वस्त्र हैं। कोई पुरुष नङ्गा नहीं दिखाई पड़ता। कपड़े हमारे जैसे नहीं पर किसी प्रकाश जैसी वस्तु के बने हैं। इनके रंग अजीब और इतनी तरह के हैं कि हमने कभी उतने रंग देखे ही नहीं। चमक दमक अद्भुत है। रोटी दाल सब्ज़ी की यहाँ बू भी नहीं, नाम रस और कीर्त्तन नामक एक पदार्थ है जो इन लोगों का आधार है। वैर विरोध को यहाँ स्थान नहीं। जगह जगह ऐसे सुन्दर फुव्वारे अनोखी फुलवाड़ियों में सजे हुए छूट रहे हैं कि जिनका सुहाना दृश्य मन को मोहित करने से नहीं रुकता। परन्तु यह फुव्वारे और पानी और फूल हमारी पृथ्वी जैसे नहीं हैं, किसी अनोखी वस्तु के बने हुए हैं। फूल वनस्पति अनोखी हैं। फूल तोड़ लीजिये फिर आपके हाथ में भी फूल और पीछे टहनी पर भी फूल दीख पड़ेगा। कोई वस्तु वा जीव जन्तु यहाँ ऐसा नहीं जिसको कभी मृत्यु छेड़ सकती हो।

इस अद्भुत शहर में और इससे भी परे और अपार एक अति सुन्दर महल है जिसकी इमारत ऐसे दिव्य जवाहरात द्वारा बनी हुई है कि जिनकी सुन्दरता आँखें झेल नहीं सकतीं। सब दीवारों में ऊपर से नीचे तक हीरे पन्नों से भी अधिक अच्छे,

सूक्ष्म और अमूल्य पत्थर जैसे रत्न लगे हुए हैं। "कारीगर" की न भूल करने वाली बुद्धि ने इसको ऐसा सजाया है कि देखते ही अक्ल दंग हो वहाँ की वहीं रह जाती है। इसके अन्दर ऐसा प्रकाश है कि जो दीवारों को भी पार करके और बाहर आ चहुँ ओर रङ्ग रङ्ग का उजाला दे रहा है। मानो दीवारें शीशे से भी अधिक पारदर्शक हैं। पास जाने से दीवारों में से ऐसी सुगन्धि आती है कि जिसके असर से वृत्ति दसवें द्वार चढ़ जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सूर्य्य की किरणें चारों ओर पसर कर अनेकों धर्तियों को प्रकाश, गर्मी और तेज का दान करती हैं और जानदार जीवों को उत्पत्ति और वृद्धि करती हैं, तैसे ही इस महल के प्रकाश की किरणें ब्रह्माण्डों में फैलकर अनेकों सूर्य्यों को गर्मी, तेज, जीव सत्या; चन्द्रमाओं को प्रकाश, शीतलता; पृथिवियों को फलने फूलने की शक्ति; जीवों को जीव प्रतिपालना और आत्मिक जीवोंको आत्मिक सत्या प्रदान करती हैं। सारे संसारों में जो कुछ है सब इन्हों के बल के आधार पर ही है। इस महल को उस देश के लोग "स्वरूप" कहकर पुकारते हैं। इस महल की ठीक उपमा इस शब्द में है:—

सूख महल जाके ऊच दुआरे ।
तामहि वासहि भगत पिआरे ॥ १ ॥
सहज कथा प्रभु की अति मीठी ।
विरलै काहू नेत्रहु डीठी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
तहि गीत नाद अखारे संगा ।
ऊहाँ संत करहि हरि रंगा ॥ २ ॥
तहि मरण न जीवन शोक न हर्षा ।
साच नाम की अमृत वर्षा ॥ ३ ॥ —आदि ग्रन्थ ।

जब तपस्वीजी आगे बढ़े तब इस महल का दर्वाज़ा खुला और तपस्वीजी को मानों अन्दर आने का इशारा हुआ। अन्दर गए तो क्या देखा कि जैसे पौष की अँधेरी परन्तु निर्मल रात्रि को आकाश में करोड़ों तारे चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं, उन तारों की गिन्ती से करोड़ों गुना अधिक तारे जिनका, प्रकाश करोड़ों सूर्यों से अधिक था, उस महल की छत्त के साथ जड़े हुए ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों कड़ियों की जगह यह अभौतिक तारे ही डाले गए हैं। फ़र्श ऐसा आश्चर्य-जनक था कि जैसे हमारी दुनियाँ में पूर्णिमा के चाँद की चाँदनी का बिछाव किसी पारे कीसी पृथ्वी पर बिछा हुआ हो। और जो जो पदार्थ वहाँ थे वह ऐसे अनोखे थे कि न कभी पृथ्वी पर देखे और न हमारी बोलियों में उनके नाम हैं और न प्राणी मात्र की ऐसी समझ है जिससे कि उनके स्वरूपों का ठीक वर्णन कर सके और न हमारी बोली में ऐसे पद ही हैं जिनके द्वारा उनका वर्णन हो सकता हो। परन्तु मर्त्यलोक के मनुष्यों की समझ के लिये हमारी बोली में कुछ इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है :—

एक अति सुन्दर सिंहासन जगमगाता बिछा हुआ था जिसकी बनावट ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो बिजली से भी अधिक सूक्ष्म और तेज वाले पदार्थों का बना हुआ है। इसके ऊपर एक ज्योति स्वरूप विराजमान है जिसकी कोई सूरत या शकल नहीं है। बैठा तो सिंहासन पर है परन्तु जब ग़ौर से देखें तो सारे ब्रह्माण्डों में व्यापक दीखता है और वनों, तृणों, पर्वतों में रमा हुआ मालूम होता है। सूक्ष्म ऐसा है कि कठोर से कठोर पदार्थों में भी गति रखता है। ज्योति वाला ऐसा है कि

सावन मास की करोड़ों बिजलियाँ इकट्ठी की हुइयों का प्रकाश उसके सामने ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा से भी मैला प्रतीत होता है। फिर वह तेज अति प्यारा और सुहावना है, आँखों को ठण्डक और कलेजे को शीतलता प्रदान करता है, और चुम्बक पत्थर की न्याईं हर पदार्थ को अपनी ओर खींचता है। उसके दर्शन का जो रस था वह कथन से बाहर है :—

" गूँगे महा अमृत रस चाखया पूछे कहण न जाई हो।"

इस सिंहासन के आगे चारों ओर चन्द्रमा के हाले की न्याईं अति मनोहर घेरा डाले अनगिन्ती ज्योतियों वाले बैठे थे। हम जिस प्रकार अपने मन का हाल जिह्वा द्वारा कहते हैं फिर भी दूसरे की समझ में कम आता है तिसी प्रकार उनके हाल नहीं, उनके सङ्कल्प चेहरों पर प्रगट थे और वह केवल प्रेम और आनन्द के पुस्तक लिखे हुए मालूम होते थे। इन महात्माओं के स्वरूप दीखते तो थे परन्तु पाँचों तत्त्वों से भिन्न थे और कुछ ऐसे तरल रूप थे कि जो हाथ लगाने पर स्थूल अथवा भौतिक वस्तुओं की न्याईं नहीं प्रतीत होते थे।

जिस समय तपस्वीजी अन्दर पहुँचे तो करोड़ों यन्त्र बज रहे थे और यह सारे प्यारे महात्मा पुरुष बड़ी प्यारी और दैवी स्वर में उस महान् ज्योति स्वरूप की स्तुति एक अति रसीले राग में गायन कर रहे थे। तपस्वीजी के पहुँचते ही सारे ज्योति स्वरूपों ने उनको नमस्कार किया, और अपने आगे सिंहासन के पास बैठने को स्थान दिया। तपस्वीजी निराकार के रंग में आगे हो बैठ गए। इस समय तपस्वीजी के रूप की झलक उन सारे महात्माओं से अधिक प्रतीत होती थी और प्रेम, श्रद्धा, भाव, भक्ति, परोपकार और पूर्ण ज्ञान के चिह्न ऐसे

दीप्त थे जैसे सूर्य्य के प्रकाश में गर्मी, रोशनी, और आध्यात्मिक शक्ति विना उसके स्वरूप के पृथक पृथक होने से एक ही रूप में मौजूद होती हैं। सिंहासन पर बैठे हुए अगाध स्वरूप और सन्मुख बैठी तपस्वीजी की परोपकार मूर्ति के बीच एक ऐसी प्रेम की डोरी चमकती दीख पड़ती है कि जो सिंहासन पर बैठे प्रेम के सोते की कृपा और सामने बैठे की उस निर्विकार अवस्था से बनी है जो पूर्ण अहङ्कार के अभाव वाली होती है और भय-संयुक्त प्रेम और भाव-संयुक्त ज्ञान के रङ्ग वाली होती है।

थोड़े समय बाद जब वह स्तुति समाप्त हुई तो सिंहासन पर बैठी हुई प्यारी ज्योतिर्मय सूरत ने ऐसा अचरज चरित्र दिखाया जिसका अनुवाद यों हो सकता है कि सामने बैठी तपस्वीजी की सूरत को परम प्रसन्नता से कहते हैं कि हे प्यारे तुमने सबको छोड़ कर और किसी को न मान कर मेरा ही आराधन किया है, इससे तुम मेरी प्रसन्नता के पात्र हुए हो।

इन वाक्यों ने ऐसी अद्भुत प्रसन्नता का प्रभाव उत्पन्न किया कि मानों सारी सभा खुशी और उपमा के साथ—जलसे भरे हुए समुद्र में नदी का और जल आकर मिलने से उछलने के समान—उमङ्ग में रँग गई, परन्तु उस नम्रता की निधि सन्मुख सजी हुई तपस्वीजी की सूरत में से एक सुरीली गूँज उठी :-

न देव दानवा नरा। न सिद्ध साधिका धरा॥
अस्त एक दिगर कुई। एक तुई एक तुई॥
न दादे दिहन्द आदमी। न सप्त ज़ेर ज़िमी॥
अस्त एक दिगर कुई। एक तुई एक तुई॥
न सूर ससि मण्डलो। न सप्त दीप नह जलो॥

अग्न पवन थिर न कुई। एक तुई एक तुई ॥
न रिज़क दस्त: आँकसे। हमारा एक आस वसे ॥
अस्त एक दिगर कुई। एक तुई एक तुई ॥
परंद ए न गिराह जर। दरखत आब आस कर ॥
दिहन्द सुई। एक तुई एक तुई ॥

—आदि ग्रन्थ।

इस अपूर्व स्तुति के शब्द के समाप्त होने पर सिंहासन पर विराजमान निराकार प्रेम मूर्ति के मनमोहन चेहरे से देखने वालों ने एक अति सुन्दर तात्पर्य समझा, जिसको हमारी तुच्छ बुद्धि की समझ के लिये श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने स्वयं अपने पवित्र मुखारविन्द द्वारा इस प्रकार वर्णन किया है:—

अंकाल पुरुपो वाच इस कीट प्रति।

जब पहिले हम सृष्टि बनाई। दैत्य रचे दुष्ट दुखदाई॥
ते भुजबल बवरे है गए। पूजत परम पुरख रहि गए॥ ६॥
ते हम तमकि तनक मों खापे। तिनकी ठउर देवता थापे॥
ते भी बल पूजा उरझाए। आपन ही परमेसर कहाए॥ ७॥
महादेव अच्युत कहवायो। बिसन आपही को ठहरायो॥
ब्रह्मा आप पारब्रह्म बखाना। प्रभु को प्रभू न किनहूँ जाना॥ ८॥
तब साखी प्रभु अष्ट बनाए। साख नमित देवे ठहिराए॥
ते कहैं करो हमारी पूजा। हम बिन अवर न ठाकुर दूजा॥ ९॥
परम तत्त को जिन न पछाना। तिन कर ईश्वर तिन कहु माना॥
केते सूर चंद कहु मानै। अगिनहोत्र कई पवन प्रमानै॥१०॥
किनहूँ प्रभु पाहन पहिचाना। नाति किते जल करत विधाना॥
केतक करम करत डरपाना। धरमराज को धरम पछाना॥११॥
जे प्रभु साख नमित ठहराए। ते हिआँ आइ प्रभू कहवाए॥

ताकी बात बिसर जाती भी । अपनी अपनी परत सोभ भी ॥१२॥
जब प्रभु को न तिनै पहिचाना । तब हरि इन मनुक्खन ठहिराना ॥
ते भी बसि ममता हुइ गए । परमेसर पाहन ठहराए ॥१३॥
तब हरि सिद्ध साध ठहिराए । तिन भी परम पुरख नही पाए ॥
जे कोई होत भयो जग स्याना । तिन तिन अपनो पंथु चलाना ॥१४॥
परम पुरख किनहूँ नहिं पायो । बैर बाद हंकार बढायो ॥
पेड पात आपन ते जलै । प्रभु कै पंथ न कोऊ चलै ॥१५॥
जिनिजिनि तनकि सिद्धको पायो । तिन तिन अपना राहु चलायो ॥
परमेसर न किनहूँ पहिचाना । मम उचार ते भयो दिवाना ॥१६॥
परम तत्त किनहूँ, न पहिचाना । आप आप भीतरि उरझाना ॥
तब जे जे रिषि राज बनाए । तिन आपन पुनि सिम्रिति चलाए ॥१७॥
जे सिमृतन के भए अनुरागी । तिन तिन क्रिया ब्रह्म की त्यागी ॥
जिन मनु हरि चरनन ठहरायो । सो सिमृतन के राह न आयो ॥१८॥
ब्रह्मा चार ही बेद बनाए । सर्ब लोक तिह कर्म चलाए ॥
जिनकी लिव हरि चरनन लागी । ते बेदन ते भए तिआगी ॥१९॥
जिन मत बेद कतेबन त्यागी । पारब्रह्म के भए अनुरागी ॥
तिनके गूढ़ मत्त जे चलहीं । भाँत अनेक दुःखन सों दलहीं ॥२०॥
जे जे सहित जातन सन्देहि । प्रभु को संगि न छोडत नेहि ॥
ते ते परम पुरी कह जाहीं । तिन हरि सिउँ अंतर कछु नाहीं ॥२१॥
जे जे जीय जातन ते डरे । परम पुरख तजि तिन मग परे ॥
ते ते नरक कुंड मों परही । बार बार जग मों बपु धरही ॥२२॥
तब हरि बहुरि दत्त उपजायो । तिन भी अपना पंथु चलायो ॥
कर मों नख सिर जटा सवारी । प्रभु की क्रिया कछू न बिचारी ॥२३॥
पुनि हरि गोरख को उपराजा । सिक्ख करे तिनहूँ बड राजा ॥
स्रवन फ़ारि मुद्रा दुऐ डारी । हरि की प्रीति रीति न बिचारी ॥२४॥

पुनि हरि रामानन्द को करा। भेस बैरागी को जिन धरा॥
कंठी कंठि काठ की डारी। प्रभु की क्रिया न कछू बिचारी॥२५॥
जे प्रभु परम पुरख उपजाए। तिन तिन अपने राह चलाए॥
महादीन तब प्रभ उपराजा। अरब देस को कीनों राजा॥२६॥
तिन भी एकु पंथु उपराजा। लिंग बिना कीने सभ राजा॥
सभ ते अपना नामु जपायो। सति नामु काहू न द्रिड़ायो॥२७॥
सभ अपनी अपनी उरझाना। पारब्रह्म काहू न पछाना॥

—दशम ग्रन्थ।

यह आज्ञा सुन सच्चे प्रेम निधि, अति कोमल, नम्रता के भण्डार, भक्ति के स्वरूप तपस्वीजी के हृदय में से सच्चे प्रेम के जोश ने इस स्तुति के भाव का एक दिव्य राग उच्चरवाया :—

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध कर्मे। अछेदी अभेदी सदा एक धर्मे।
कलंकं बिना निहकलंकी सरूपे। अछेदं अभेदं अखेदं अनूपे॥१॥
नमो लोक लोके स्वरं लोक नाथे। सदैवं सदा सर्व साथं अनाथे॥
नमो एक रूपं अनेक सरूपे। सदा सर्व साहं सदा सर्व भूपे॥२॥
अछेदं अभेदं अनामं अठामं। सदो सर्वदा सिद्धदा बुद्धि धामं॥
अजंत्रं अमंत्रं अकंत्रं अभर्मं। अखेदं अभेदं अछेदं अकर्मं॥३॥
अगाधे अबाधे अगंतं अनन्तं। अलेखं अभेखं अभूतं अगंतं॥
न रंगं न रूपं न जातं न पातं। न सत्रो न मित्रो न पुत्रो न मातं॥४॥
अभूतं अभंगं अभिक्खं भवानं। परेयं पुनीतं पवित्रं प्रधानं॥
अगंजे अभंजे अकामं अकर्मं। अनन्ते बिअन्ते अभूमे अभर्मं॥५॥

—दशम ग्रन्थ।

इसके बाद उस तेजोमय सिंहासन पर से उस अद्वितीय, कारणों के कारण, परम स्वरूप, भक्त-वत्सल देव के

परम पावन मुखारविन्द में से यह पवित्र शब्द, अपने सन्मुख बैठे प्यारे अनन्य भक्त तपस्वीजी के प्रेम के साथ पूरित हृदय को और बेअन्त प्रेम के साथ परि-पूरित करने के लिये, प्यार में गुन्दा हुआ निकला :—

दास अनन्य मेरो निज रूप ।
दरसन निमख ताप त्रई मोचन परसत मुक्त करत गृह कूप ॥१॥ रहाउ ॥
मेरी बाँधी भक्त छुड़ावै बाँधै भक्त न छूटै मोहि ।
एक समय मोकउ गहि बाँधै तउ फुनि मो पै जवाबु न होइ ॥ १ ॥
मैं गुन बन्ध सगल की जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास ।
नामदेव जाके जीअ ऐसी तैसो ताकै प्रेम प्रगास ॥ २ ॥ ३ ॥

—आदि ग्रन्थ ।

सारी सभा के पवित्र सीस झुक गए, और सब ने बड़े सत्कार पूर्वक नमस्कार किया। थोड़ी देर बाद वह प्यारे भक्त तपस्वीजी, जो भक्तों के तारामण्डल में चाँद की न्याईं छवि देरहे थे, सिंहासन पर बैठे सूर्य्य की तरह चमकते प्रतिपाल के सामने इस प्रकार खड़े हो गए जैसे हमारे संसारी जीवों में कोई आज्ञाकारी पुत्र अपने प्यारे पिता के सामने हाथ जोड़ कर और सर झुका कर पिता से आशीर्वाद लेने के लिये खड़ा हो जाता है। ऐसी दशा में होकर उस शिरोमणि तपस्वी महात्मा जी ने प्रेम पूर्वक नम्रता सहित विनती की कि हे परम पिता जगदीश! आपकी आज्ञा जगत में बजा लाने वाला मैं कौन हूँ? यदि आप मेरी "मैं" में वहाँ चलकर भी बासा करें जिससे यह मिलाप जो आज हुआ है वह न टूटे, "मैं" में आप और आप में "मैं" रहे, अनन्त जिसमें मेरी इस समय लीनता है मेरे में बसे और जुदाई न पड़े और आप मेरे हर समय सहायक हों

तो आपकी आज्ञा बजा लाने में फिर क्या कठिनता है? यह कहते ही तपस्वीजी ने किसी अलौकिक राग में यह अद्भुत विनती का शब्द गायन किया :—

क्या गुण तेरे सारि समाली मोहि निर्गुन के दातारे।
वै खरीदु क्या करे चतुराई इहु जीउ पिंडु सभु थारे॥ १॥
लाल रंगीले प्रीतम मनमोहन तेरे दरसन कउ हम बारे॥ १॥ रहाउ॥
प्रभु दाता मोहि दीनु भेखारी तुम सदा सदा उपकारे।
सो किछु नाहीं जि मैं ते होवै मेरे ठाकुर अगम अपारे॥ २॥
क्या सेव कमावउँ क्या कहि रीझावउँ विधि कितु पावउँ दरसारे।
मिति नहीं पाइऐ अन्तु न लहिऐ मनु तरसै चरनारे॥ ३॥
पावउ दानु ढीठु होइ माँगउँ मुखि लागै सन्त रेनारे।
जन नानक कउ गुरु कृपा धारी प्रभु हाथ देइ निस्तारे॥ ४॥

—आदि ग्रन्थ।

परन्तु इस विनती को श्रीमान् तेज स्वरूप ने समाप्त होने देने से पहले ही अपने उस पवित्र शब्द द्वारा जिससे यह सारा संसार रचा है, यह वर प्रदान किया :— मैं तेरे में तुम मेरे में, परस्पर यह मेल एकता सदैव स्थिर है, कभी नहीं टूट सकती। जगत में मैं तेरा सहायक, जैसे पिता वहाँ पुत्र का सहायक है, तैसे ही वहाँ मैं तेरा सहायक हूँगा। हाँ! तेरे कर्म मेरे, तेरे में पवित्रता मेरी, तुम्हें लेप क्षेप नहीं लगेगा। तुम पुत्र, मैं पिता हूँगा :—

मैं अपना सुत तोहि निवाजा।
पन्थु प्रचुर करबे कहु साजा॥
जाहि तहाँ तै धरमु चलाइ।
कबुद्धि करन ते लोक हटाइ॥

—दशम ग्रन्थ।

यह नियम, यह वर, यह बड़ाई, यह अकाल पुरुष की अद्वितीय दयालुता, कुछ ऐसी अकह, अकथनीय और आश्चर्य-जनक प्रभाव से भरी हुई थी कि जिसका समझना जीव-मात्र के लिये अति कठिन है। अब उस तेजस्वी सिंहासन पर विराजमान तेज के प्रताप का पुंज, पिता से अधिक कृपाल स्वरूप का प्रकाश, प्रेम की लहर से झुमझुमाता, अपने सामने बैठे और पुत्र निवाजे हुए प्यारे भक्त तपस्वीजी तक इस प्रकार पसरा कि दोनों का रूप एकता के रंग में रँग गया और ऐसा रँगा गया कि कोई तीक्ष्ण से तीक्ष्ण दृष्टि भी किसी प्रकार की पृथक्ता न मालूम कर सकती थी, मानो

द्वै तें एक रूप है गयो।

इस अचरज प्राप्ति वा मेल अथवा आत्म-रस वा ब्रह्मानन्द की अद्भुत दशा में—जो "माई री! पेख रही बिस्माद, अनहत धुनी मेरो मन मोह्यो अचरज ताँके साद" वाले भाव को दर्शाती है — उस अनन्य अद्वितीय कृपा पात्र तपस्वीजी के लिये अब वह समय आया जिसको संसारी विरह कहते हैं। परन्तु जहाँ संसारियों के विरह में मेल का नाम भी नहीं रहता, सूरत भी नहीं दीखती और मेल की चाह बनी रहती है, वहाँ यह विरह कुछ ऐसे दैवी ढंग का था कि इसके होते हुए भी मेल में अन्तर नहीं पड़ता, सूरत दूर नहीं होती। प्रकृति के बने हुए शरीर का मानों एक आवरण जैसा उस अभौतिक रूप के ऊपर चढ़ जाता है परन्तु उस शारीरिक मेल में अन्तर नहीं डालता, जैसे किसी जलते हुए दीपक के चारों ओर एक और शीशे की चिमनी रख दी जावे तो वह दिये के प्रकाश को किसी प्रकार रोकती नहीं, केवल एक पर्दा सा ही चारों ओर हो

जाता है। यद्यपि ऐसा पर्दा हमारी समझ में नाम मात्र को ही है परन्तु जिन प्रेमियों को इस विरह की चोट सहनी पड़ती है, वही इसकी पीड़ा का ठीक से अनुभव कर सकते हैं। आश्चर्य की बात है कि न तो मेल में अन्तर पड़े, न सूरत लुप्त हो, न प्यार कम हो, न दूरी पड़े और फिर विरह! परन्तु इसके यथार्थ ज्ञान को समझने के लिये बुद्धि असमर्थ है, उस दशा का अनुभव हो तब ही पता लगता है। इस विरह की पीड़ा को श्री गुरू जी ने आप ही इस प्रकार वर्णन किया है :—

तिन प्रभु जब आइसु मुहि दीया।
तब हम जनम कलू महि लीया ॥ ४ ॥
चित्त न भयो हमरो आवन कहि।
चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन महि ॥
जिउँ तिउँ प्रभु हम को समझायो।
इम कहि कै इह लोक पठायो * ॥ ५ ॥

बात क्या! परम प्यारे पिता के निवाजे हुए, अहम्मेव का पूरण अभाव कर चुके हुए, परोपकार के अवतार, श्री दिव्य स्वरूप महात्मा तपस्वीजी आज्ञानुसार, उस सर्व अनन्त के "आयसु" द्वारा अब उस आनन्द स्वरूपी महल में से बाहर नगर में आए और सारी सन्त मण्डली आदर सत्कार के लिये साथ आई। बाहर आकर क्या देखते हैं कि एक अति मनोहर पुष्पक विमान पड़ा है, जिसका नाम "ईश्वरेच्छा" कर के पुकारते हैं। इस विमान में यह शक्ति है कि आत्मक शरीरों को बीच में बैठा कर बिना कुछ समय लिये विचार करते ही

* इससे आगे के पाठ के लिये देखिये पृष्ठ १४

निश्चित स्थान पर पहुँचा देता है। इसकी रचना भी अभौतिक है।

जब यह दैवी महात्मा तपस्वीजी परम पिता की आज्ञा पाकर जगत के दुःख दूर करने निमित्त ऐसे सुख स्थान को छोड़ मर्त्यलोक के दुःखों सुखों के भागी होने के लिये उस पुष्पक विमान पर विराजमान हुए, तब सारे महात्माओं ने जो संसार के आरम्भ से आज तक हुए हैं और सारे सन्तों, साधुवों और फ़कीरों ने जो उस अभौतिक और निराकार नगर के निवासी थे, बड़े प्रेम पूर्वक मस्तक नवाया और बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ यह स्तुति गायन की :—

भजस्तुयं, भजस्तुयं ॥ रहाउ ॥
अगाधि बिआधि नासनं। परेयं परम उपासनं ॥
त्रिकाल लोक मान हैं। सदैव पुरख प्रधान हैं ॥ ६ ॥
तथस्तुयं, तथस्तुयं ॥ रहाउ ॥
कृपाल दिआल करम हैं। अगंज भंज भरम हैं ॥
त्रिकाल लोक पाल हैं। सदैव सरब दिआल हैं ॥ ७ ॥
जपस्तुयं, जपस्तुयं ॥ रहाउ ॥
महान मोन मान हैं। परेव परम प्रधान हैं ॥
पुरान प्रेत नासनं। सदैव सर्व पासनं ॥ ८ ॥
प्रचण्ड अखण्ड मण्डली। उदण्ड राज सुत्थली ॥
जगंत जोति जुआलका। जलंत दीप मालका ॥ ९ ॥

—दशम ग्रन्थ।

अब वह पुष्पक विमान नीचे को चला। करोड़ों देवता सन्त, महात्मा, भजनीक लोग पंक्ति बाँधे खड़े देखते थे, सब के

हृदय श्रद्धा और भक्ति के साथ भरे हुए थे और चहुँ ओर से नमस्कारें हो रहीं थीं और जय जय के शब्द और पुष्पों की वर्षा हो रही थी।

जै शब्द देव पुकारहीं ।
सब फूल फूलन डारहीं ॥

उस शहर में से हो यह पुष्पक विमान मर्त्यलोक में पहुँच कर हेमकूट पर्वत पर गया और फिर भारतवर्ष में पटना नामक शहर में पहुँचा। यहाँ एक सुन्दर मन्दिर में श्रीमती माता गूजरी जो नाम की एक महात्मा स्त्री श्री गुरु तेग़ बहादुर जी नवम गुरु नानक की सुपत्नी निवास करती थीं। श्री गुरुजी तो आसाम देश को गए हुए थे और धर्मपत्नीजी को शहर पटना में इस दैवी महात्मा के आगमन के लिए छोड़ ! थे।

सम्वत् १७२३ में पौष का महीना था और सप्तमी की तिथि को इतवार का मनोहर दिवस था जब कि श्री माता जी एक स्वच्छ कमरे में बैठी थीं। सवा पहर रात्रि अभी रही थी कि वह पुष्पक विमान वहाँ आ पहुँचा और वह तेजस्वी महाराज श्री गुरु गोविन्दसिंह पूर्ण गुरु अवतार के रूप में प्रगट हुए।

संसार में आते ही इनके तेज की ऐसी झलक पड़ी कि सारे पहुँच वाले सन्त महात्माओं को उसी समय दर्शन हुए और वह सब उस समय दैवी शक्तियों द्वारा अपने आत्मिक स्वरूपों में इकट्ठे हो वहाँ पहुँचे और चरनों पर सीस नवा कर यह स्तुति गायन की :—

जन्म मरण दोहूँ में नाहीं, जन परोपकारी आए।
जीअ दान दे भक्ति लाइन, हरि सिउँ लैन मिलाए॥

इस प्रकार के मनोहर स्वरों में स्तुति गायन कर सब ने दण्डवत की और फिर अपने अपने आत्म स्वरूपों में विदा हुए।

थोड़ी देर बाद ही सारे मन्दिर में यह मङ्गल समाचार प्रगट हो गया कि एक अनोखा बालक गुरु साहब के गृह जन्मा है और अचम्भे वाले कौतुक हुए हैं। पहिले तो ऐसा प्रकाश हुआ कि मानों हज़ारों बिजलियां चमकती हैं, फिर सुरीली और दैवी स्वरों में शब्द सुने गए और जय जय के शब्द भी सुनाई पड़े। साथ ही कई प्रकार की वार्तालाप और प्रसन्नता और हास्य विनोद के शब्दों की भी आवाज़ आई परन्तु समझ कुछ न पड़ा। बालक का रूप चन्द्रमा को भी मात करता है और अत्यन्त ही हँसमुख है, रोने का नाम भी नहीं जानता। माता जी भी अत्यन्त प्रसन्न हैं और उनको तो कई बेर "दर्शन" भी हुए हैं, जिसका हिसाब व गिनती वह कुछ वर्णन ही नहीं कर सकतीं। शीघ्र ही इस प्रकार के मङ्गलाचार की सूचना सर्वत्र फैल गई।

नोट—

हमारी बोली में ऐसे शब्द और पद नहीं हैं जिनके द्वारा ऊपर बताई गई सारी अवर्णनीय कथा ठीक ठीक कही जा सके, तो भी मर्त्यलोक के जीवों को समझाने मात्र के लिये इस सब कथा का वर्णन श्री सतगुरु गोविन्दसिंह जी ने स्वयं अपने पवित्र मुखारविन्द से इस प्रकार किया है:—

[चौपई]

अब मैं अपनी कथा बखानों। तप साधत जिह विधि मुहि आनों ॥
हेमकुंट परवत है जहाँ। सप्त शृङ्ग सोभित हैं तहाँ ॥१॥
सप्त शृङ्ग तिह नामु कहावा। पंडुराज जह जोगु कमावा ॥
तहँ हम अधिक तपस्या साधी। महाँकाल काल का अराधी ॥२॥
इहि विधि करत तपस्या भयो। द्वै ते एक रूप ह्वै गयो ॥
तात मात मुर अलख अराधा। बहु विधि जोग साधना साधा ॥३॥
तिन जो करी अलख की सेवा। ताते भए प्रसन्नि गुरु देवा ॥
तिन प्रभु जब आइसु मुहि दीया। तब हम जनम कलू महि लीया ॥४॥
चित्त न भयो हमरो आवन कहि। चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन महि ॥
जिउँ तिउँ प्रभु हमको समझायो। इम कहि कै इह लोक पठायो ॥५॥

अकाल पुरखो वाच् (इस कीट प्रति)

[चौपई]

जब पहिलें हम सृष्टि बनाई। दैत्य रचे दुष्ट दुखदाई ॥
ते भुज बल बवँर ह्वै गए। पूजत परम पुरख रहि गए ॥६॥

[इस से आगे ७ से २७ तक के छन्दों के पाठ के लिये देखिये पृष्ठ १४-१६]

सभ अपनी अपनी उरझाना। पारब्रह्म काहू न पछाना ॥
तप साधत हरि मोहि बुलायो। इम कहि कै इह लोक पठायो ॥२८॥

अकाल पुरखो वाच् [चौपई]

मैं अपना सुत तोहि निवाजा। पंथु प्रचुर करबे कहु साजा ॥
जाहि तहाँ तै धरमु चलाइ। कबुद्धि करन ते लोक हटाइ ॥२९॥

कवियोवाच् [दोहरा]

ठाँढ भयो मैं जोरि करि बचन कहा सिर न्याइ।
पंथ चलै तब जगत मैं जब तुम करहु सहाइ ॥३०॥

[चौपई]

इह कारनि प्रभु मोहि पठायो । तब मैं जगत जनमु धरि आयो ॥
जिम तिन कही इनै तिम कहिहौं । अउर किसू ते बैर न गहिहौं ॥३१॥
जे हम को परमेसर उचरिहैं । ते सभ नर्क कुण्ड महि परिहैं ॥
मो कउ दासु तवन का जानो । या मैं भेदु न रंच पछानो ॥३२॥
मैं हों परम पुरख को दासा । देखनि आयो जगत तमासा ॥
जो प्रभु जगति कहा सो कहिहौं । मृत्यु लोग ते मोनि न रहिहौं ॥३३॥

[नराज छन्द]

कह्यौ प्रभू सु भाखिहौं । किसू न कान राखिहौं ॥
किसु न भेख भीज हौं । अलेख बीज बीज हौं ॥३४॥
पखाण पूज हौं नहीं । न भेख भीज हौं कहीं ॥
अनन्त नामु गाइहौं । परम्म पुरख पाइहौं ॥३५॥
जटा न सीस धारि हौं । न मुद्रिका सुधारि हौं ॥
न कान काहू की धरों । कह्यो प्रभू सु मैं करों ॥३६॥
भजो सु एकु नामयं । जु काम सरब ठामयं ॥
न जाप आन को जपो । न अउर थापना थपो ॥३७॥
बिअन्त नामु धिआइ हो । परम जोति पाइहो ॥
न धिआन आन को धरौ । न नाम आन उचरौं ॥३७॥
तवक्क नाम रत्तियं । न आन मान मत्तियं ॥
परम्म धिआन धारीयं । अनन्त पाप टारीयं ॥३६॥
तुमेव रूप राचियं । न आन दान माचियं ॥
तवक्क नाम उचारीयं । अनन्त दूख टारीयं ॥४०॥

[चौपई]

जिन जिन नामु तिहारो ध्याया । दूख पाप तिन निकटि न आया ॥
जे जे अउर धिआन को धरही । बहिस बहिस बादन ते मरही ॥४१॥

हमं इह काज जगत मों आए। धरम हेत गुरु देव पठाएं॥
जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो। दुष्ट दोखियनि पकरि पछारो॥४२॥
याही काज धरा हम जन्मं। समझि लेहु साधू सभ मनमं॥
धरम चलावन सन्त उबारन। दुष्ट सभन की मूल उपारनं॥४३॥
जे जे भए पहिल अवतारा। आपु आपु तिन जापु उचारा॥
प्रभु दोखी कोई न बिदारा। धरम करम को राहु न डारा॥४४॥
जे जे गउँस अम्बीया भए। मैं मैं करत जगत ते गए॥
महा पुरख काहू न पछाना। करम धरम को कछू न जाना॥४५॥
अवरन की आसा किछु नाहीं। एकै आस धरो मन माहीं॥
आन आस उपजत किछु नाहीं। वाकी आस धरो मन माहीं॥४६॥

[दोहरा]

कोई पढ़ति कुरान को कोई पढ़त पुरान।
काल न सकत बचाइ कै फोकट धरम निदान॥ ४७॥

[चौपई]

कई कोटि मिलि पढ़त कुराना। बाचत किते पुरान अजाना॥
अन्ति काल कोई काम न आवा। दाव काल काहू न बचावा॥४८॥
किउँ न जपो ताको तुम भाई। अन्ति काल जो होइ सहाई॥
फोकट धरम लखो कर भरमा। इनते सरत न कोई करमा॥४९॥
इह कारनि प्रभु हमैं बनायो। भेदु भाखि इह लोक पठायो॥
जो तिन कहा सु सभन उचरौं। डिम्भ विम्भ कछु नैक न करौं॥५०॥

[रसावल छन्द]

न जटा मूंड धारौं। न मुंद्रका सवारौं॥
जपों तास नामं। सरैं सरब कामं॥ ५१॥
न नैंनं मिचाऊँ। न डिम्भं दिखाऊँ॥
न कुकर्मं कमाऊँ। न भेखी कहाऊँ॥ ५२॥

[चौपई]

जे जे भेख सु तन मैं धारैं । ते प्रभु जन कछुकै न विचारैं ॥
समझ लेहु सभ जन मन माहीं । डिम्भन मैं परमेसुर नाहीं ॥५३॥
जे जे करम करि डिम्भ दिखाहीं । तिन परलोगम मों गति नाहीं ॥
जीवत चलत जगत के काजा । स्वाँग देखि करि पूजत राजा ॥५४॥
सुआँगन मैं परमेसुर नाहीं । खोजि फिरै सभही को काहीं ॥
अपनो मनु कर मों जिह आना । पारब्रह्म को तिनी पछाना ॥५५॥

[दोहरा]

भेख दिखाए जगत को लोगन को बसि कीन ।
अन्त कालि काती कटयो बासु नरक मों लीन ॥५६॥

[चौपई]

जे जे जग को डिम्भ दिखावैं । लोगन मूंडि अधिक सुख पावैं ॥
नासा मूँद करैं परणामं । फोकट धरम न कउडी कामं ॥५७॥
फोकट धरम जिते जग करही । नरकि कुण्ड भीतर ते परही ॥
हाथि हलाए सुरग न जाहू । जो मनु जीत सका नहि काहू ॥५८॥

कबि बाच् [दोहरा]

जो निज प्रभु मोसों कहा सो कहिहौं जग माहिं ।
जो तिह प्रभु को ध्याइ हैं अन्त सुरग को जाहिं ॥५६॥
हरि हरिजन दुई एक हैं बिब विचार कछु नाहिं ।
जल ते उपजि तरंग जिउँ जल ही बिखै समाहिं ॥६०॥

[चौपई]

जे जे बादि करत हंकारा । तिन ते भिन रहत करतारा ॥
बेद कतेब बिखै हरि नाहीं । जान लेहु हरिजन मन माहीं ॥६१॥
आँख मूँदि कोऊ डिम्भ दिखावै । आँधर की पदवी कह पावै ॥
आँखि मीच मग सूझ न जाई । ताहि अनन्त मिलै किम भाई ॥६२॥

बहु विस्थार कहतउँ कोई कहै । समझत बाति पढ़ति हुए रहै ॥
रसना धरैं कई जौं कोटा । तदप गनत तिह परत सु तोटा ॥६३॥

[दोहरा]

जब आइसु प्रभु को भयो जनमु धरा जग आइ ।
अब मैं कथा संछेपते सभहूँ कहत सुनाइ ॥६४॥

[चौपई]

मुर पित पूरब कीयसि पयाना । भाँति भाँति के तीरथ नाना ॥
जब ही जात त्रिवेणी भए । पुन्न दान दिन करत बितए ॥
तहीं प्रकाश हमारा भयो । पटना शहर विषै भव लयो ॥

—दशम ग्रन्थ, 'विचित्र नाटक' ।

२—बाल्य कौतुक।

हाँ! इस पृथ्वी को, इस भारतवर्ष को यह सौभाग्य प्राप्त है कि संसार का सब से बड़ा अवतार, सब से बड़ा मुक्तिदाता सब से बड़ा वीर, सब से बड़ा स्वतन्त्रता का दिलाने वाला, सब से बड़ा गुरु अवतार, कवि, विद्वान्, नीतिवेत्ता, सेनापति, गृहस्थी, साधु, सिद्ध, त्यागी, उपदेशदाता यहाँ प्रगट हुआ है।

अवतार समय आत्म प्रकाश होना स्वाभाविक बात होती है सो जब आत्म सृष्टिके तेजस्वी महापुरुष श्री गुरु गोविन्दसिंह जी यहाँ आए तो अनेक आत्म कौतुक प्रगट हुए। अनेकों ही तपस्वी, सन्त, महात्मा दर्शनार्थ पहुँचे। उसी समय कुहराम के एक तपस्वी फ़कीर भीखनशाह भी प्रकाश को देख सीध बाँध कर सीधे पटना आ पहुँचे। दर्वाज़े पर पहुँच कर दर्शन के हेतु प्रार्थना की। दाई दैवी बालक को गोद में ले बाहर आई तो साँई जी ने नमस्कार की। मानव शरीर के होते हुए मनमें भाँति भाँति के सङ्कल्प विकल्प उठा करते हैं, इसी से अब फ़कीर साँईजी के हृदय में परीक्षा का भ्रम उत्पन्न हुआ। इसी मन्तव्य से उन्होंने दो मटकन्नियाँ, एक में दूध दूसरी में पानी भर कर महाराज के सामने कीं और मन में विचारा कि यदि दूध फैला देंगे तब मुसलमान और जो पानी फैलायेंगे तो हिन्दू समझूँगा, परन्तु कौतुकी बालक ने एक पैर के साथ दोनों ही मटकन्नियाँ इस प्रकार उलट दीं कि दोनों पानी और दूध फैल कर आपस में मिल कर एक हो गए। बस प्रत्यक्ष उपदेश दे दिया कि घमण्ड

को मटकियों मुसल्मानों को और वर्णाश्रम के हठ की मटकियां हिन्दुओं की तोड़ कर जल दूध को एक कर दूंगा। फ़कीर जी समझ गए कि यह प्रेमावतार दोनों को ही नम्रता की धरती पर डाल प्रेम के साथ गूँधेगा जिससे सारे संसार में एकता फैलेगी। इस प्रकार प्रत्यक्ष उपदेश देख फिर तो साँई जी के प्रेम की सीमा का वारापार ही न रहा और अपने धन्य भाग समझ कर साँई जी ने सीस नवाया और विदा हुए।

उसी समय एक शिरोमणि पण्डित राजा शिवदत्त चूड़ामणि को, जो वहीं गंगा किनारे समाधिस्थ थे, दर्शन हुए। पहिले तो विश्वास न आया पर फिर जो जो सङ्कल्प परीक्षा निमित्त किये वे सब पूरे हुए। जब यह सोचा कि राम रूप हो दर्शन दें तो राम रूप ही दिखाई दिये, जब कृष्ण रूप चाहा तो वही रूप दीख पड़े। जब बुद्ध भगवान की सूरत चाही अथवा और जो कुछ सोचा तब वही वही हो गया। इस प्रकार जब सब कामनायें पूरी हुईं फिर तो प्रेम की कोई सीमा न रही और पण्डितजी बालक गुरु के सच्चे भक्त हो गए। फिर तो प्रातः काल से दोपहर तक गंगा किनारे ध्यान में कई बार साक्षात् दर्शन हुआ करते थे। बहुत से सन्यासियों और कुलीन ब्राह्मणों में पं० शिवदत्त के विरुद्ध चर्चा चल पड़ी पर उन्होंने किसी की रत्ती भर परवाह न की और जो कोई भी आया उसको यह सिद्ध कर के बताया कि जगत का उद्धार करने को ईश्वर आप ही आया हुआ है।

इसी प्रकार यह ईश्वरीय ज्योति अपने बाल्य स्वरूप में प्रेम, उपकार और नेकी के अनेक चरित्र करती रही। जब आयु थोड़ी बड़ी हुई तो अपनी आयु वाले बालकों को साथ ले ऐसे

विचित्र खेल किया करते थे कि लोग देख कर दङ्ग रह जाते थे, कभी इस ज़ोर से कुछ आत्म वाक्य उच्चारते थे कि सब सुनने वालों की समाधि लग जाती थी। कभी ऐसा तेज और चमत्कार का रूप बना कर बैठ जाते थे कि तेज झेला न जा सकता था, और सारे प्रेमीजन दैवी भय द्वारा आत्म रस में लवलीन हो जाते थे।

रवि शशि दिस इन्द्रों की जोत । सन्मुख इनके नैन न होत ॥
बात करन की शकी नै है । कम्पत तन मन डर अति सै है ॥
क्यों के जो किछु मुख ते कै है । तातकाल सोई ह्वै जै है ॥

तनिक और बड़े हुए तो बालकों की दो टोलियाँ बना कर उनका आपस में घोर युद्ध कराया करते थे। धनुष बाण का आपको अत्यन्त चाव था। आपके महल के साथ लगता हुआ एक मीठे पानी का कुआँ था जहाँ औरतें पानी भरने आया करती थीं। बालक गुरु गुलेलें मार मार उनके सरों पर के घड़ों को फोड़ने लगे और टोकनियों को तीरों से छेदन करने लगे, मानों जिनके घड़े फोड़े उनके मन्द कर्म फोड़ दिये और जिनकी टोकनियाँ छेदन कीं उनके पाप छेदन कर दिये। माता जी ने नए घड़े और टोकनियाँ बनवा कर रख लीं और यदि कोई स्त्री शिकायत करने आती थी तो उसे एक घड़ा अथवा टोकनी दे देती थीं परन्तु बालक गुरु से कुछ न कहती थीं। एक दिन इसी प्रकार गुरु जी का गुलेल किसी एक तुरकानी के सर में जा लगा और क्यों कि वह एक बड़े बाप की बेटी थी इस से बड़ा झमेला पड़ गया। माता जी ने जैसे तैसे समझा कर उसको वापिस किया परन्तु व्याकुलता में पुकार उठीं :—

हे गुरु नानक ! इस कूएं का पानी होवे खारा।
जिसते कोई आय न भरने मिट है झंझट सारा॥

माता जी के यह वाक्य कहते ही कुएं का पानी खारी हो गया और अब तक उसी तरह से खारी ही है।

श्री गुरु जी ने अपने बालकपन में इसी तरह के बहुत अद्भुत कौतुक किये। जगत सेठ, रत्ना सेठ, माधो सेठ और कईयों के घर इनके चलते फिरते हास्य से भरे वाक्यों द्वारा ही पुत्र उत्पन्न हुए। कितने ही रोगी अच्छे हुए। एक कोढ़ी को धक्का देकर गंगा के बीच डाल दिया, निकला तो अति सुन्दर स्वरूप!

आपके बालकपन के कौतुकों की घर घर चर्चा थी। प्रत्येक गृह कोई न कोई सुख या वरदान पहुँचा था। साहबज़ादे जी की इन महरों के कारण प्रातः सायं के दीवान बहुत खचा-खच भर जाते थे। बालकपन में ही आप पटना पुरी के प्रीतम हो गए और पं० शिवदत्त के गहरे प्रेम से इनको बाला-प्रीतम कह कर पुकारने से इनका नाम "बाला-प्रीतम" ही पड़ गया। ऐसा कोई भी पुरुष न था जिसको बाला-प्रीतमजी ने किसी न किसी प्रकार कोई सुख न प्रदान किया हो। नवाब रहीम बख्श और करीम बख्श जो वहाँ के स्थानीय कार्य्य नेता मुसल्मान थे वे भी प्रेमी हो गए। उनके भेट कराए हुए बाग़ और एक गाँव अब तक वहाँ के गुरुद्वारे की जागीर हैं।

इस स्थान के राजा फ़तेहचन्द मैंणो के कोई सन्तान न थी। एक दिन राजा और रानी दोनों पण्डित शिवदत्त जी के पास पुत्र याचना हित गए। पण्डितजी ने कहा मेरे पुत्र दान करने की सूचना किसी ने आपको ठीक नहीं दी। हाँ वह "आप" इस समय शारीरिक रूप में आया हुआ है और कौतुक कर रहा

है। मुझे तो दर्शनों से निहाल कर रहा है। वह देखिये अब सूरज बाहर निकल आया है। उसके गोल मुख में मेरे बाला-प्रीतम जी धनुष बाण खींचे खड़े हैं। प्यारे मित्र राजा जी! आप उन की शरण लें तो पुत्र क्या लोक परलोक मिल जायँगे। राजा और रानी सीस नवा कर विदा हुए और उस दिन से रात दिन बालाप्रीतमजी के ध्यान में मग्न रहने लगे। इसी प्रकार कितना ही समय व्यतीत हो जाता है, तब एक दिन बालाप्रीतम जी अपने सखाओं के साथ खेलते हुए राजा के महल की ओर निकल जाते हैं। वहाँ एक कमरे में रानी मेंणियाणीजी ध्यान मग्न हैं। बालाप्रीतमजी, जिनकी आयु इस समय केवल पाँच साल के निकट होगी, दबे पाँव उस कमरे में जाकर सहज से रानी की गोद में बैठ कर गले में हाथ लिपटा कहते हैं —"माँ!"

आज तक कभी किसी ने नहीं सुना था जो मेंणियाणी को माँ कहे। ध्यान-मग्न कानों में "माँ" की ध्वनि पहुँची तो काँप उठी। नयन खुले। क्या देखा? गोदी हरी है। जन्म भर की सिसकती मेणियाणी को पुत्र मिला। कौनसा पुत्र? वह जिसकी चरणधूलि को योगी, जपी, तपी सभी तरसते हैं। मेणियाणी गद्गद् हो गई और जल्दी से चाहा कि सीस नवाऊँ पर बालाप्रीतम जी ने बिलकुल न हिलने दिया और उसके निष्काम प्यार के बदले कह रहे हैं "तू माँ और मैं तेरा पुत्र"। मेणियाणी खुशी के मारे फूली न समाती थीः—

पुनः पुनः पग पंकज को चूमें। बवरी भई भँवरी सी झूमें॥
सो अनन्द बरण्यो नहिं जाई। जन्म रंक जन नव निधि पाई॥

इतने में राजा जी भी आगए। बाहर से ही प्रेम ध्वनि सुन कर सोचते हैं कि कौन है जो मेरी निपुत्री स्त्री को कह रहा है "माँ"। अन्दर आकर देखा तो अपार प्रसन्नता में बोल उठे "तुही, तुही, तुही"। बालप्रीतम जी भी उठ खड़े हुए और आकाश की ओर नेत्र कर राजा फतेहचन्द की ध्वनि में अपनी महा-ध्वनि मिलाई "तुही, तुही, तुही, तुही, तुही"।

"तुही तुही" का रङ्ग छागया। कितना ही समय इस आत्म-रङ्ग में व्यतीत होगया। दर्वाज़े में खिलाड़ी सखा खड़े हैं। सब चुप पत्थर की मूर्तियाँ बने हुए हैं। बालप्रीतमजी अब अपने बाल स्वभाव में आए और कहने लगे "माँ! भूख लगी है। कुछ खाने को दो"। मेणियाणी ने आदमी दौड़ाये कि बाज़ार से ताज़ा मिठाई ले आवें पर प्रीतम जी बोले "चने और दूध पूरी खाऊँगा। हाँ! वह अन्दर रक्खे हुए जो चने तैयार हैं वह खाऊँगा"। सचमुच ही चने और पूरी अन्दर मिसरानी ने अभी तैयार ही करके रक्खे थे। रानी भागी हुई गई, लाई और आगे रक्खे। प्रीतम जी ने अपने सखाओं को बाँटे फिर राजा और रानी को दिये और फिर आप पाये। फिर आँगन में ख़ूब खेलते रहे। खेलते खेलते रात हो गई तो घर को लौटे। धनुष बाण खींचे हुए आप आगे आगे तुले हुए पैर डालते जारहे हैं, पीछे सौ के लगभग बाल सखा लाइन बाँधे हुए कदम पर कदम मिलाते चले जाते हैं मानों सेनापति सेना को परेट कराते आते हैं। घर पहुँचते ही बोले "माँ जी! लाओ मिठाई और रोटी फ़ौज को खिलायें"। माँ ने उठ कर गले लगाया, माँथा चूमाँ, प्यार किया और कहा "लाल जी! भोजन तैयार है। आज बड़ी देर लगाई"।

बालाप्रीतम जी—माँ जी ! आज एक और माँ बनाई है।

माँ—हैं ! दो माँओं के एक पुत्र कैसे बनोगे ?

प्रीतम जी—जैसे दो आँखों की एक ही ज्योति होती है।

माँ—पर तुम अकेले दोनों की गोदी कैसे खेलोगे ?

प्रीतम जी—जैसे दो तालावों में एक चन्द्रमा एक ही समय खेलता है। अब रोटी दो न, भूख लगी है।

बस सब सखाओं को पंक्ति में बैठा देते हैं। भोजन आता है। सौ ही बालकों को प्रीतम जी आप खिलाते और प्रसन्न होते हैं, फिर सब को विदा किया और आप और माता जी ने भोजन पाया। फिर जब माता जी और पुत्र इकल्ले हो बैठे तो माता जी कहने लगीं "लाल जी ! आप बड़े अलौकिक खेल करते हैं। किसी की नज़र न लग जाय "।

पुत्र—माँ जी ! अभी तो लोगों को मेरी नज़र पड़ी लगती है। जिसको लगती है पड़ा गुरु नानक सिमरता है। गुरु नानक वालों पर कौन बली है ।

माता—तुर्कों का राज्य है। कोई किसी तरह का विचार न करे।

पुत्र—तुर्कों का राज्य ज़ुल्म का है। ज़ुल्म को मिटा दूँगा।

माता—कैसे ?

पुत्र—तलवार के साथ।

माता काँप गई और चुप हो रही।

उधर मैणी जी की आत्मदशा अब बहुत उन्नत हो गई थी। बालाप्रीतम जी प्रति दिवस सायंकाल उनके महल में

चले जाते थे और बग़ीचे आदि में ख़ूब खेला करते थे। पौधे भी उखाड़ते लगाते रहते थे। उस समय का श्री जी के हाथ का लगाया हुआ एक करौंदे का पेड़ अब तक उस बाग़ में है जो बारह मास फल देता रहता है। बारहमासी करौंदा और कहीं अभी तक देखने में नहीं आया है।

इसी प्रकार खेल, ड्रिल, लड़ाइयों के रंग, उपकार, नेकी, भजन और स्मरण और जीवदान के रंगों में आपकी बाल लीला पटना शहर में व्यतीत होती रही।

अब आप की आयु कोई आठ वर्ष की होगी जब कि आप कभी कभी अपने प्यारे पिता जी के दर्शन के लिये उदास रहने लगे। उधर से गुरु जी को भी आनन्दपुर आने की आज्ञा आगई और जाने की तैयारी हुई। इस तैयारी का सारे पटना शहर निवासी जीवों पर जो प्रभाव पड़ा वह अकथनीय है। वियोग का दर्शन कलेजे चीरने लगा। नयन भर भर आते हैं। इस वियोग भरे प्रेम मण्डल में से जब बालाप्रीतम जी आनन्दपुर को चले तब राजा फतेहचन्द मैणी और रानी मैणियाणी दोनों धड़ाम से मूर्छित हो गिर पड़े। तब सुकुमार गुरु जी ने दोनों को अपने आत्म-बल द्वारा सचेत किया और स्वरूप में स्थिति प्रदान की और एक कटार और तलवार और एक पोशाक दी और कहा कि जब स्थूल दर्शन को जी चाहे इनके दर्शन करो, मेरे स्वरूप की झलक पड़ेगी *। जब प्यार को जी करे तब चने और पूरियाँ मेरे सखाओं को खिलाया करोगे तो मैं खाया करूँगा और आपको मेरा दर्शन हुआ करेगा।

* राजा ने घर को धर्मशाला बनाया और यह सब वस्तुएँ वहाँ स्थापित करदीं। वहाँ का नाम आज तक मैणी संगत प्रसिद्ध है।

नवाब रहीम बख़्श ने जब दर्शनों का दान माँगा तब कहा कि "जपजी" के पाठ समय दर्शन हुआ करेगा। जैता भक्त की भी नाम अवस्था परिपक्व थी। उसने भी दर्शन दान माँगा। आज्ञा हुई कि पाठ समय झलक पड़ेगी। शिवदत्त बेज़बान हो मन ही मन में इच्छा कर रहा था। बालाप्रीतमजी ने हँसकर कहा "सुबह गङ्गा किनारे पूजा समय तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन हुआ करेगा"। जगत सेठ को मुक्ति का वरदान दिया। फिर सब सङ्गत की ओर से विनय पूर्वक प्रार्थना हुई तो आपने आज्ञा दी कि जो अमृत समय* दीवान में हाज़िर हुआ करेगा और वार† सुनेगा उसको मैं झूले में झूलता मन्दिर में दिखाई दिया करूँगा।

इस प्रकार वरदान देते उपदेश करते आप चले। सारी संगत दानापुर तक साथ आई जहाँ पर से सबको बड़े यत्नों द्वारा वापिस किया और आप विदा हुए। आगे चलकर आप छपरा आरा आदि स्थानों की मञ्ज़िलों पर ठहरते छोटे मिर्ज़ापुर पहुँचे जो काशी के पास ही है। फिर काशी में जा विश्राम किया जहाँ आपके पिता नवम गुरुजी ठहरे थे। वहाँ कितने ही दिन रहे और अनेक कौतुक पुण्यदान, नामदान करते व्यतीत हुए। मसन्द और पण्डित जिज्ञासु आदि आये। सबकी भावना पूरी की।

यहाँ से चल बड़े मिर्ज़ापुर होते हुए अयोध्या और आगे अनेक स्थानों से होते हुए सहारनपुर ठहरते हुए अम्बाले के परगने लखनौर में आये। यहाँ आपने अनेकों ही कौतुक किये।

* प्रातःकाल। † प्रातःकाल का कीर्तन।

एक दिन यहाँ आप बालकों के साथ खेल रहे थे कि वहाँ के पीर आरफ़दीन ने पास से निकलते हुए आपको पहिचाना। पीरजी पालकी के अन्दर सवार थे। पीछे उनके चेलों और मुरीदों की पंक्तियाँ चली आरही थीं। पीरजी बालाप्रीतमजी को देख झटही पालकी से नीचे उतर आये, झुक झुक कर सिजदा किया और फिर हाथ जोड़कर एकान्त में लेजाकर कुछ वचन विलास के बाद विदा हुए। जहाँ तक गुरुजी दिखाई पड़ते रहे पैदल हो गए। पालकी पर नहीं चढ़े। जब पीरजी घर पहुँचे तब मुरीदों ने प्रश्न किया कि आप बड़े भारी पीर हैं, शरह शरियत वाले हैं, आप हमें यह बतावें कि उस बालक के आगे जो कि मुसल्मान भी नहीं है क्यों सिजदा किया।

पीरजी बोले :— भाई! सच पूछते हो तो बात यह है कि जब मैं समाधि लगाकर अल्लाह की दरगाह में पहुँचता हूँ तो यह बालक ज्योतिस्वरूप जगमग रूप नूरानी मुझे वहाँ दिखाई पड़ता है और सब इसको झुक झुक कर सलाम करते हैं। अल्लाह के दर पर सबसे बड़ा मैं ने इसको ही देखा है और आज उस ज्योति के प्रत्यक्ष दर्शन मैं ने यहाँ भी कर लिये। मेरी इस बात पर शक करोगे तो काफ़िर होगे और ईमान लाओगे तो सुख पाओगे।

लखनौर से कुछ समय बाद बालाप्रीतमजी आनन्दपुर पहुँचे। वहाँ आपके दर्शनार्थ बहुत दूर दूर से लोग आने लगे और बहुत अलौकिक कौतुक होते रहे। श्रद्धालु जनों की आवाजाई से इस क़दर चहल पहल रहने लगी कि आनन्दपुर वास्तव में ही एक आनन्द का निकेतन बन गया।

३—पिता निछावर ।

आपके पिता श्री गुरु तेग़बहादुर जी आपके पास बहुत समय तक न रह सके। औरङ्गज़ेब ने प्रजा को बहुत ही दुखी कर रक्खा था। आए दिन हज़ारों की संख्या में हिन्दुओं के यज्ञोपवीत उतारे जाते थे। काश्मीर देश जो कि हिन्दू पण्डितों का मुख्य स्थान था, वहाँ तो अत्याचार की कोई सीमा ही न थी। कहते हैं कि प्रति दिवस इतने हिन्दू मुसलमान बनाए जाते थे कि उनके केवल यज्ञोपवीत ही इकट्ठे कर के सन्ध्या को तौलने पर सवा मन बैठा करते थे * ।

ऐसे घोर अत्याचार से पीड़ित हिन्दुओं को जब अपनी रक्षा का कोई उपाय न सूझ पड़ा तब वहाँ के ब्राह्मणों का एक समूह श्रीगुरु तेग़बहादुर जी के दरबार में पहुँचता है और आदर सत्कार पा चुकने के पश्चात् अपनी सहायता और रक्षा के लिये प्रार्थी होता है :—

एक आश्रय आप गुसाँई। गहहु बाँह डूबत सबि जाँई॥
निज करुणा तरणी दृढ़ धरहु। कर्णधार बनि पारहिं करहु॥
रावर बिना आन नहीं कोई। समरथ बली रक्षक जो होई॥
राखहु अब हिन्दुन की टेक। नाहिं त जग महिं रहै न ऐक॥
धर्म भ्रष्ट जब सगरे होए। पूजहिं सुर आदिक नहिं कोए॥
होम यज्ञ सगरे बिनसै हैं। बहुर देव किम थिरता पै हैं॥
परहिं महा दुर्भिक्ष घनेरे। जग भी विनस जाइ तिस बेरे॥
याँ ते अबही बनहु सहाइ। हिन्दू धरम कहुँ लेहु बचाइ॥

---

* श्रीनगर में वहाँ की जुमा मसजिद के समीप एक स्थान है जहाँ के

इतने में बालाप्रीतम जी सदा की भाँति खेलते हुए वहाँ आ निकलते हैं और पण्डितों को रुदन करते हुए देख अपने पिता जी से पूछते हैं कि आज यह क्या विचित्र बात है जो आपके दरबार में सन्नाटा सा छाया हुआ है और यह सब लोग रो रहे हैं। गुरुजी ने कहा "पुत्र! अभी तुम्हारी अवस्था छोटी ही है। तुम्हें इन बातों को अभी क्या समझ ? औरङ्गज़ेब ने सारे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का ऐलान किया हुआ है। जो मुसलमान नहीं बनता उसको मौत के घाट उतारा जाता है। इसी लिये सारी हिन्दू जनता त्राहि! त्राहि!! कर रही है और यह काश्मीर के पण्डित अपने धर्म की रक्षा हित प्रार्थना कर रहे हैं"।

बालाप्रीतम जी—तो पिता जी! इनके धर्म की रक्षा कैसे हो सकती है?

गुरु जी—केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि कोई महा एवं पवित्र आत्मा प्रसन्नता पूर्वक अपना सीस निछावर करे।

बालाप्रीतम जी—हे पिता जी! इस घोर कलियुग में अब आपसे उच्च पवित्र आत्मा और पूर्ण परोपकारी और कौन है? आप ही इन के धर्म की रक्षा कीजिये।

प्रय पाठक! याद रहे कि इस समय बालाप्रीतम जी की आयु केवल नौ साल की ही है। इस छोटी सी अवस्था में ही

लोग अब तक इस सवा मन जनेऊ तौले जाने वाली दुर्घटना को स्वीकार करते हैं और सत्य बताते हैं। इसके अतिरिक्त काश्मीर में मुसलमानों की बहु संख्या होना भी इस बात की पुष्टि करता है।

पिता निछावर

मुनि विनती दुज बरन की, धरम गु रच्छन हेत।
"देहु तात बलिदान निज", भाखेहु बुद्धि निकेत ॥

आप अपने आप ही अपने पिता को बलिदान होने के लिये तैयार कर देते हैं।

अपने सुपुत्र की यह बात सुन गुरु जी बड़े प्रसन्न हुए परन्तु परीक्षा के मंतव्य से कहाः—पुत्र! तुम तो अभी छोटे से ही हो, मैं चला जाऊँगा तो फिर तुम्हारा पालन पोषण कौन करेगा?

यह सुन बालाप्रीतम जी मुसकराए और कहने लगे "पिता जी! आप यह क्या कह रहे हैः—

जब हुते उदर महिं मात के, करे रखवाई जोय।
अब तो भए नौ साल के, क्यों न सहाई होय॥"

बालाप्रीतम जी को परीक्षा में निपुण पा गुरु जी अति ही प्रसन्न हुए और पण्डितों से कह दिया कि औरङ्गज़ेब के दरबार में सूचना दे देवें कि यदि हमारे गुरु गुरु तेग़बहादुर दीन मुहम्मदी क़बूल कर लेंगे तो हम सबके सब हिन्दू मुसलिम बनने में संकोच न करेंगे।

औरङ्गज़ेब ने यह सूचना पाते ही गुरु जी को बुलवा भेजा। गुरु जी तैयार ही थे, वे केवल पाँच सिक्खों को साथ ले देहली में पहुँच गए। यहाँ गुरु जी और उनके साथियों को मुसलमान बनाने के लिये अनेक प्रकार के उपाय किये गए। कष्ट भी बहुत दिये गए। साम, दाम, दण्ड, भेद सभी गुरु जी पर चलाए गए परन्तु जब किसी प्रकार भी सफलता प्राप्त न हुई तो गुरु जी के सिक्ख साथी भाई मतीदास जी को गुरु जी के सामने एक आरे से चीरा गया और भाई दयाल जी को एक बड़े पानी भरे देगचे में उबाल कर शहीद किया गया। अब गुरु जी की बारी आई। मार्गशीर्ष ५ सम्वत् १७३२

विक्रमी के दिन जल्लाद आदमशाह को आज्ञा मिली कि गुरु जी का सिर धड़ से जुदा करे। इस कार्य्य के लिये देहली का चान्दनी चौक स्थान नियत किया गया और इसको देखने के लिये एक ढिंढोरे द्वारा शहर के सब आदमियों को वहाँ इकट्ठा किया गया गुरु जी पहले से तैयार ही थे। वह जपजी का पाठ कर पद्मासन लगाकर बैठ गए। नियत समय पर जल्लाद ने तलवार का वार किया और गुरु जी का सिर धड़ से जुदा कर दिया। इस समय ऐसी सख्त अँधेरी छाई और इस ग़ज़ब की आँधी आई कि कुछ भी न दीख पड़ता था। मकानों की दीवारें नीली और पीली नज़र आने लगीं। आकाश में जय जयकार और पृथ्वी पर हाहाकार के शब्द गूँजने लगे।

तवारीख़ मुहोताज़म और सैरुलमुताख्रीन के लेखक मुसलमानों ने जो गुरु जी की शहादत के समय वहाँ मौजूद थे लिखा है कि "जब गुरु तेग़बहादुर हिन्दू-धर्म की रक्षा करने लगे तो औरङ्गज़ेब ने उन्हें क़त्ल करा दिया। उस वक्त कुदरती अँधेरा छागया। दिन को ही सितारे नज़र आने लगे। पृथ्वी काँपी, प्रजा को शोक हुआ और घर घर सब मर्द औरत औरङ्गज़ेब को बुरा और पातकी कहने लगे।"

इस अँधेरी और भूचाल की गड़बड़ में सब को अपनी अपनी पड़ गई परन्तु भाई जीवन नामक सिक्ख ने यह मौका ताड़ गुरुजी के सीस को उठा लिया और सीधा आनन्दपुर लेगया और वहाँ पहुँच बालाप्रीतमजी के सामने रख दिया। सुकुमार गुरु ने अपने पिताके सीस को देख भाई जैता को छाती से लगाया और उसी समय उनको "रँघरेटे गुरू के बेटे" का वर प्रदान किया। रँघरेटे लोग शूद्र जाति के भङ्गी अथवा चाण्डाल

होते हैं। भाई जीवन इसी जाति में से थे, परन्तु बालाप्रीतमजी ने उनको गले लगा और अपने पुत्र का दर्जा दे छूतछात अथवा ऊँच-नीच के भेद को एक दम सदा के लिये मिटा दिया।

पाठको! देखा!! गुरु जी ने अपना सीस निछावर करके हिन्दू धर्म की कैसी पूर्ण रक्षा कर दी। इस भारी साके के बाद औरङ्गज़ेब किसी एक हिन्दू को भी मुसलमान नहीं बना सका और न फिर किसी मन्दिर को गिरा कर मसजिद ही बना सका। सारा इतिहास खोजने पर कोई एक दृष्टान्त भी ऐसा न मिलेगा जहाँ कि औरङ्गज़ेब इस महा बलिदान के पश्चात् किसी हिन्दू को मुसलमान बनाने में या हिन्दू मन्दिर गिरा कर मसजिद बनाने में सफल हुआ हो। ऐसे पूर्ण तौर पर रक्षा हो जाना यह केवल गुरु जी के ही बलिदान का चमत्कार है।

इस दिव्य घटना को श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपने विचित्र नाटक में स्वयं इस प्रकार वर्णन किया है :—

तिलक जन्जू राखा प्रभु ताका। कीनों बड़ो कलू महिं साका॥
साधन हेत इती जिन करी। सीस दिया पर सी न उचरी॥१३॥

धर्म हेत साका जिन कीया। सीस दिया पर सिरं न दीया॥
नाटक चेटक किये कुकाजा। प्रभु लोगन कह आवत लाजा॥१४॥

टीकरि फोरि दिलीस सिर, प्रभु पुर किया पयान।
तेगबहादुर सी क्रिया, करी न किनहूँ आन॥ १५॥
तेगबहादुर के चलत, भयो जगत को शोक।
है है है सब जग भयो, जै जै जै सुरलोक॥ १६॥

— दशम ग्रन्थ।

४—गुरुआई की गद्दी पर।

हाहा! क्या ही निराली शोभा छारही है। आनन्द पुर आज तक कभी इतनी शोभा की पराकाष्ठा को न पहुँचा था जितना कि आज दिन गुरु गोविन्द राय ने सुशोभित तथा विलक्षण छटाधारी वना लिया है। सारे सिक्खों में इतना सौन्दर्य्य तथा मान सत्कार कभी न था जितना कि सुकुमार गुरु की दैवी शक्ति ने अपने अधिकार से वना लिया है। बालाप्रीतमजी ने अपने पिता के वाद गुरुआई की गद्दी पर गुरु गोविन्दराय प्रकट होते ही पिछले नौ गुरुओं वाली नित्य क्रिया प्रारम्भ करदी थीं। शस्त्र विद्या के सामान छटवें सतगुरु की भाँति आरम्भ कर दिये और उस समय के बड़े बड़े कवि, चित्र-कार, विद्वान्, पण्डित गुरुजी के पास एकत्रित होने लगे जिससे कि एक अलौकिक ठाठ वन गया और आनन्दपुर वास्तव में विद्याओं और कला कौशलों का एक अद्वतीय केन्द्र वन गया।

गुरु जी का विवाह मिती तेईस आषाढ़ सम्वत् १७३४ विक्रमी में भीक्ष्याजी की सुपुत्री जीतोजी के साथ हुआ। विवाह के लिये गुरुजी ने वरात के साथ लाहौर जाना स्वीकार नहीं किया और कहा कि इस कार्य्य के लिये आनन्दपुर के पास ही मैं दूसरा लाहौर वना दूँगा। दूर दूर आज्ञापत्र भेजे गए और इतने लोग इकठ्ठे हुए कि सचमुच ही एक और लाहौर वन गया।

आसाम के नृपति राजाराम के घर कोई सन्तान न थी। जब गुरु तेग़वहादुर जी आसाम गए थे तो उन्होंने खुश होकर

राजेराम के पेट पर अपनी अंगूठी का निशान बना दिया और कहा "तेरे एक पुत्र पैदा होगा जिसके माथे पर इस अंगूठी का निशान होगा" सो ऐसा ही हुआ। उस पुत्र का नाम रत्नराय रक्खा गया क्योंकि इसके माथे पर रत्न का चिह्न था। जब रत्नराय बड़ा हुआ तो उसके दिलमें गुरु साहब के दर्शन को बहुत इच्छा हुई। इस लिये वह अपनी माता और मन्त्रियों को साथ ले आनन्दपुर पहुँचा और बहुत सारी वस्तुएँ जो अपने साथ लाया भेंट कीं। उनमें एक ऐसा अनोखा शस्त्र भी था, जो कि पाँच शस्त्रों का काम देता था। उसका नाम पंच-कला शस्त्र था। साधारण तौर पर कृपाण मालूम होता था। एक कल दबाने से बन्दूक़ की शक्ल बन जाती थी फिर भाला और कटार और गदा बन जाता था। एक चन्दन की चौकी थी जिसमें यह गुण था कि उस पर जब कोई स्नान करने को बैठता तो उसके चारों ओर चार बड़ी ख़ूबसूरत पुतलियाँ आ निकलतीं और पानी के साथ स्नान करातीं थीं। एक बड़ा बहुत क़ीमती कटोरा था। पाँच बहुत अच्छी बड़ी बन्दूकें और अनेक शस्त्र, ढाके की मलमलें, रेशम, जिगह, कलग़ी, मोतियों के हार आदि अनेकों और वस्तुएँ थीं। और एक चिचित्र हाथी था जो कि बिलकुल काला और जिसका माथा बिलकुल सफ़ेद था। हाथी अपनी तरह का आपही था और बड़े विचित्र करतब दिखाता था। राजा के कहने पर गुरुजी ने एक तीर चलाया। हाथी वहाँ गया और उसको उठा लाया। फिर अपनी सूँड़ में एक पानी का बर्तन पकड़ गुरुजी के पाँव धुलाए और पीछे तौलिये से पोंछ दिये। गुरुजी के जूतों को साफ़ करके उनको ठीक तरह से गुरु जी के सामने रक्खा। चँवर को सूँड़ में पकड़ गुरुजी पर डुलाने

लगा। रात्रि के समय दो मशालें सूँड़ में पकड़ आगे आगे चल कर राजा को और गुरुजी को रास्ता दिखलाया। इन सब कौतुकों को देखकर गुरु जी बड़े प्रसन्न हुए और हाथी का नाम "प्रसादी" रख दिया।

जब सेवकों ने सब वस्तुएँ सँभाललीं और कुछ एकान्त हुआ तो सतगुरु जी बोले "हे रत्नराय! पिता गुरु जी के आशीर्वाद से तुमने जन्म लिया है और अब तुम सिक्खी को प्राप्त होते हो"। यह कह कर राजा को गुरु सिक्खी का संस्कार किया। करीब पाँच महीने वहाँ रहकर राजा फिर वहाँ से विदा हुआ।

शस्त्र विद्या का गुरु जी विशेष ध्यान रखते थे। अपनी सेवा में बहुत से सिपाही भर्ती कर लिये थे और अब एक बड़ा नगारा बनवाने की आज्ञा दी। जब तैयार होगया तो गुरुजी ने इसका नाम "रणजीत नगारा" रखा। उसको जब बजाया गया तो उसकी आवाज़ बहुत ज़ोर से चारों ओर बड़ी दूर दूर तक गूँज उठी। कहलूर के राजा भीमचन्द ने समझा कि मेरी रियासत में कोई वैरी आन पहुँचा है पर उसके मंत्री ने समझाया कि यह गुरु गोविन्दराय दसवें गुरु नानक जी का नगारा है और उनसे मैत्री भाव ही रखना ठीक है क्यों कि एक तो वह आप परमेश्वर रूप हैं, दूसरे उनके पास बहुत बड़ी सेना है और तीसरे वह ऐसे वीर योद्धा हैं कि उनसे कभी अच्छी सहायता मिल सकती है। यह सुन राजा भीमचन्द गुरुजी से मिलने को आप चला आया। गुरुजी ने उसका राजाओं की भाँति आवभगत और सत्कार किया। राजा के लिये गुरुजी ने एक बड़ा क़ीमती तम्बू

लगवा दिया जिसको कि काबुल के एक दुनीचन्द नामक सिक्ख ने भेंट किया था और जिसका मूल्य कोई ढाई लाख रुपये के लगभग था। इसको देख राजा के आश्चर्य की कोई सीमा न रही और फिर और सब वस्तुएँ और प्रसादी हाथी देखने के पश्चात् उसको यह अनुमान होगया कि मेरी धनसम्पत्ति गुरुजी के वैभव के सामने कुछ भी नहीं है। इसी विचार में वह जब बिलासपुर को वापिस गया तो यही सोचता गया कि यह सब वस्तुएँ विशेष कर प्रसादी हाथी किस प्रकार मेरे क़ब्ज़े में आजावें।

राजा भीमचन्द ने बिलासपुर पहुँचते ही अपने मंत्री से सलाहकी। मंत्री ने बहुतेरा समझाया पर राजा ने एक न मानी और अपने दूत के हाथ गुरुजी को पत्र दे भेजा कि मेरे लड़के का विवाह होने वाला है जिसके लिये अपना सिंहासन, प्रसादी हाथी, काबुली तम्बू और पंचकला शस्त्र दे देवें। गुरुजी पत्र को पढ़ते ही राजा के दिलकी बेईमानी समझ गए और सोचा कि अब तो राजा ने यह चीज़ें मँगा भेजी हैं परन्तु फिर जब यह उसके पास पहुँच जायँगी तब वह शेर हो जायगा और इनको वापस न करेगा इस लिये गुरु जी ने राजा को मना कर भेजा और कहला भेजा कि तुम्हारे दिल में कपट है इस लिये मैं तुम्हारी माँगी हुई चीज़ों में से कोई भी नहीं दे सकता। यह गुरु नानक का दरबार है, जो जैसी भावना रखकर पहुँचता है उसको उसी प्रकार का वैसा ही फल दिया जाता है। यह उत्तर पढ़ राजा अति क्रुद्ध हुआ और पास के सारे पहाड़ी राजाओं को बुलाकर एक सभा की और अपना सारा हाल कह सुनाया। राजा भीमचन्द चाहता था कि युद्ध द्वारा सब वस्तुएँ प्राप्त

करली जायँ पर बहुत विचार के पश्चात् सबने राजा भीमचन्द को समझाया कि जब तक विवाह न हो जाय तब तक किसी प्रकार भी युद्ध न करना चाहिये। विवाह हो जाने पर जैसा ठीक समझा जाय वैसा किया जाय। सो ऐसा ही किया गया।

उधर गढ़वाल के राजा फ़तेशाह ने नाहन के राजा की रियासत का बहुत सारा भाग दबाया हुआ था जिससे नाहन का राजा अति दुखी हो रहा था। उसने अपनी सहायता के विचार से गुरुजी को अपनी रियासत में आने के लिये प्रार्थना कर भेजी। वहीं कई एक साधु, तपस्वी आदि भी गुरुजी की मेहर द्वारा मुक्ति प्राप्ति के लिये अथवा अपने तपों की पूर्णता के लिये तड़प रहे थे। ऐसी सारी बातों से प्रेरित हो सतगुरु जी ने संवत् १७४१ विक्रमी में कुआर के महीने नाहन की ओर कूच कर दिया। राजा मेदनीप्रकाश ने गुरुजी का आगमन सुन यथाशक्ति सत्कार चरण वंदना कर नगर में प्रवेश कराया। जिस स्थान पर गुरुजी का तम्बू लगाया था वहाँ अब एक गुरुद्वारा स्थापित है।

सतगुरुजी के नाहन पहुँचने की सूचना और राजाओं की इस प्रकार की श्रद्धा भरी ख़ातिरदारी और नगर निवासियों की पूजा सत्कार इत्यादि की सूचना यमुना के दोनों पार की "दूनों" में ऐसे फैल गई जैसे दून वासियों में कोई ऊँची ध्वनि गूँजती है। रामरायजी को भी यह ख़बर पहुँची। उन्होंने राजा फ़तेशाह को कहला भेजा कि भाई अब उस गद्दी के मालिक आगए हैं जिसका कि मैं एक मंगता हूँ इस लिये मैं अब कोई

आत्मबल या शारीरिक बल राजा मेदनीप्रकाश के विरुद्ध नहीं लगा सकूँगा और तुम मेरे हितू हो, इसलिये मैं तुम्हें सुमति देता हूँ कि अब वैर विरोध छोड़ दो और जितना प्रांत तुमने राजा नाहन का बलात् दबाया हुआ है वह आप ही लौटा दो नहीं तो फिर ज़बरदस्ती लौटाना पड़ेगा। राजा फ़तेशाह भी सुन चुका था कि गुरु महाराज जी सेना समेत नाहन आ गये हैं और उनके ऐश्वर्य की बातें भी सुनी थीं। रामरायजी का सन्देश भी पहुँचा। खूब सोच विचार के पश्चात् उसने मेदनीप्रकाश के बलात् दबाए प्रांत छोड़ दिये। इससे राजा मेदनीप्रकाश को न केवल गये हुए प्रांत ही वापिस मिले किन्तु राज़ साज़ सारे के चले जाने के भय से भी उसने छुटकारा पाया। गुरुजी की यह प्रत्यक्ष करामात देख राजा अति प्रसन्न हुआ और सतगुरु जी की सेवा और चाव से करने लगा।

राजा फ़तेशाह भी गुरुजी के दर्शन करने को आप नाहन चला आया। तब गुरुजी ने खुले दर्बार में दोनों राजाओं को मित्रता करादी।

अब राजा मेदनीप्रकाश ने यह चाहा कि सतगुरु जी का निवास उसके देश में ही रहे इसलिये सैर वा शिकार जाते समय गुरुजी को अच्छे अच्छे स्थान दिखलाता। एक दिन सैर करते करते गुरुजी ने यमुना के किनारे एक स्थान पसन्द किया जो कि अति रमणीक था। राजा मेदनीप्रकाश ने झट अपने राज़ मज़दूर लगा दिये और बारह दिन के अन्दर अन्दर ही गुरु जी के निवास के लिये एक आलीशान महल और रक्षा के निमित्त एक गढ़ और संगतों के लिये कई डेरे बनवा दिये:—

भूप मेदनी प्रकाश परजा लगाइ आस,
गुरु के अवास कोट शीघ्र बनाए हैं।
बसे गुरु तहाँ मन मोद ठाँन महाँ,
तब हो गई बिसाल वहाँ रौणक महाए हैं॥
फ़तेशाह नाहनेश सेवा ठानै दो नेश,
खेलत शिकार बेश तहाँ ही रहाए हैं।
संगतां खबर पाइ खुशी है अधिक आइ,
देत भई भेंट ल्याइ दौलत तहाँए है॥

गुरुजी ने इस स्थान का नाम "पाउँटा" रक्खा। राजा मेदनीप्रकाश और राजा फ़तेशाह दोनों गुरुजी की सेवा में रहने लगे। दूर दूर सिक्खों को जब यह पता चला कि गुरुजी पाउँटा निवास करते हैं तब वह उमड़ उमड कर वहाँ पहुँचने लगे। कथा, कीर्त्तन, उपदेश आदि फिर आनन्दपुर की तरह से होना प्रारम्भ होगये। जंगल में मंगल होगया। यहाँ गुरु जी लग भग तीन साल तक ठहरे। सारा समय बड़े आनन्द में व्यतीत हुआ। कविता भी गुरु जी ने बहुत सारी यहाँ ही रची है। कवि, विद्वान, और योद्धा भी यहीं एकत्रित किये थे।

एक दिन जब गुरु जी का दर्बार लगा हुआ था और दोनों राजा मेदनीप्रकाश और फ़तेशाह भी वहीं मौजूद थे तब एक पहाड़ी आदमी ने आ दोहाई दी कि "महाराज! पास ही एक बड़ा भयङ्कर शेर रहता है जिसने यहाँ की जनता को बड़ा दुखी कर रखा है। पहले बहुत लोगों ने उसको मारने की कोशिश की है किन्तु सफलता नहीं हुई है। आप जी हम

लोगों पर कृपा करें और इस मूज़ी को मार हमें उसके भय से छुटकारा दिलायें।

गुरुजी झट दोनों राजाओं और अन्य सिक्खों को साथ ले वहाँ की ओर चल पड़े जहाँ पर कि वह मारू शेर बतलाया गया था। शेर के ठिकाने पर पहुँच गुरुजी ने राजा फ़तेशाह से शेर को मारने के लिये कहा, परन्तु राजा की हिम्मत न पड़ी और कहा "गुरु जी! आप ही इस शेर को मार सकते हैं, हम में इतना बल कहाँ है"। इस पर जब गुरु जी घोड़े पर से उतरने लगे तब राजा मेदनीप्रकाश ने रोका और समझाया कि "आप अकेले शेर से न लड़ें, इससे पहले कई आदमी इसको मारते हुए आप मर गये हैं। यह बुड्ढा जयद्रथ* है, मारता है और मरता नहीं। हाथियों पर बैठ गोलियों और तीरों द्वारा इसको मारा जाय तो अच्छा है"। परन्तु सतगुरुजी ने कहाः-"नहीं, मर्द में मर्दानगी के जौहर कम नहीं होने चाहिये। गोली और तीर कोई न चलावे। हम इसके साथ हाथों हाथ ही लड़ेंगे"। यह कह कर गुरुजी घोड़े से उतरे और एक ढाल और तेज़ तलवार ले अकेले ही आगे बढ़े और शेर को जा ललकारा। शेर एक बड़े भयानक रूप में गर्जा और बड़ी तेज़ी से गुरुजी पर झपटा। गुरु जी ने आगे हो उसके मुख को अपनी ढाल पर ले लिया और नीचे से तलवार चला कर उसका पेट चीर दो टुकड़े कर दिये। इस शूर वीरता को देख दोनों राजा और वीर लोग चकित रह गये। गुरुजी ने इस अवसर पर सब को उपदेश

*जयद्रथ महाभारत में एक योद्धा थे जिन्होंने पाण्डव-कुल के अभिमन्यु आदि को मारा था। कहते हैं कि यह शेर मर कर वही निकला और मुक्ति पाई।

दिया कि वैरी से युद्ध में इस शेर की भाँति सन्मुख होकर लड़ना और मरना चाहिये। जो सन्मुख होकर मरते हैं वह परलोक में सुखी होते हैं।

इस प्रकार की वीरताएँ और ऋषियों के सुधार की कथाएँ दूर दूर तक पहुँची। पाउँटे से सात आठ कोस पर एक पुराना नगर सढौरा है। यहाँ एक बड़ा जागीरदार फ़क़ीर बुद्धूशाह रहता था। ख़ानदानी फ़क़ीर होते हुए पीरी की गद्दी का मालिक था और हज़ारों ही उसके मुरीद और चेले उसकी आज्ञा में थे। साँई बुद्धूशाह भी गुरु जी के कौतुक सुनता था और सुन सुन कर हैरान रह जाता था, क्योंकि इसे अभी ईश्वरीय ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति नहीं हुई थी और "कोई मिले" की अभिलाषा रही आती थी। गुरु जी के चरित्र सुन सुन यह सोचता था कि शायद कोई महापुरुष ही हों जो मेरी कठिनाई हल कर दें। कुछ दिन ऐसे विचारों के बाद बुद्धूशाह सढौरे से चल पाउँटे आ पहुँचा और गुरु जी से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर उनका पक्का सिक्ख बन गया।

आनन्दपुर में जो युद्ध होते होते रह गया था वह पाउँटे आकर न रुका। राजा भीमचन्द अन्य पहाड़ी राजाओं के समेत यमुना पार हो पुत्र विवाह के लिये गया हुआ था। विवाह के अवसर पर गुरुजी के दर्बारी भी गये हुए थे और राजा फ़तेशाह की लड़की के लिये गुरुजी की ओर से सवा लाख का एक हार ले गये थे। राजा भीमचन्द को जब इसका पता चला तो उसने लड़की का विवाह अपने पुत्र से करना अस्वीकार कर दिया। राजा फ़तेशाह को इसकी बड़ी चिन्ता हुई और अपनी लड़की व्याहने के लिये राजा भीमचन्द को वचन दिया

कि आज से मैं गुरुजी का मित्र नहीं रहा और विवाह होते ही मैं सबसे आगे हो गुरुजी से युद्ध करूँगा।

विवाह हो जाने के बाद ही फ़तेशाह ने अपनी सेना ले पाउँटे की ओर धावा बोल दिया। गुरुजी को इसका पता चल गया और उन्होंने राजा की सेना को पाउँटे से आठ सात मील ऊपर भंगाणी के स्थान पर आ रोका। घोर युद्ध हुआ। जब राजा फ़तेशाह की सेना हार खाकर भागने लगी तभी और राजाओंकी सेना भी आ पहुँची। परन्तु गुरुजी ने तीरोंकी ऐसी वर्षा की कि उनके सामने पहाड़ी सेना बिलकुल न ठहर सकी। इस युद्धका वृत्तान्त "विचित्र नाटक" में गुरुजी ने आप वर्णन किया है और युद्धका अन्तिम दृश्य इस प्रकार अङ्कित किया है:—

हरीचंद कोपे कमाणं सँभारं। प्रथम बाजियं ताण बाणं प्रहारं॥
द्वितीय ताक कै तीर मोकौ चलायं। रख्यो दैव मैं कान छ्वै कै सिधायं॥२६॥
तृतीय बाण मार्‌यो सु पेटी मझारं। बिधिंग्र चिलतिग्रं ढाल पारं पधारं॥
चुभी चिंच चर्मं कछू घाइ न आयं। कलं केवलं जान दासं बचायं॥३०॥

जबै बाण लागिग्रो। तबै रोस जागिग्रो॥
करं लै कमाणं। हनं बाण ताणं॥३१॥
सबै बीर धाए। सरोघं चलाए॥
तबै ताकि बाणं। हन्यो एक जुआणं॥३२॥
हरी चन्द मारे। सु जोधा लतारे॥
सु कारोड़ रायं। वहै काल घायं॥३३॥
रणं त्याग भागे। सबै त्रास पागे॥
भई जीत मेरी। कृपा काल केरी॥३४॥
रणं जीति आए। जयं गीत गाए॥
धनं धार बरखे। सबै सूर हरखे॥३५॥

इस युद्ध के बाद कुछ समय और पाउँटे ठहर कर गुरु-जी फिर आनन्दपुर को वापिस हुए। सढौरा होते हुए पहले रियासत नाहन के ग्राम लाहरपुर में पहुँचे। यहाँ बारह तेरह दिन ठहर फिर रायपुर* पहुँच वहाँ की रानी का उद्धार किया, फिर कीरतपुर होते हुए आनन्दपुर पहुँचे। आनन्दपुर निवा-सियों को गुरुजी के आने की पहले ही सूचना मिल गई थी इस लिये उन्होंने गली, बाज़ार, कूचों में और घर घर सजावट कर रक्खी थी। उस समय का दृश्य बड़ा ही विचित्र था। गुरु जी तो प्रसादी हाथी पर सवार थे, पीछे सेना घोड़ों पर पंक्तियाँ बाँधे चली आ रही थीं। धौंसे की धुन्कार दूर दूर तक पहुँचती थी। आगे से लोग अगवाई और स्वागत के लिये उमड़ उमड़ कर आरहे थे। सब ने बड़े प्यार, सत्कार के साथ गुरुजी को अपने स्थान पर पहुँचाया और उस दिन से आनन्दपुर में फिर वही आनन्द और कुलाहल आरम्भ हो गया।

यहाँ थोड़े समय बाद संवत् १७४३ वि० (सन् १६८७ ई०) को माघ सुदी चौथ के दिन गुरुजी के पहले सुपुत्र साहबज़ादा अजीतसिंहजी प्रगट हुए।

गुरुजी का बल और यश अधिक देख अथवा और किसी नीति के विचार से राजा भीमचन्द ने अब सुलह करने की ठानी और इस मन्तव्य से वह आप आनन्दपुर गुरुजी के पास

* यह ज़िला अम्बाला में नारायणगढ़ के पास है। वहाँ के क़िले में एक गुरुद्वारा अब तक उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर कि गुरु जी ने रानी के हाथों भोजन पाया था। एक गुरुद्वारा क़िले के बाहर उस स्थान पर भी बना हुआ है जहाँ ठहरने के लिये गुरुजी का तम्बू लगाया गया था।

चला आया और आगे के लिये गुरु जी का मित्र रहने का प्रण किया।

समय व्यतीत होता गया। पहाड़ी राजाओं ने औरङ्ज़ेब के खिराज (कर) अदा न किये, इस लिये उसने अलिफ़ख़ाँ को सेना देकर भेजा और नदौण के मैदान पर युद्ध डट गया। राजाओं की हार होती देख राजा भीमचन्द ने गुरु जी से सहायता माँग भेजी। गुरुजी अपनी सेना साथ ले तुरन्त पहुँच गये और अलिफ़ख़ाँ को मार भगाया। इस युद्ध का वृत्तान्त भी गुरु जी ने स्वयं अपने "विचित्र नाटक" में लिखा है।

युद्ध समाप्त होने पर गुरुजी फिर आनन्दपुर वापिस आगये। थोड़े समय बाद संवत् १७४७ वि० में चैत्र की सप्तमी को गुरुजी के दूसरे सुपुत्र साहबज़ादा जोरावरसिंहजी प्रगट हुए।

उधर अलिफ़ख़ाँ की हार सुन लाहौर के नवाब दिलावरखाँ ने रुस्तमखाँ को और सेना देकर भेज दिया। यह अभी सतलज नदी के किनारे ही पहुँचा था कि एक सिक्ख ने गुरुजी को आन ख़बर दी। यह सूचना गुरुजी के पास रात्रि समय पहुँची जब कि सब सो रहे थे। गुरुजी ने उसी समय उठ रणजीत नगाड़े पर चोट लगवाई और सब सेना के इकट्ठी होने पर रुस्तमखाँ की ओर धावा बोल दिया। रुस्तमखाँ गुरुजी का बल अधिक देख मैदान छोड़ कर भाग निकला और रास्ते में जाते जाते बर्वा गाँव को ही लूट ले गया।

रुस्तमखाँ की हार सुन लाहौर से हुसैनखाँ कई हज़ार की सेना लेकर चढ़ आया। इसने गुरुजी पर हमला करने से पहले छोटे छोटे पहाड़ी राजाओं को जीत कर अपने साथ

मिलाया। और पहाड़ी राजा भी, कुछ डर के मारे और कुछ ने यह समझ कर कि गुरुजी को जीतने का यह अच्छा अवसर है, साथ हो लिये। गुरुजी को जब इसकी सूचना पहुँची तो गुरुजी की माता बहुत चिन्ता करने लगीं और गुरुजी को सुलह करने के लिये सलाह दी। परन्तु गुरुजी ने माताजी को समझाया और कहा कि आप किस बात की चिन्ता करती हैं? मैं तो श्री अकाल-पुरुष का भेजा हुआ हूँ और उन्हीं का काम कर रहा हूँ, यह पहाड़ी राजे और हुसैनखाँ भला मेरा क्या कर सकते हैं? हुसैनखाँ तो यहाँ पहुँचने से पहले ही खतम हो रहेगा।

सो ऐसा ही हुआ। रास्तेमें ही हुसैनखाँ की गुलेर के राजा गोपालराय से अनबन होगई। हुसैनखाँ ने दस हज़ार खिराज माँगा परन्तु गोपालराय ने चार हज़ार ही दिया। हुसैनखाँ ने इतना न लेना चाहा और गोपाल को खूब धमकाया। इस पर गोपालराय वह चार हज़ार भी उठाकर अपने साथ वापिस ले आया और अपने क़िले में आकर अकड़ बैठा। इससे हुसैन-ख़ाँ ने राजा गोपाल पर ही धावा बोल दिया। गोपाल ने गुरु जी की सहायता माँग भेजी। गुरुजी ने झट कुछ सेना भेज दी और पीछे से आप भी पहुँच गये। घोर संग्राम के बाद हुसैनी मारा गया और गोपाल की जीत हुई जिससे सिक्खों की शूरवीरता की धाक बैठ गई*। युद्ध के बाद राजा गोपाल आप बहुत से जवाहरात और अन्य वस्तुएं गुरुजी की भेंट लाया और गुरुजी की सहायता का बड़ा कृतज्ञ हुआ।

औरंगज़ेब ने पहाड़ी राजाओं और गुरुजी सबके समाचार

* हुसैनी युद्ध का वर्णन भी गुरुजी ने आप अपने "विचित्र नाटक" में किया है।

सुन अपने लड़के मुअज़्ज़म को सेना देकर भेजा कि वह राजाओं से खिराज इकट्ठा करे, और गुरुजी को पकड़ लावे। परन्तु मुअज़्ज़म आप तो लाहौर की ओर चला गया और युद्ध के लिये अपने एक मनसबदार को भेज दिया। इसने युद्ध से पहले गुरु जी से आकर मिलना ठीक समझा। गुरु जी से बात चीत करने पर गुरु जी उसको एक ईश्वर की पूर्ण ज्योति दीख पड़े और उसको यह निश्चय होगया कि गुरु जी सत्य पर खड़े हैं। इस लिये आगे से युद्ध करने की बजाय वह गुरु जी का पक्षपाती होगया।

इसके बाद कुछ समय आनन्द से व्यतीत हुआ और जीव-उद्धार के अनेकों ही कौतुक होते रहे। संवत् १७५३ वि० (सन् १६९७ ई०) को माघ सुदी परिवा के दिन गुरु जी के तीसरे सुपुत्र साहबज़ादा जुझारसिंह जी का जन्म हुआ, और दो साल बाद फाल्गुन की ग्यारस को गुरु जी के चौथे सुपुत्र फ़तेसिंह जी प्रगट हुए।

५—मोहना-सोहना ।

एक दिन संवत् १७५१ विक्रमी में गुरुजी अपने दर्बार में सुशोभित थे। चारों ओर बड़ी दूर तक पण्डित, गुणी, ज्ञानी, कवी, रागी, और विद्वान पुरुष उपस्थित थे। श्रद्धालुजन अनेकों तरह की वस्तुएँ लाकर गुरुजी के सामने भेंट करते थे। इतने में एक अनोखा फ़कीर एक अति मनोहर सुन्दर लहलहाते पुष्पों की पिटारी लेकर गुरुजी के सामने भेंट करने को आ खड़ा हुआ। गुरुजी ने पूछा "फ़कीर साँई आप कौन ?"

फ़कीर—जी मैं रोडा जलाली।

गुरुजी—जलाली ! यदि आप जलाली हैं तो मेरी भेंट कोई बहुमूल्य वस्तु क्यों नहीं लाये ?

फ़कीर—हम तो नंगे फ़कीर हैं, हम नंगों के पास कोई माल नहीं टिकता। सदैव ख़ाली हाथ ही रहते हैं। ऐसी दशा में आपके लिये भला मैं और क्या ला सकता था ?

गुरुजी—फिर ख़ाली हाथ ही आ जाना था। फ़क़ीरों के तो ख़ाली हाथ ही अच्छे लगते हैं।

फ़कीर—महाराज ! महापुरुषों के पास ख़ाली हाथ जाना मर्यादा के विरुद्ध है।

गुरुजी—नंग क्या ? और मर्यादा क्या ?

फ़कीर—यह फ़कीरों के रंग हैं।

गुरुजी—रंग नहीं, ढंग हैं।

यह कह अन्तर्यामी गुरुजी ने भाई मनीसिंहजी की ओर संकेत किया कि रोडा फ़क़ीर के सर पर से टोपी उतार लो। टोपी के नीचे गिरते ही छनन् छनन् करती हुई पाँच सात सोने की मोहरें निकल पड़ीं। रोडा जलाली का चेहरा एकदम पीला पड़ गया। और सारी सभा पर गुरुजी की अन्तर्यामित्व का भय सा छा गया।

गुरुजी—रोडा जलाली! इन लहलहाते पुष्पों को अपनी डालियों पर से क्यों तोड़ा? इन सुगन्धि देने वालों को अपने सुगन्धि के स्रोतों से क्यों अलग किया? उफ़! इन पुष्पों में सुगन्धि नहीं! सुन्दरता नहीं! शोक की कराहना है। रोडा! यह फूल नहीं तोड़े, यह तो दो दिल टूट गये हैं। दिल नहीं, दो ईश्वर के लाल ईश्वर की गोदी में से अलहदा कर लिये हैं।

रोडा पत्थर की मूर्ति बना खड़ा है। किन्तु गुरुजी यह कह झट अपने सिंहासन से नीचे उतर नंगे पाँवही "मेरे लाल! मेरे लाल!!" कहते हुए अपने बग़ीचे की ओर दौड़ निकले और सारी सभा भी बड़े प्रेम सहित यह देखने को पीछे होली कि आज गुरुजी यह क्या नया कौतुक रचा रहे हैं।

यह फूल जो रोडा जलाली गुरुजी की भेंट लाया था उसने गुरुजी के बग़ीचे में से चुराये थे। गुरुजी के बग़ीचे का प्रबन्ध केलरासिंह* के अधिकारमें था। कुछ समय पूर्व मोहना और सोहना नामक दो पुरुष माली के कार्य के लिये नियुक्त किये गये थे, और अपने काम में होशियार होने के कारण

* यह जन्म का राजपूत था। परन्तु नवें गुरु श्री गुरु तेग़बहादुर का सिक्ख बनकर उनके चरण कमलों में अपने आप को अर्पण कर दियाथा और तभी से बाग़ का माली बन कर वहाँ रहने लगा था।

इन्होंने बाग़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था। सोहना और उनकी स्त्री मोहना रायपुर के रहने वाले थे। यह अच्छे कवि और राग विद्या में प्रवीण थे। घर के बड़े अमीर थे और ठाकुर पूजा किया करते थे। एक बार यह दोनों अपने ठाकुर जी के लिए कुएँ से पानी भर कर ला रहे थे कि रास्ते में एक सिक्ख घायल पड़ा मिला जो कि प्यास के कारण कराह रहा था। उस सिक्ख ने मोहना सोहना को पानी ले जाते देख इन से थोड़ा सा जल माँगा। परन्तु उन्होंने पानी के होते हुए भी उसको पानी नहीं पिलाया क्योंकि वह इस पानी को अपने ठाकुरजी को स्नान कराने के लिये ले जा रहे थे और इस लिये समझा कि इसको पानी पिलाने से यह पानी झूठा हो जायगा और फिर ठाकुर-स्नान के मतलब का न रहेगा। इस विचार से उन्होंने उस सिक्ख की बात सुनी अनसुनी करदी। बेचारे घायल सिक्ख ने चिल्लाकर कहा "ऐसे दर्शन नहीं देने लगा" परन्तु मोहना सोहना ने इस पर बिलकुल ध्यान न दिया। वह यह नहीं जानते थे कि सचमुच ही उनके भाग्य चक्र उस घायल सिक्ख के वचन के साथ ही पलट गये हैं। उसी समय से ही उनका दिल किसी भी कार्य करने को नहीं करता था और हृदय फटा जाता था और बार-बार वही शब्द "ऐसे दर्शन नहीं देने लगा" गुंजारित होते थे। जब वह अपने ठाकुर जी को स्नान करा चुके तब वह फिर शीघ्रता से लौटकर उस घायल सिक्ख के पास गये कि उसे पानी का घूँट दें परन्तु वह गुरु का लाल इस असार संसार को सदा सर्वदा के लिये उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही त्याग गया था। यह देख वे दोनों बड़े घबराये और उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि मानो उस मृतक शरीर के अधर हिल रहे हैं और उनमें से यह आवाज़

आरही है कि

" ऐसे दर्शन नहीं देने लगा "।

अब मोहना सोहना की हालत ने कुछ अचरज पलटा खाया। ठाकुर पूजा करते हैं परन्तु कलेजे को अशांति और पीड़ा खाये जाती है। जब हाथ जोड़कर बैठते हैं तब वही शब्द कानों में गूँजते हैं " ऐसे दर्शन नहीं देने लगा "। विद्या और तप हठ आदि के जितने साधन हो सकते थे किये परन्तु इन शब्दों की गुंजार ने उनका पीछा न छोड़ा।

समय व्यतीत होता गया और वह शुभ दिवस आया जब गुरुजी रायपुर पधारे*। वहाँ की रानी और अनगणित मनुष्यों का गुरुजी के हाथसे मुक्ति और "जियदान" मिलने की सूचना मोहना सोहना के कानों तक भी पहुँची जिससे इनको भी गुरुजी के दर्शन करने की तीव्र इच्छा हुई। परन्तु जितनी वेर यह दर्शन के लिये गये उतनी वेर ही इनको दर्शन नसीब न हुये। जब वहाँ से गुरुजी ने आगे के लिये कूच किया तब यह दोनों पहले से ही आगे सड़क पर जा खड़े हुये और यह सोचा कि अबके तो अवश्य ही गुरुजी के दर्शन करलेंगे। गुरुजी की सारी सेना तो उस रास्ते से गई परन्तु अन्तर्यामी गुरुजी उस सड़क को छोड़ किसी और रास्ते से हो सेना को दूर आगे जाकर मिले। इस प्रकार मोहना सोहना को अबके भी दर्शन न हुये जिससे उनको अत्यन्त निराशा हुई और यह पूर्ण विश्वास होगया कि उस सिक्ख के वाक्य "ऐसे दर्शन नहीं देने लगा" बिलकुल सत्य हैं और रहेंगे।

घर घर गुरुजी की चर्चा, उनके ईश्वरीय कौतुक, आत्म

* देखिये पृष्ठ ५४

सत्या, दयालुता और कीर्ति ने मोहना सोहना को यह निश्चय करा दिया कि यह ईश्वर के अवतार हैं और सच्चे ठाकुर वास्तव में यही हैं। ऐसे विचारों ने उनकी दर्शन इच्छा को और तीव्र बना दिया यहाँ तक कि जब न रहा गया तब दोनों ने आनन्दपुर गुरुजी के द्वार पहुँच कर उनके दर्शन की ठानी। अपनी सारी मालियत बेच डाली, अनेकों स्थानों पर कई कुएँ लगवा दिये जो आगे के लिये एक घूँट पानी न देने के बदले हजारों को सदैव के लिये पानी मिलता रहे। बहुत सारा धन धर्मशालाओं के लिये दे दिया और बाकी अन्य ग़रीबों को दान करके अपने तन पर ग़रीबों के से कपड़े पहन ग़रीबी वेष में "सच्चे ठाकुर" के दर्शन के लिये चल पड़े।

जब आनन्दपुर पहुँचे तब वहाँ भी इनके लिये गुरु दर्शन की आज्ञा न थी। अब इन्होंने यह विचारा कि अच्छा अब दर्शन की तो कोई आशा नहीं है यदि हो सके तो हमें यहाँ कोई सेवा करने को ही आज्ञा मिल जाय तो अपने शरीर से जो बन पड़े अपने "ठाकुर" की तुच्छ सेवा करके ही अपने तन मन को शुद्ध करेंगे। विद्वान् और कवि होने के अतिरिक्त मोहना सोहना दोनों वनस्पति विद्या में भी प्रवीण थे इसलिये उन्होंने गुरुजी के बाग़ के बड़े माली केसरासिंह के पास जा नौकरी के लिये विनय की। कुछ दिन काम कराकर जब माली ने इनको काम में अच्छा पाया तब इनको वहीं रख लिया। अपने धन्य भाग्य समझ दोनों बड़े प्रेम और चाव से काम करने लगे और थोड़े ही दिनों में गुरुजी के बाग़ की सुन्दरता को खूब बढ़ा दिया।

एक दिन गुरुजी बाग़ में सैर करते करते एक सुन्दर क्यारी को देख बड़े प्रसन्न हुए और केसरासिंह को शाबाशी दी।

केसरसिंह ने हाथ जोड़ गुरुजी से कहा "हे जगत के स्वामी! आपकी कृपा की भूख तो सदैव ही लगी रहती है, परन्तु यह कार्य जिस पर श्रीजी प्रसन्न हुए हैं दास का नहीं, यह छोटे माली का काम है जो अभी थोड़े दिनों से ही सेवा करता है। बड़ा ग़रीब है परन्तु आपके चरणों का बड़ा प्रेमी है"। गुरुजी यह सुन चुप हो रहे और उनके नयन कुछ ऊपर की ओर उठे, फिर कुछ चेहरे का रङ्ग पलटा और श्री मुख से वाक्य हुआ "ऐसे दर्शन नहीं देने लगा"। इतना कह गुरुजी वहाँ से चल दिये।

यह बात जब केसरसिंह ने सोहना से कही और सोहना ने जब घर जाकर मोहना को बताई तब मोहना सोहना दोनों ने यही कहा "हाँ! ठीक!! सच्चा ठाकुर यही है। हमने उस सिक्ख को पानी न पिलाने की बात कभी किसी तीसरे आदमी को नहीं बताई। इसलिये अन्तर्यामी ठाकुर यही नहीं तो भला इन्हें इस बातका पता कैसे चला? अच्छा, यदि दर्शन नहीं तो सेवा ही सही"।

अब मोहना सोहना के प्रेम और श्रद्धा की कोई सीमा न रही। काम करते, उठते बैठते, हर समय गुरुजी के ध्यान में मग्न रहते हैं। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया उनके मन और आत्मा निर्मल और शुद्ध होते गये। रोज़ गुरुजी के जब अनेकों कौतुक सुनते और देखते तब प्रेम ज़ोर मारता और चाहता "दर्शन", परन्तु "आज्ञा नहीं" इस कारण बंधे हैं। उनकी उस समय की दशा का ठीक वर्णन करना कठिन है:—

सेजं रमतु नैन नहीं पेखउँ, इह दुख का सिउँ कहउँ री।

गुरुजी के जन्मोत्सव का शुभ दिवस अब पास आता जा रहा था। मोहना सोहना ने कई बेबहार फूलों के पेड़ बड़े प्रेम और परिश्रम से केवल इसलिये लगाये थे कि उनके फूल उस दिन गुरुजी के लिये उपयोग में लाये जावें। परन्तु एक रात पहले ही जब कि वे सोये हुए थे रोडा जलाली सारे फूलों को तोड़कर ले गया। सुबह जब दोनों ने बाग़ को वीरान किया हुआ पाया तो वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े।

उधर से गुरुजी भी "मेरे लाल! मेरे लाल!!" कहते हुए नंगे पाँव ही भागे चले आ रहे हैं। वह देखिये! जिनको ईश्वर ने आप अपना पुत्र नवाज कर इस मर्त्यलोक में भेजा है, आनन्दपुर के आनन्द दर्बार में से पीड़ितों की पीड़ा हरने के लिये कैसे दौड़े आ रहे हैं। संगत भी वैराग में पीछे आ रही है और भाई मनीसिंहजी उन पुष्पों की पिटारी को इस विचार से उठाये ला रहे हैं कि इनका इस कौतुक से कोई विशेष संबंध है। देखिये! अब प्रेम के अवतार प्रीतमजी बाग़ के अन्दर आन पहुँचे हैं। शीघ्रता से उस कोने में पहुँचते हैं जहाँ दोनों लोथें वीरान चमन में सिसकती पड़ी हैं। दोनों के सीस को अपनी गोद में ले आँखें पोंछते हैं, माथे पर हाथ फेरते हैं और कहते हैं :—निहाल! मेरे लालो निहाल!!

कैसा अद्भुत दर्शन है! जिसके दर्शन की तड़प ने जन्मों की तारीखें डाल रक्खी थीं उसके प्रेम में, उसकी आज्ञा में बँधे रहकर, धन्य धन्य कह कर सेवा में लगे रहने ने आज यह कैसा रंग जमाया है। जिसके दर्शन की प्राप्ति एक साधु जन के श्राप ने बंद कर दी थी, वह दीन दयालु आज आप दयालु होकर दर्शन दे रहा है।

मोहना! सोहना! जागो, होश में आओ, ज़रा आँखें तो खोलो, जिनके दर्शन के लिये तुम इतने व्याकुल थे आज वह आप तुम्हारे द्वार पर आये हुए हैं। गुरु के लालो! देखो तो सही, "दर्शन नहीं देने लगा" में से "नहीं" उड़ गई है।

पर उठे कौन? वाह ईश्वर के रंग! यदि दर्शन आये हैं तो दर्शन करने वाले मौजूद नहीं हैं। सच्च है, प्रेमाभक्ति के चोज अनूठे हैं।

बीच में यह ईश्वरीय दर्शन हैं और चारों ओर सारी संगत की भीड़ है। अपने गुरु के प्रेम रंग को सारे तक रहे हैं। केसरासिंह माली अब पानी लेकर आ पहुँचा। सतगुरुजी ने अपने पवित्र हस्त कमलों से आप उन दोनों के मुँह में जल डाला, छींटे मारे और प्यार दे देकर कहा "मेरे नौनिहालो! आँखें खोलो!!"

अब धीरे से मोहना सोहना के नेत्र खुले, ईश्वरीय दर्शन आँखों में पड़ा, पर किस समय? जिस समय कि नयन कमज़ोर हो चुके थे। जब नेत्र दर्शन की ताब न झेल सके तो फिर मुँद गये, थोड़ी देर बाद फिर खुले और फिर मुँदे। इसी तरह कई बेर खुले और कई बेर मुँदे। जब कुछ पूरी होशसी आई तब इस ख़ुशी की भी कुछ समझ आई, पर निर्बल मन इतनी बड़ी ख़ुशी का बोझ उठाने के लिये कहाँ तैयार था। एकदम ख़ुशी का धक्का लगा और फिर बेसुधी होगई। अब श्री कलग़ीधर सतगुरु जी ने मोहना सोहना को अपने आत्मबल का सहारा दिया और ऊपर उठाया। तब वे होश में आये, उठे और जल्दी से उनके सीस गुरु के चरण-वन्दन में गिर पड़े। परन्तु गुरु जी ने दोनों सीस अपनी गोद में ले उनकी पीठ पर हाथ फेर कर ख़ूब प्यार दिया और कहा मेरे नौनिहालो! निहाल!! निहाल!!! इसी प्रकार भक्ति रस का यह गुरु समुद्र और नदी

सिक्खी का संगम-दर्शन कितने ही समय तक रहा, जिस जिस ने दर्शन पाया उस उस ने ही उसी समय से प्रेम का एक नया जीवन प्राप्त किया।

कितनी देर बाद मोहना सोहना को यह समझ आई कि गुरुजी नीचे ज़मीन पर ही बैठे हैं और बेअदबी होरही है। सजल नेत्र होकर कहा "सच्चे ठाकुरजी! बड़ी बेअदबी हो रही है, कृपा कीजिये"। अब सतगुरु जी दोनों को साथ ले उनकी कच्ची कुलिया में जा विराजे। सारी संगत वहाँ पास बाहर बैठ गई और उस दिन का दीवान वहीं सज गया!

अगले दिन ही गुरुजी की वर्षगाँठ थी। वह फूलों की पिटारी जो रोडा जलाली लाया था मोहना-सोहना के हवाले की गई। उन्होंने सब फूलों को बना सँवार कर भाँति भाँति के सेहरे मालाएँ बना अगले दिन सतगुरुजी को अर्पण किये। इस समय गुरुजी सुसज्जित दीवान में विराजमान थे और उन्होंने सारी संगत के सामने मोहना-सोहना की खूब बड़ाई की। सोहना जी उसी समय गुरुजी के ५२ कवियों में शामिल किये गये और अमृत जारी होने के बाद सोहनसिंह जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। और मोहनाजी स्त्री जाति में ईश्वर के प्यार और "नाम" की सुगंधि फैलाती रहीं।

मोहना सोहना जी को जब भरे दर्बार में गुरुजी ने यह कहा कि मैं तुम पर इतना प्रसन्न हूँ कि जो माँगो सोई दूँ तब सोहनाजी ने केवल यही विनती की कि रोडा जलाली जिसको कि सिक्खों ने रोक रक्खा है उसपर भी कृपा होनी चाहिये। यह मृदुलता देख सतगुरु जी ने रोडा जलाली को बुलाकर क्षमा किया और सोहना जी से "नाम" की बख्शिश कराई। रोडा जलाली उस दिन से सचमुच ही जलाली (तेजस्वी अथवा प्रकाशन) बन गया।

६—ब्राह्मणों की पोल।

ए क दिन गुरुजी के दर्बार में एक पंडित जी कथा कह रहे थे। एक सिक्ख ने प्रश्न किया कि भीम अर्जुन आदि के इतने बलवान होने की जो उपमा लिखी है वह यथार्थ है या रोचक अथवा उपमा मात्र ही है। पंडित जी ने उत्तर दिया कि अर्जुन आदि जितने प्रतापी बली हुए हैं उन्होंने यज्ञ, होम आदि करके किसी न किसी देवता को प्रकट किया था और उनसे वर प्राप्त करके ही इतने शूरवीर हुए हैं। फिर पंडितजी गुरु जी से कहने लगे कि आप भी एक भारी यज्ञ करावें और चंडिका देवी को प्रकट करावें। वह आपको वर देगी और फिर आप भली भाँति तुर्कों का नाश करें। गुरुजी हँस कर बोले "हे पंडित जी! देवी प्रकट करने की बात जो आपने कही है यह तो सब झूठ है और वर के लिये हमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं, क्योंकि मुझे सर्व शक्तिमान परमेश्वर ने स्वयं अपना पुत्र नवाज कर यहाँ भेजा हुआ है। सारे देवी देवता उस परम पिता के आधीन ही तो हैं।"

पंडितजी—नहीं महाराज! देवी प्रकट होने की बात झूठी नहीं है। जब अनुष्ठान पूरा हो तो देवी अवश्य प्रकटेगी। काशी में एक केशवदास पंडित रहते हैं जो दुर्गा को प्रकट कर सकते हैं। पर वह दक्षिणा बहुत लेते हैं।

इस समय गुरुजी के दर्बार में सिक्खों के अतिरिक्त बहुत सारे पंडित भी बैठे थे। पंडितों के देवी आदिक भ्रम और भूल को दूर करने के लिये और सारी हिन्दू प्रजा को

एक बार यह बतलाने के लिये कि असल शक्ति वास्तव में कौन है, गुरुजी ने आज्ञा दी कि केशवदास पंडित को बुलाकर देवी प्रकट की जाय।

संवत् १७५४ वि० चैत्र की नवरात्रि में लग्न मुहूर्त शोध कर केशवदास पंडित जी ने अपनी ब्राह्मण मण्डली को साथ ले यज्ञ प्रारम्भ किया। जो जो कुछ केशव पंडितजी ने कहा गुरु जी ने उसी तरह हर प्रकार की सामग्री इकट्ठी करवा दी।

एक दिन गुरुजी जब शिकार खेल कर वापिस आये और पंडितजी से देवी के प्रकट होने के बारे में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया "गुरुजी, एक बात है यदि आप क्रुद्ध न हों तो कहूँ"।

गुरुजी—अवश्य, बेखटके कहिये।

पंडितजी—बात यह है कि जब कोई इस प्रकार का यज्ञ कराया जाता है तो यजमान को कुछ नियम धारण करके रहना पड़ता है। हर प्रकार की हिंसा से बचना आवश्यक होता है पर आप तो नित्य कितने जानवरों का घात करते हैं। वह देखिये अभी आप के घोड़े के साथ ही कितने परिन्द शिकार किये हुये बँधे पड़े हैं। ऐसा करने से तो दुर्गा का प्रकट होना कठिन है।

पण्डितजी यह जानते थे, कि गुरुजी शिकार खेलने के बड़े शौक़ीन हैं इस लिये शिकार खेलना छोड़ेंगे नहीं और हम अनायास यह कह देंगे कि आपने तामसी वृत्ति नहीं त्यागी, इसी लिये देवी प्रकट नहीं हुई। परन्तु गुरुजी पंडितजी की यह चालाकी समझ गये और कहा "ज्वालामुखी पर भवानी को सदैव पशु की बलि चढ़ाई जाती है। तो भी आप जैसा कहें मैं

वैसा करने को तैयार हूँ क्योंकि मैं आपके नियम में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालना चाहता। लीजिये आज से मैं शिकार खेलना छोड़े देता हूँ"। यह कह गुरुजी ने अपने सेवक से कहा "जाओ! वह परिन्द जो मेरे घोड़े के साथ बँधे हुए हैं, उनकी रस्सियाँ खोल डालो"। जैसे ही उनकी रस्सियाँ खोली गईं, वह सबके सब मरे हुए परिन्द एक दम उड़ गये। पंडितजी यह करश्मा देख बड़े चकित हुए और मन ही मन में कुछ लज्जित भी हुए कि मैं एक ऐसे करामाती पुरुष के साथ धोखा कर रहा हूँ।

यज्ञ होते होते नौ महीने व्यतीत होगये और दुर्गा न प्रकटी। गुरुजी के पूछने पर पंडितजी ने कहा कि नवरात्रि के पहले दिन दुर्गा प्रकटेगी। वह दिन भी आया पर दुर्गा न प्रकटी। फिर पंडितजी ने गुरुजी से कहा कि दुर्गा प्रकट हुआ ही चाहती हैं, केवल एक उच्चकुल के श्रेष्ठ नर की बलि चाहती है।

गुरुजी ने यह सुनते ही झट अपने म्यान से तलवार निकालली और केशव पंडित के सर पर जा खड़े हुए, और बड़े गम्भीर स्वर में बोलेः—"अहो, महाराज आप धन्य हैं! आइए!! अब तैयार हो जाइए!!! आप से; उत्तम कुल का मनुष्य इस जग में मुझे कोई दूसरा नहीं दीख पड़ता, इसलिये दुर्गाजी के सामने अब मैं आपको ही बलि चढ़ाता हूँ। घबराइए नहीं! आप यह विश्वास रखें कि जब भगवती प्रकट होंगी तो उनसे पहला वर मैं यही माँगूँगा कि वह आपको ज़िन्दा कर दें"।

गुरुजी की उग्र मूर्ति, उनकी लाल आँखें और हाथ में नंगी तलवार देख तथा बलि चढ़ने की ललकार सुन, पंडितजी के तो होश फ़ाख़्ता हो गए। हाय! अब क्या करें? कहाँ

जायँ ? क्या यों मरना होगा ? जीतेजी अग्नि कुण्ड में जलना होगा ? हाय ! हाय !! यह यज्ञ क्यों रचाया !!! हाय, अपने हाथों ही अपनी जान गँवाई। ऐसे विचारों ने पंडितजी का चेहरा बिलकुल ज़रद और मुरदा सा बना दिया, हाथ पैर थर-थर काँपने लगे, ज़बान सूख कर ऐंठ गई और बड़ी मुश्किल से डरते डरते बोले:—"महाराज, थोड़ा समय दीजिये जो मैं बलि चढ़ने से पहले स्नान करके शुद्ध तो हो आऊँ"।

गुरुजी वास्तव में पंडितजी को मारना नहीं चाहते थे इसलिये उनको जाने की आज्ञा दे दी। वहाँ से निकलते ही पंडितजी ऐसे हवा हुए कि फिर वहाँ उनका कहीं पता न चला। दूसरे पंडितों ने जब अपने आचार्यजी का यह हाल देखा तब वह भी सबके सब, कोई पेशाब के बहाने, कोई किसी बहाने, वहाँ से झट पट खिसक दिये। तब गुरुजी ने सारी बची हुई सामग्री को एक साथ हवनकुण्ड में डाल दिया जिससे उसकी ज्वाला बहुत ऊँची ऊँची गई और बड़ी दूर तक दिखाई देनेलगी। इसका प्रकाश और भी दूर दूर तक दिग्दिगांतर में फैल गया। इस बड़े भारी प्रकाश को देख सब लोगों ने यह समझा कि यज्ञ सम्पूर्ण होकर सचमुच ही भगवती प्रकट हुई हैं और इस शुभ समाचार को सुनने के लिये वह सब आकर आनन्दपुर में इकट्ठे होने लगे।

उधर से गुरुजी भी उसी तरह अपने हाथ में नंगी तलवार लिये आनन्दपुर आ पहुँचे। जब लोगों ने देवी के प्रकट होने के बारे में पूछा तब गुरुजी ने वही नंगी तलवार उनके सामने की और कहा:—"लो यह देखो जो मेरे हाथ में है, यही देवी है!" जो लोग वहाँ उपस्थित थे इनमें से कइयों ने तो समझा कि

देवी ने प्रकट हो अपने हाथ से गुरुजी को यह तलवार दी है और अब वे अजेय हो गये हैं, परन्तु दूसरे लोग जो कुछ भी बुद्धि रखते थे उनको ब्राह्मणों का छल प्रकट हो गया और वे समझ गये कि नंगी तलवार और बाहुबल ही वास्तव में असल शक्ति अथवा साक्षात् दुर्गा है। इस प्रकार सरल विश्वासियों ने तो गुरुजी को भवानी का साक्षात् वर पुत्र माना और समझदारों ने उन्हें श्री अकाल पुरुष के अपने नवाजे पुत्र के रूप में अथवा अपने गुरु, सच्चे हितैषी, धर्म रक्षक और देश भक्त के रूप में देखा।

जाकी रही भावना जैसी।
हरि-मूरति देखी तिन्ह तैसी॥

इस समय आनन्दपुर में बड़े लोग इकट्ठे हो गये थे। इस अवसर को अच्छा समझ गुरुजी ने अब एक बड़ा भारी भोज कराया जिसमें चारों वर्ण के प्राणियों को बुलाया और सबको एक साथ बैठाकर खाना खिलाया। जब सब भोजन पा चुके तो पंडित केशवदास भी वहाँ आ पहुँचे। गुरुजी ने भोजन पाने को कहा, तिसपर पंडितजी बड़े क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि आपने सबको तो बुलाया पर मुझे नहीं बुलाया। अब मैं इन अछूतों का बचा हुआ भोजन कैसे पा सकता हूँ? गुरुजी ने उत्तर में यह सवैये उच्चारण किये:—

जो किछु लेख लिख्यो बिधना, सोई पायत मिश्रजू शोक निवारो।
मेरो कछू अपराध नहीं, गयो याद ते भूल न कोप चितारो॥
वागो निहाली पठै देहों आज, भले तुमको निहचै जिय धारो।
छत्री सभै कृत विप्रन के, इनहूँ पै* कटाछ कृपा कै निहारो§॥१॥

* अपने सिक्खों की ओर हाथ करके।

§ यह व्यङ्ग वचन है।

यहाँ गुरुजी अब अपने सिक्खों की श्लाघा करने लगे और पण्डितजी को बतलाया कि जिनको आप अछूत कहते हैं वह वास्तव में हैं क्याः—

जुद्ध जिते इनही के प्रसाद, इनही के प्रसाद सु दान करे।
अघओघ टरें इनही के प्रसाद, इनही की कृपा फुनिधाम भरे॥
इनही के प्रसाद सु विद्या लई, इनही की कृपा सभ शत्रु मरे।
इनही की कृपा के सजे हम हैं, नहीं मोसे गरीब करोर परे॥ २॥

प्रिय पाठक! एक भरे दीवान में बैठ, अपने सारे सिक्खों और अन्य शिष्य गणों के सामने श्री गुरुजी का इस प्रकार उन सब की श्लाघा करना और कहना कि "नहीं मोसे गरीब करोर परे," यह जादू भरे शब्द एक ऐसी तेज़ तलवार थे कि जिसने उस अभिमानी केशव पण्डित के सामने अभिमान को समूल काट कर रख दिया। यहीं बस नहीं। इसके आगे श्री गुरुजी ने और बताया किः—

सेव करी इनही की भावत, और की सेव सुहात न जी को।
दान दियो इनही को भलो, अरु आन को दान न लागत नीको॥
आगे फलै इनही को दियो, जग में जस और दयो सब फीको।
मो गृह में तन ते मन ते, सिर लौं धन है सबही इनही को॥ ३॥

बस, केशव पंडित के अभिमान-पूरित हृदय पर एक दम मानो एक गोला सा आकर टूट पड़ा। आगे के लिये इस नई रीति का प्रयोग देख और सुन वह बड़ा क्रुद्ध हुआ, पर करता क्या? अपनी क्रोधाग्नि को केवल नेत्रों द्वारा जल धारा से ही शान्त कियाः—

चटपटाय चित में जरयो, त्रिण ज्यों क्रुद्धित होय।
खोज रोज के हेत लग, दयो मिश्रजू रोय॥ ४॥

७—पाँच प्यारे।

अब वैसाखी का दिवस निकट आ रहा था। गुरुजी ने दूर दूर आज्ञा पत्र भेज दिये कि इस वैसाखी के दिन आनन्दपुर अवश्य पहुँचें। कई देश देशान्तों की संगत आ पहुँची और वैसाखी वाले दिन गुरुजी का दर्बार ऐसा खचाखच भर गया जैसा कि पहले कभी नहीं भरा था। बड़ा ही अनोखा दृश्य है। गुरुजी सिंहासन पर विराजमान हैं। एक ओर एक तम्बू खड़ा है, दूसरी ओर हज़ारों की गिनती में संगत बैठी है। कीर्त्तन समाप्त होता है और गुरुजी एकदम खड़े हो नंगी तलवार हाथ में ले पुकारते हैं:—"ओ मेरे कहाने वालो! आओ, सीस भेंट करो। मुझे तुम्हारे सीस की ज़रूरत पड़ गई है। आओ! तुम में से कोई एक आओ जो मेरी तलवार की भेंट होने के लिये तैयार हो"।

आह! यह क्या नई बात? सारी संगत में एकदम से खलबली मच गई और बिलकुल सन्नाटा छा गया। सब हैरान हैं कि यहाँ आये तो हम आनन्द लेने के लिये थे, पर यहाँ यह क्या उलटी बात होने लगी है? यहाँ तो सिर माँगा जा रहा है। आह! कौन आगे बढ़े? कौन उठे जो बिना काल अपनी जान न्यौछावर करे?

सब सिक्ख इस समय अपने इन दसवें गुरु को केवल उनके प्रेम के रूप में ही जानते थे और अब तक वह बिलकुल भूल गये थे कि श्री गुरु नानक देवजी ने भी कभी इसी प्रकार बड़ी भयङ्कर स्वर में कहा था कि:—

जे तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिरु धरि तली गली मेरी आउ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै।
सिरु दीजै काणि न कीजै॥ २०॥

— श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी।

उस समय केवल एक लहणाजी ही इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे और बाकी के सब डर कर भाग गये थे। जैसे उस समय वे गुरु नानक देवजी की परीक्षा में फ़ेल होगये थे वैसे ही अब भी गुरु जी के असली मन्तव्य को कोई न समझ सका और यह किसी के ध्यान में भी न आया कि गुरु जी तो केवल हमारी परीक्षा ही ले रहे हैं। यह तो भला उन्हें क्या ही मालूम पड़ना था कि इस परीक्षा द्वारा गुरु जी ने अब से सदैव के लिये एक नवीन जीवन का अमृत स्रोत प्रवाहित कर देना है।

जब पहली पुकार पर कोई भी न उठा तब गुरुजी ने फिर उच्च स्वर से पुकार कर कहा "क्या कोई नहीं है ! कोई नहीं है जो अपना सीस मेरी भेंट करे ?"

अब लाहौर निवासी दयाराम नाम का एक ग़रीब पर तेजस्वी रूप वाला क्षत्रिय वीर उठता है और गुरुजी के आगे हाथ जोड़ सीस झुका कहता है :—"ऐ मेरे गुरु ! आपको सिर की ज़रूरत है। यह लीजिये मेरा सिर हाज़िर है"।

गुरुजी इस सीस भेंट करने वाले को तम्बू के अन्दर ले जाते हैं और फिर खून आलूदा तलवार चमकाते हुए बाहर आते हैं और पुकार कर कहते हैं "ऐ मेरे सिक्खो ! एक सीस और चाहिये। आओ अब और उठो कौन आता है ?"

सारी सभा में बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ है। ख़ून लसी

तलवार को देख सब यही सोचते हैं कि कहीं गुरुजी पागल तो नहीं हो गये। एक का सर तो अभी काट डाला है, अब कहते हैं एक और आये। पर देखिये! एक और ग़रीब परन्तु वीरतापूरित चेहरे वाला मनुष्य धर्मदास दिल्ली निवासी जाट उन पागल कहने वालों में से उठ खड़ा होता है और आगे बढ़ तलवार के धार के घेरे में जा सीस नवाता है और कहता है:- "ऐ मेरे गुरु! यह सीस जिस दिन से तुझको नवाया है उस दिन से ही तेरा हो चुका है। अब तेरा तुझको देने में मेरा क्या लगता है?"

गुरु जी इसको भी पकड़ कर तम्बू के अन्दर ले गये और फिर लाल तलवार चमकाते हुए बाहर आकर और ज़्यादा भयङ्कर रूप बना कहने लगे-"ओ! मेरे अपनो!! एक सीस और दो"।

फिर तो सबको यह विश्वास हो गया कि गुरु जी सचमुच पागल हो गये हैं। बहुत सारे इसी डर से कि कहीं हमारा सर भी न काटा जाय वहाँ से उठ भागते हैं और पीछे को देखते भी जाते हैं कि हमारे पीछे कोई हमको पकड़ने तो नहीं आरहा। बैठे हुओं में से अब एक और मनुष्य मुहकमचन्द नामक द्वारका निवासी छीपा (शूद्र) उठा और गुरु जी के सामने जा सीस नवाया। गुरु जी इसको भी अन्दर ले गये और फिर रक्त-रञ्जित तलवार हिलाते हुए बाहर आकर पुकारते हैं-"एक और!"

उधर तम्बू की एक ओर से खून की धारा बह निकली और इधर सारी संगत पर मृत्यु का भय छा गया तो भी उनमें से एक और हँस-मुख पुरुष साहबचन्द नामक बीदार का

एक नाई उठ खड़ा होता है और गुरु जी के सामने जा सर झुकाता है। इसको भी गुरु जी अन्दर ले जाते हैं और फिर बाहर आकर उसी तरह एक और सीस माँगते हैं। एक प्यारी सूरत वाला हिम्मत नाम का कहार जगन्नाथ निवासी और आगे बढ़ा और उसको भी गुरु जी तम्बू में ले गये।

इन पाँचों को गुरु जी ने अब अपने ईश्वरीय बल द्वारा पुनर्जीवित किया और स्नान करा कर नये वस्त्रों से सुसज्जित किया। फिर तम्बू का पर्दा उठा। अन्दर से आगे आगे गुरु जी और पीछे पीछे उनके "पांचों प्यारे"—वेही पाचों सीस भेंट करनेवाले—चले आते हैं।

अहा! देखिये, इन पाँचों के मुख पर अब क्या ही निराली छटा छा रही है। इनकी सूरतें अब पहचानने में ही नहीं आती हैं, यह तो सब अब गुरु मूर्ति बनी हुई हैं। गुरु ने अपनी अपार कृपा से इन पाँचों को अपना सा ही बना लिया है। देखने मे पाँचों बिलकुल गुरु जी जैसे दीख पड़ते हैं, वैसे ही केसरी रंग के नवीन वस्त्र पहने हुये हैं, सर पर वैसे ही केसरी रंग के सुन्दर साफ़े बँधे हैं, पाँचों ही गुरु जी की मानिन्द शस्त्रों से सुसज्जित हैं, और पाँचों के चेहरे पर वही ईश्वरीय तेज एक अनोखी झलक दे रहा है जो गुरु जी के श्री मुख पर सदैव झलकता रहता है। और इन पाँचों के बीच में गुरु जी की उग्र मूर्ति उसी प्रकार के नवीन वस्त्र अस्त्र धारण किये एक कैसी अलौकिक छवि दे रही है!

यह देख सारे सभासद्गण बड़े विस्मित हुए और सब को अत्यन्त पछतावा हुआ कि हाय! हमने अपने गुरु की सेवा में क्यों न सिर दिया? उसी समय उपस्थित जनों की भीड़ में से

एक और आगे बढ़ा और गुरुजी के चरणों में गिर पड़ा। कहने लगा "गुरुजी! तीन पीढ़ियों से सिक्ख हूँ। मैं तो तकता ही रह गया कि आप फिर बाहर आकर एक और सीस माँगेंगे"। एक और ने आगे हो कहा "कई बेर बढ़ा, कई बेर झिझका पर आप तक न पहुँच सका"। इतने में एक और आया और रो रो कर बोला "गुरुजी! पाँच सीस तो खुशी से भेंट हुए पर मेरा सीस इस दण्ड में काट दीजिये कि मैं अपने गुरु की माँग पर पहिले आगे नहीं हुआ और मैंने इस नाशवान शरीर को आपके हुक्म से ज़्यादा प्यार किया"।

इसी तरह जब गुरुजी ने देखा कि अनेकों और अगणित ही रो रहे हैं और प्रेम में पछता रहे हैं तब गुरु जी ने सब को धैर्य दिया और कहा कि तुम सब मेरे ही हो। मैं तुम्हारा हूँ। तुम "विमुख" नहीं हो। "विमुख" वे हैं जो यहाँ से भाग गये हैं और इस समय कोई दो कोस और कोई चार कोस पर हैं। तुम सब "सम्मुख" हो और ये जो मेरे साथ हैं यह हैं "गुरुमुख" यह हैं मेरे "पाँच प्यारे" जो कि मेरी अपूर्व परीक्षा में भली भाँति उत्तीर्ण हुए हैं। आप सब किसी प्रकार विस्मित न होवें, मुझे अभी अगणित सिरों की और ज़रूरत पड़ेगी और मैं विश्वास करता हूँ कि आप लोगों में से अगणित ही शूर वीर आवश्यकता के समय अपने सिर देने तथा प्राण अर्पण करने के लिये तैयार हो जायँगे। देश और धर्म की रक्षा अब आप लोगों के द्वारा ही होगी। आप सब धन्य हैं! और धन्य है गुरु की सिक्खी! यह कह कर गुरु जी ने उस दिन का दीवान विसर्जित किया और दूसरे दिन के दीवान के लिये सबको श्री केसगढ़ के स्थान पर ठीक समय पहुँचने को कहा।

८—अमृत प्रचार।

सरे दिन संवत् १७५६ वैसाख कृष्ण प्रतिपदा को दीवान अमृत समय से ही खचा खच भर गया। "आसा की वार" का कीर्तन समाप्त हुआ तब गुरु जी अपने सिंहासन पर से उठे और अपने "पाँचों प्यारों" को संगत के सम्मुख खड़ा कर आप पास ही एक आसन पर आ बैठे और एक सफ़ेद चमकता हुआ सर्व लोह का बाटा* अपने सामने रख लिया और उस में अपना दुधारा खंडा चलाने लगे। बाटे में सतलज नदी का निर्मल जल डाला और फिर सारी संगत को सावधान करके एक उच्च स्वर में कहा :—

"खंडा प्रथमैं साजि कै जिन सब संसार उपाया"

आप सब उस श्री अकाल पुरुष का ध्यान कीजिये और मैं अब एक ऐसी अद्भुत वस्तु तैयार करता हूँ जिसको पीते ही आप सब में एक अपार शक्ति भर जायगी और आप जीवित ही मुक्त हो जायेंगे। यह कह कर गुरु जी एक अजीब रंग में आये और वाणी पढ़नी शुरु की। साथ साथ खंडे को जल में चलाते हैं और नेत्रों द्वारा टिकटिकी बाँध कर ईश्वरीय शक्ति को जल में प्रवेश करते जाते हैं। थोड़े समय बाद गुरु जी ने एक कटोरे में वह जो तैयार किया था थोड़ा सा निकाल कर परीक्षा करने को बाहर एक ओर रक्खा। दो चिड़िया आईं और उन्होंने उसको पिया। पीते ही वे दोनों आपस में ऐसी लड़ीं कि लड़ते लड़ते दोनों वहीं मर गईं।

---

* एक प्रकार की बिना कुंडों की कड़ाही।

यह विचित्र दृश्य देख एक सिक्ख ने तुरन्त जा कर माता जीतोजी को सूचना दी कि आज गुरु जी एक ऐसी अद्भुत वस्तु तैयार कर रहे हैं कि जिसको अभी दो चिड़ियों ने पी आपस में ऐसी लड़ाई की है कि वे दोनों लड़ाई करती करती मर गई हैं। इसी वस्तु को गुरु जी सिक्खों को भी पिलाया चाहते हैं। कहीं सिक्खों का भी यही हाल न होजाय कि वे आपस में ही इस तरह लड़ लड़ कर मर जायें। यह सुनते ही श्री जीतोजी झट उठीं और कुछ बताशे ले गुरु जी के निकट पहुँच गईं और मुस्कराते हुए कहने लगीं :—

"मेरा हिस्सा भी!"

गुरु जी जीतोजी को देख बड़े प्रसन्न हुए और कहा :—

भलो भयो तू चलि करि आई।
नीर बिखै पावहु मधुराई॥
नर नारी द्वै ते सन्ताना।
प्रगटत है सभि हुँ जग जाना॥

जीतोजी ने वह बताशे तब बाटे में छोड़ दिये और गुरु जी ने ख़ुश होकर कहा:—

अब मिष्टान जु पायहु तोही।
याते प्यार परसूपर होई॥
नातर पन्थ होत बड क्रूरा।
तेज क्रोध कलहाकर पूरा॥

जब फ़ौलादी खंडे के स्पर्श से और गुरु वाणी के प्रभाव से और बताशों की मिठास से सारी ईश्वरीय शक्तियाँ पूर्ण

रूप से जलमें प्रवेश हो चुकीं तब वह अद्भुत वस्तु बन कर तैयार हो गई जिसको कि गुरु जी ने "अमृत" के नाम से पुकारा और जिसको सुर, नर, मुनि, सब के सब जुगों जुगान्तों से खोजते चले आये हैं। इस अमृत को गुरु जी ने अपने पवित्र हस्त कमलों से अपने पाँचों प्यारों को एक ही बाटे से छकाया और सदैव के लिये खान-पान जाति-पाति आदि की बाधा को एक झटके में दूर कर दिया। अमृत पान करते ही वे पाँचों प्यारे एक अजब सरूरमें आये और एक दैवी ध्वनि में गा उठे:—

सुरि नरि मुनि जन अमृत खोजते, सो अमृत गुरु ते पाया।
पाया अमृत गुरु कृपा कीनी, सच्चा मनि वसाया॥

— श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी।

तब गुरु जी ने पाँचों को उपदेश दिया कि आज से:—

गुरु घर जन्म तुम्हारे होए। पिछले जाति वरण सब खोए॥
जन्म केसगढ़, वासि अनंदपुर। होए पूत जाति तुव सतगुर॥
चार वरण के ऐको भाई। धर्म खालसा पदवी पाई॥
हिन्दू तुरक तै आहि निआरा। सिंह मजब अब तुमने धारा॥
सिंह नाम परमेश्वर को है। बड़े दब दबे वारो सो है॥
राखहु कच्छ, केश, कृपान। सिंह नाम को इहै निशान॥

— पन्थ प्रकाश।

और कहाकि अब आप हैं "खालसा," अब आपके नाम आजसे दयाराम, धर्मदास. मुहकमचन्द, साहब चन्द, हिम्मत नहीं रहे। आज से आप हैं दयासिंह, धर्म सिंह, मुहकमसिंह, साहबसिंह और हिम्मतसिंह। आइये, अब सारी संगत को एक उच्च स्वर से बतला दीजिये कि:—

वाहगुरू जी का खालसा,

श्री वाहगुरू जी की फ़तह !*

तब पाँचों ने बड़े जोर से यह शब्द पाँच दफ़ा उच्चारण किये और सारा आकाश खुशी के मारे गूँज उठा।

वाहिगुरू जी का भयो खालसा सु नीका अति,
वाहिगुरू जी की मिल फ़ते सो बुलाई है।
पीर पातिशाह करामाती जे अपर पन्थ,
हिन्दू के तुरक हूँ की कान को मिटाई है॥
तीसरा मजब जग देखके अजब महाँ,
वैरी के गजब परयो छीनै ठकुराई है।
धर्म स्थापबे को, पापन के खापबे को,
गुरू जापबे की नई रीति यों चलाई है॥

पाँचों को इस प्रकार हर तरह से समर्थ करके अब श्री गुरुजी अपने सिंहासन से नीचे उतरे और उन पाँचों प्यारों के सामने हाथ जोड़कर खड़े होगये और कहने लगे "आप पाँचों अब ख़ालसा हैं। ख़ालसाजी ! मुझे भी अब ख़ालसा बना लीजिये"। पहले तो पाँचों प्यारे काँपे पर फिर "काठ की पुतली क्या करे बपुरी, खिलावन हारो जाने," वे पाँचों उठे और उसी तरह अमृत तैयार किया जिस तरह से कि श्री गुरुजी ने तैयार किया था और तैयार करके दाता को दान किया। देखिये वह गुरु अवतार, गुरुओं का गुरु अब बन गया है ख़ालसा और

* तात्पर्य यह है कि "अब वाहगुरू अर्थात् परमात्मा का खालसा अर्थात् खालिस (निर्मल) पन्थ बनकर तैयार हो गया है और क्योंकि जीत सदैव वाहगुरू (ईश्वर) की ही है इसलिये अब से हर मैदान में ख़ालसा ही फ़तह अर्थात् विजय प्राप्त करेगा"।

गोविंदराय से होगया है गोविन्दसिंह । इस समय सारी संगत में से एक ध्वनि उठी :—

"वाह ! वाह !! गुरु गोविंदसिंह, आपे गुरु चेला" ।

इस प्रकार आप ख़ालसा बनकर ऊँच-नीच के भेद को सदैव के लिये मिटा कर गुरुजी फिर अपने सिंहासन पर जा विराजे और सब संगत से कहा "मौत पहले बनी है। शरीर पीछे। शरीर नहीं रहेगा। मौत आयेगी अवश्य एक दिन। इसलिये मत डरो मौत से। सदा तैयार रहो मौत के लिये। जिसको मौत स्वीकार है, जो मेरे लिये मरने को तैयार है, जो मेरे साथ मेरे लिये मरना इस जीवित रहने से अच्छा समझता है वह अब आये और ख़ालसा बने"।

अब पच्चीस सिक्ख और आगे बढ़े और अमृत पान करके ख़ालसा बने। यह "मुक्ते" कहलाये। फिर सवा सौ और ने अमृत पान किया और ख़ालसा हो गये। इनको गुरुजी ने "दीदारी" कहा। इसी तरह फिर और आये और उस पहले दिन ही कोई बीस हज़ार नर-नारी ख़ालसा सज गये।

इस अवसर पर जो व्याख्यान गुरुजी ने दिया था उसका सारांश औरंगज़ेब को उसके पत्र सम्पादक ने जो उस समय वहीं गुरुजी के दर्बार में मौजूद था, उसी दिन इस प्रकार लिख कर भेजा था:—"आप सब एक ही धर्म में आजायँ और दुई को मार भगायँ। हिन्दू कौम के चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र, इन चारों के लिये धर्म शास्त्रों में प्रथक् प्रथक् धर्म मार्ग नियत किये हुए हैं, उन सबको अब छोड़िये और एक ही प्रेम के मार्ग पर पैर धरिये। आप सब आपस में एक दूसरे को भाई भाई समझें और अपने आप को किसी दूसरे से बड़ा

न समझें। गंगा आदि तीरथ स्थानों को जो महत्वता वेदों शास्त्रों में दी हुई है उसको आप अपने दिलों से निकाल दें और गुरु नानक और अन्य गुरुओं के अतरिक्त हिन्दुओं के देवी देवताओं को जैसा कि राम, कृष्ण, ब्रह्मा, दुर्गा आदि को न मानें। मेरी पाहुल लेकर चारों वर्ण एक ही बरतन में खायें और आपस में किसी एक दूसरे से घृणा न करें"। *

पत्र-सम्पादक ने इसको भेजते समय साथ ही अपनी रिपोर्ट इस प्रकार लिख कर भेजीः—"इस तरह की बहुत सारी बातें जब गुरु ने दर्बार में कहीं और लोगों ने सुनीं तो बहुत सारे क्षत्री और ब्राह्मण लोग उठ खड़े हुए और कहने लगे कि हम केवल उस धर्म को ही मानेंगे जो गुरु नानक और दूसरे गुरुओं ने धारण किया था। इसके अलावा बहुत सारे औरों ने खड़े होकर यह कहा कि हम उस धर्म को कदापि नहीं मान सकते जो वेदों और शास्त्रों के विरुद्ध है और हम अपने उस धर्म को जिसके हमारे पुरखा बराबर पाबन्द रहे हैं, एक छोकरे के कहने पर कभी नहीं छोड़ेंगे। यद्यपि बहुतों ने ऐसा कहा, तो भी बीस हज़ार ने गुरु की आज्ञा मानली और उसके अनुयायी बन गये"। *

इस तरह पहले दिन ही जब बीस हज़ार ख़ालसा बन गए तो इन्होंने फिर गाँव गाँव और शहर शहर अमृत पान कराया और घर घर ख़ालसा सजाया। थोड़े ही दिनों में लाखों नर-नारी ख़ालसा पन्थ में शामिल हो गये और गुरुजी का प्रताप दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा।

---

* असल जोकि औरंगज़ेब के पास भेजा गया था वह फ़ारसी बोली में है। यह उसका भाषा अनुवाद है

"ख़ालसा" केवल नाम ही नाम नहीं है :—

इह परम खालसा पन्थ जोइ।
इह असी केत को विरद सोइ॥
बुरका अकाल दीनो सु आप।
चिच धार अधिक गुरु को प्रताप॥
इह जगत मध्य ते काढ नाथः।
दं अमी शुद्ध कीनो सनाथः॥

ख़ालसा एक जादू का पद है जिसको सुनते ही पवित्रता आँखों के सामने आजाती है और वाहिगुरू (ईश्वर) का अनन्य प्रेम झलकता है। ख़ालसा एक जीता जागता आदर्श है और उस पुरुष का नमूना है जो कि सारे संसार पर एक प्रतीत होकर हर एक नर-नारी को वह कुछ बना सकता है जो कि सृष्टि के कर्त्ता की ऐन मुराद है। ख़ालसा एक फ़र्ज़ है जो यह रूह फूँकता है कि अपने सारे सुखों को छोड़ अपना सब कुछ "ख़ालसा" पर से निछावर करदे। इतिहास बतलाता है कि जब जब ख़ालसा की टेर कानों पड़ी तब तब ही हर एक ख़ालसा ने अपना आप और अपना सब कुछ निछावर कर डाला।

कवि "सेनापति" ने जो कि गुरु जी के दर्बार में उस समय वहीं मौजूद थे जिस समय कि गुरुजी ने अमृत तैयार किया और ख़ालसा बनाया, क्या ही अच्छा लिखा है:—

कलि मैं कलि धारि अकारि किथो, करि आपन दूत संहारन को।
चमकी दिस चारहूँ जोति महा, जग पाप समूह बिडारन को॥
करि खालस जाप दए हरि न, हथियार अपार जुझारन को।
गुरु गोविन्दसिंह किये इतनो, भव सागर पार उतारन को॥१॥

भए सिंह सूरे । किए काज पूरे ॥
अचल नीव डारी । टरैगी न टारी ॥ ३३ ॥
यहै बात जानो । रिदै साच आनो ॥
किनो पन्थ ऐसा । कह्यो आप तैसा ॥ ३४ ॥
छपै न छपाया । घटै न घटाया ॥
दिनों दिन सवाया । सु डंका वजाया ॥ ३५ ॥
सुनै घोर ताकी । मिलै ताहि झांकी ॥
सरण ताहि आवै । सोई सुख पावै ॥ ३६ ॥

कल में करनहार निरंकार कलाधार,
जगत के उद्धारवे को गोविन्द सिंह आयो है ।
असुर संहारवे को दुर्जन के मारवे को,
संकट निवारवे को खालसा बनायो है ॥
निन्दक को निन्द दई सिक्ख दई सिक्खन को,
ताके महातम ते रैन दिवस ध्यायो है ।
खालसे की सिक्खन की निन्दक जो निन्दा करै,
जान बूझ नर्क परै ऐसो वतायो है ॥ १३० ॥

पाक्य कियो करनहार सन्तन कियो विचार,
सुपने संसार ताहि काहि लपटाइये ।
विखयन सिऊं तज स्नेह सतगुरु की सिक्ख लेहि,
विनसै छिन माँहि देहि यमपुरि में जाइये ॥
सीस न मुंडाओ मीत हुका तज भली रीत,
प्रेम प्रीत मन कर शवद कमाइये ॥
जीवन दिन चार सभझ देख बूझ मन विचार,
वाहगुरु गुरूजी का ख़ालसा कहाइये ॥ १६७ ॥

—श्री गुरु सोभा ।

९—पहाड़ी राजाओं को उपदेश।

ब ख़ालसा "तैयार बर तैयार," * सजा सजाया, सन्नद्ध बद्ध, आनन्दपुर की भूमि पर चलता फिरता दिखाई पड़ा तो यह सूचना सारे देश में फैल गई कि श्री गुरु गोविन्दसिंहजी ने ख़ालसा प्रकट किया है। जब ख़ालसा प्रकट होने की ध्वनि नगर नगर और ग्राम ग्राम में पहुँचने लगी और नित्य प्रति हज़ारों की गिनती में लोग ख़ालसा बनने लगे और गुरुजी का वैभव अच्छे-अच्छे राजाओं और बादशाही सूबों के वैभव को भी मात करने लगा तो शिवाल्क पर्वत की बाईस धाराओं के हिन्दू राजाओं को इसकी बड़ी चिन्ता हुई। सारे राजा नवबिलासपुर में आकर इकट्ठे हुए और आपस में विचार करने लगे कि गुरुजी ने यह जो हमारे राज्य में रहकर फ़ितूर मचा रक्खा है इसका अन्त क्या होगा। बहुत सोच विचार के बाद यह मत पास हुआ कि पाँच सात राजा जाकर अपनी आँखों से सब हाल देखें और फिर जैसा ठीक मालूम पड़े किया जाय।

जो राजा इस काम के लिये चुने गये थे वे आनन्दपुर पहुँचे और पहुँच कर आदर सम्मान पा चुकने के पश्चात गुरुजी से वार्तालाप शुरू किया।

अजमेरचन्द ✻—यह आपने ख़ालसा एक नया मजहब-

---

*"तैयार बर तैयार" उसको कहते हैं जो सदैव अथवा आठों पहर अपने कर्तव्य में तत्पर रहे।

✻ सं० १७४६ वि० में भीमचन्द राजा बिलासपुर का मर चुका था और उसका पुत्र अजमेरचन्द इस समय गद्दी पर था।

बनाया है। हिंदू धर्म की शिखा सूत्र धोती सब उड़ा दी है। वर्ण जाति के भेद भी मिटा दिये हैं। लंगर भी सब एक कर दिया है। यह आपने बिलकुल ठीक नहीं किया है।

गुरुजी—हे राजन्! अपना राजपूती अंश विचारो। किसी समय उद्धार करने के निमित्त तुम एक अग्नि कुण्ड में से उपजाये गये थे, उसे याद करो। तब जाति वर्ण सब एक करके तुम राजपूत बने थे। हाँ उस समय धर्म तुम्हारे में मौजूद था और तुम देश की रक्षा भी करते थे। आज तुम्हारे कबीले, बहू बेटियाँ, धन धाम तुर्क छीने लिये जाते हैं। नहीं! नहीं!! तुम्हारे अन्दर अब वह आन नहीं रही। स्वाभिमान नहीं रहा। आप अपनी बेटियाँ तक ज़ालिमों को दे देते हैं। बड़े बड़े राजा अपनी बेटियों को अपने आप डोले में डाल मुसलमानों के घर पहुँचा देते हैं। शोक! महा शोक!! धर्म कहाँ है? शिखासूत्र कहाँ है? वर्ण जाति की उच्चता कहाँ है? खाने पीने की स्वच्छता कहाँ है? तुम्हारे बड़े बड़े मन्दिर गिराकर वहाँ मसजिदें बनाली गई हैं। आप लोग तलवार के ज़ोर से मुसलमान बनाये जा रहे हैं। काश्मीर के पंडित भागे भागे फिरते हैं। उनमें से हज़ारों ही मुसलमान होकर गुलामी कर रहे हैं। घर घर और गाँव गाँव नमाज़ें और रोज़े आगये हैं और तुम्हारे व्रत के नियम भंग होरहे हैं। बताओ तुम्हारा धर्म कहाँ है। जिस समय क़ाज़ी फ़तवा देता है कि अमुक राजा की बेटी का निकाह अमुक नवाब के साथ हो तब राजाजी लड़की दहेज समेत लेकर पहुँच जाते हैं, उस समय धर्म कहाँ जाता है? धर्म नहीं रहा। धर्म मंदिर नहीं रहे। अपनी आन नहीं रही। बहू बेटियों की आबरू नहीं रही। स्वतन्त्रता नहीं रही। गुलाम होकर हिन्दू काबुल कंधार

में बकरियों की तरह बिक रहे हैं। हे राजन्! क्या यह जीवन है? इससे तो मृत्यु अच्छी है। हे राजन् ! मैंने जो यह ख़ालसा बनाया है यह धर्म स्वरूप रचा है। "साबित सूरत" बनाई है जो सनातन होती थी। यह सूरत रूहानी ताक़त को कायम और बनाये रखती है। इस सूरत में रौब है। शत्रु के लिये भय है। शान है। आन है। बान है। कोई कौम जी नहीं सकती जिसका शरीर पुष्ट न हो और शानदार न हो। फिर भजन बन्दगी ने ख़ालसा का दिल रोशन किया है। आकाश वाणी और नाम के रंग में यह जीते हैं। भय से अभय हैं। आओ राजन्! जागो !! राजपूत कुल ढीला होरहा है। आओ अब नया जन्म लो। अस्पान (ईश्वर) और असि (तलवार) के अमृत कुण्ड में से नया जन्म पाओ। रूह और तलवार का अमृत पान करो। नया जन्म लिये बिना, नये आदर्श में आये बिना यह मुर्दा कौम अब जी नहीं सकती। ख़ालसा कोई नया बनावटी मज़हब मत समझो यह है आदर्श उस मनुष्य का जो बने बिना अब यह देश कभी उठ नहीं सकता।

राजा—हमें ऐसा ही रहने दीजिये। ख़ालसा बनना नीच जातियों को तो सहज है पर उच्च जाति के लिये बड़ा कठिन है।

गुरुजी—इस जात पाँत के भेद ने तुमको तबाह कर रक्खा है। जाति का घमण्ड छोड़दो और एक हो जाओ। वह देश वह लोग, कैसे स्वतन्त्र हो सकते हैं जो अपने भाइयों में नीचता और ऊँचता देखते हैं। आप सैंकड़ों ही राजा हैं। देश, माल, रुपये, शस्त्र, हाथी, घोड़े, सिपाह वाले हैं फिर गुलामों की तरह दिन व्यतीत कर रहे हो, कुछ सोचो, विचारो। अब

एक होजाओ। पर एक नहीं हो सकते रू; और शमशेर के अग्नि कुण्ड में गोता लगाये बिना। आओ! सब अस्पान और असि के अग्नि कुण्ड में से नया जन्म लेकर एक होजाओ। यह तुर्कों का राज्य जिसके सामने बड़े बड़े महाराणा थर थर काँपते हैं, इस राज्य का अब नामोनिशान भी नहीं रहने का।

राजा—(दात पीस कर) हैं! अस्तम्बोल से लेकर ब्रह्मपुत्र तक जिनका एक समुद्र ठाठें मार रहा है उनका राज्य हिन्द में नहीं रहने का?

गुरुजी—हाँ! नहीं रहेगा, और कौन उड़ायेगा? वही जिनको कि आप नीच कहते हैं। वह जो तुम्हारे सामने शूद्र हैं। ख़ालसा की अग्नि कुण्ड में सब जातियों ने पड कर ख़ालसा बन निकलना है। और उन्होंने यह करामात कर दिखानी है।

जोउ धर्म रखन हित भाई। सीस दियो हमरे पित जाई॥
सोउ धर्म मैं अचल चलाऊँ। भेड़ों को मैं सिंह बनाऊँ॥
गऊओं से मैं शेर मराऊ। भूप गरीबन को करवाऊँ॥
राजन के सँग रंक लड़ाऊ। चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊँ॥
सवा लाख सँग एक लड़ाऊँ। तभी गोबिन्दसिंह नाम कहाऊ॥

राजा—महाराज! आपके विचार अति उत्तम हैं। पर हम विचार के लिये थोड़ा समय चाहते हैं। सारे "बाईधार" के राजा इकट्ठे होकर जो फैसला करेंगे उसकी आपको सूचना कर देंगे। आज तो हम केवल पाँच सात ही आये हुए हैं।

इस तरह से वे राजा गुरुजी से विदा हुये। उनके दिल में कई तरह के विचार उठने लगे। कभी सोचते थे कि गुरुजी जो कहते हैं सो हमारे भले के लिये ही है परन्तु तोभी ख़ुदग़र्ज़ी और गुलामी में जकड़े ही रहे और उठ न सके।

यह राजा लोग जब आनन्दपुर से वापिस बिलासपुर पहुँचे तब सब राजाओं ने मिलकर फिर कमेटी की और यह निश्चय किया कि मुसलमान लोग जो कि छः सौ वर्ष से हम पर राज्य कर रहे हैं उनसे वैर विरोध करना उचित नहीं है क्यों कि कहीं औरङ्गजेब को ख़बर लग गई तो न जाने हमारा क्या हाल कर डालेगा। गुरु गोविंदसिंह के तो पिता को औरंगजेब ने कत्ल करवा डाला है और वह इसी लिये ही हमें भड़काकर अपना उल्लू सिद्ध किया चाहते हैं। सो हमें उनके चकमें में न आना चाहिये। और क्योंकि एक साधारण धर्मोपदेशक को इतना प्रतापी और बली होने देना भी नीति के विरुद्ध है इस लिये हमें इनसे विशेष सावधान रहना चाहिये और अभी से ही कोई ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे यह सर न उठाने पावें।

ऐसा विचार कर राजाओं ने गुरुजी को कहला भेजा कि मुसलमान बादशाह यहाँ कोई छः सौ साल से राज्य कर रहे हैं। हम सामान्य राजा उनसे विरोध करके अपनी दुर्दशा नहीं कराना चाहते। और आपको भी सब काम सावधान होकर करना चाहिये। गुरुजी राजाओं का मतलब समझ गये और उन्हें जवाब दे भेजा कि मैं चाहता तो यह था कि आप सब सामान्य से असामान्य चक्रवर्ती हो जाते परन्तु यदि आप इसी दशा में प्रसन्न हैं तो खुशी से रहिये। और मेरी खबरदारी तो अकाल पुरुष करता है, आप निश्चित रहें। यह कहकर गुरुजी ने राजाओं के दूत को विदा किया और फिर अपनी सारी संगत को समझाया :—

आपकी आत्माओं को भजन और सुमरन ने शुद्ध किया है, आप अब अमृत पान करके ख़ालसा बने हो, मैंने आपके

शुद्ध मनों को अपनी गोद ले पुत्र बनाकर एक किया है। आप अब एक परिवार ख़ालसा हो। आपके हाथ में तलवार देकर मैंने आपको एक अंगी बनाया है। अब आप हैं सरदार ख़ालसा! यह राजा लोग अपने सुखों में गरक हो रहे हैं, यह सुख नहीं रहने के, शरीर नाशवान हैं और अपने समय चले जाने हैं! हे ख़ालसा! प्रजा इस समय मृतक समान सोई पड़ी है, राजा लोग ईर्षा में फँसे पड़े हैं। यदि आप जो सब जाग रहे हैं, अब न उठे तो सृष्टि मर मिटेगी, धर्म नहीं रहेगा, स्वतन्त्रता फिर नहीं आयेगी, यदि आप जो अब जागे हो अपने सिंह नाद के साथ गरज पड़े तो सारी दुष्ट मण्डली बिलाय जायगी, मुर्दे जी उठेंगे और वह समय आयेगा जब तुम्हारे कारनामों को सारा जगत देखेगा और सराहेगा।"

१०—हकीम अबूत्राब ।

खा लसा का प्रचार उन्नति कर रहा था और अनेकों नवीन कौतुक होते रहते थे। औरंगज़ेब ने जब सब हाल सुने तो अपने एक गुप्तचर को आनन्दपुर भेजा। इसका नाम हकीम अबूत्राब बहमनी था जो कि गोलकुंडा के बहमनी खानदान में से था। यह जब आनन्दपुर पहुँचा और वहाँ के सब हाल अपनी आँखों देखे तो चकित रह गया। कहाँ तो सारी भारत भूमि तमोगुण के साथ दग्ध हो रही है और कहाँ यह सत्व गुणी टुकड़ा सारे देश में शान्ति की लहरें भेज रहा है। हकीम जी के दिल ने एक दम पलटा खाया, और गुरुजी के जब दर्शन किये फिर तो उसकी अक्ल बिलकुल चकरा गई। जितने गुण मनुष्य में चाहिये वह श्री कलगीधर जी में सब दिखाई दिये। जितने गुण अवतार और पैग़म्बरों में चाहिये श्री गुरुजी में वे परिपूर्ण झलकते दिखाई पड़े। जितने गुण अवतार और गुरु में चाहिये यहाँ भरपूर पाये। तब हकीम जी को अपने कर्त्तव्य और ज़ुल्मों पर घोर पश्चात्ताप हुआ और कलेजा फट निकला। इस के छलों से संसार को जो जो दुःख पहुँचे वह सब इकट्ठे हो सेना की तरह आँखों के सामने पंक्तियाँ बाँधे आ खड़े हुए। कौन घातक,* विषयी और कठोर दिल हकीम जी के चारों ओर करोड़ों दुःख के पुतले जमघट बन कर घेरा डाले खड़े हैं। हकीम जी का दिल टूट गया, कलेजा फट गया! आँखों से धारा बह निकली और अपने आप को धिक्कारने लगे। ज़ोर से

---

* बहमनी खानदान और राज्य के नाश का कारण हकीम अबूत्राब ही थे।

चिल्ला उठे। हा! खुदा बंदा!! काश, मैं पैदा ही न होता। काश, पैदा होते ही मर जाता। हा! हा!! मुझ पापी से मौत भी परहेज़ करती है। अब क्या इलाज है? ऐ मौत! तेरे बिना कौन है। आ और मुझ पापी से इस ज़मीन को पाक कर।

इस तरह की अत्यन्त विह्वल दशा में हाथ तलवार के क़ब्ज़े पर गया। तलवार खींची और पेट में मारने ही को था कि उधर से अन्तर्यामी श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने उसी समय वहाँ पहुँच उसके हाथ को रोक लिया और कहा "हे कुल घातक बच्चे! आत्म घाती मत बनो। परमेश्वर की दया का द्वार अभी तुम्हारे लिये बन्द नहीं हुआ"।

यह जादू भरे वाक्य सुन, जल से भरी हुई आँखें ऊपर उठीं, फिर झट सीस चरणों में जापड़ा। तलवार हाथ से छुट गई और यह हाहाकार की दुहाई के वाक्य रुकते गले और बिलखती जिह्वा में से निकले—"ऐ खुदा के नूर! ऐ सुखों के पैदा करने वाले! ऐ उपकार के स्वरूप! मैं दुष्ट और पापी इस लायक़ नहीं। आप अपने पवित्र हाथों को मुझ पापी से अलग ही रखिये। मैं बड़ा कुकर्मी जीता जागता शैतान हूँ। मैं और यह कृपा! मैं और यह दया!! मैं और यह तर्स!!! मैं और यह प्यार!!!! आप आदमी नहीं, खुदा का नूर हैं। यह गुण! यह ताक़तें!! यह दयालुता!!! हा! हा!! हा!!! मेरे जैसे अधोगति पर त्राहि त्राहि त्राहि"। यह कहता हुआ बेहोश हो गया।

प्यारे पाठक! वह श्री कलग़ीधर जिसकी शरण में लाखों ही आदमी सीस लिये हाज़िर हैं, जिसकी आज्ञा में गुप्त प्रकट दोनों संसार हैं, जो गुरु है, अवतार है, पतित पावन है, वह मनुष्य मात्र के हृदय की पीडा हरण करने को कैसा नरम है,

कैसा निर्मान है, कैसा सावधान है। कहाँ यह पापी गुप्तचर जो एक सिक्ख की थपेड़ से मर जाय और कहाँ श्री गुरुजी का गम्भीर हृदय कि उसके दिल का दुःख हरने को आप ठीक समय पहुँच जाते हैं। उस विद्रोही के दुःख को भी किसी दूसरे का नहीं समझते। यह श्री गुरु कलगीधर ही हैं जो हाथियों की अम्बारियों पर बैठ चिउँटी की पुकार पर भी पहुँचते हैं और पापियों और विद्रोहियों को भी प्यार करके नरक में से निकाल लेते हैं। भाई गुरुदासजी ने सच ही कहा है:—

गुण किये गुणं सभ कोऊ करै कृपा निधान,
अवगुण किये गुण तोहि वन आयो है।

गुरुजी हकीमजी को होश में लाये। पहले जो हृदय ससार के पापों से लदा पड़ा था गुरुजी की दयालुता से अब निर्मल हो गया। हकीमजी गुरुजी के चरणों पर बार-बार सीस रखते हैं। दयालु गुरुजी कहते हैं:— "हे विष के वृक्ष, अब अमृतजल का कुण्ड बन जाओ, अपनी एक एक रग में से सुखों के बाण छोड़ो ताकि तुम्हारा दुखदाई शरीर अब सुखदाई हो जावे"।

हकीम जी ने अमृत पान किया और ख़ालसा बन गए। आपका नाम दुष्टदमनसिंह रक्खा गया और इन्हों ने गुरु जी के घोड़ों के अस्तबल की सेवा सँभाल ली। वापिस जाने का विचार छोड़ दिया। औरंगज़ेब को अस्तीफा दे भेजा और अपनी बाकी की आयु भजन, उपकार और घोड़ों की सेवा में बिताई। आप गुरु-चरणों के ऐसे अनन्य प्रेमी हुए कि गुरुजी के घोड़ों तक से बलिहार जाते। जब कोई घोड़ा सवारी देकर लौटता तब आप रोमाँच हो जाते, नेत्र सजल हो जाते कि हे जीव! तुम धन्य हो जो महाराज को सवारी देकर कृतारथ

होते हो। फिर कितना ही समय धन्यवाद में गुज़ारते कि शुक्र है, जो मेरे जैसे पतित को भी सतगुरु ने अपना दास बना लिया है और ऐसी उग्र सेवा बख़्शी है। आप घोड़ों की सेवा को एक बड़े भारी राज्य से भी अच्छा समझते थे।

११– तृयम्बका बाई ।

शी के प्रसिद्ध पंडित राघोबा को जब औरंगज़ेब ने इस दोष में क़त्ल करा दिया था कि विशेश्वरनाथ का मंदिर गिरा कर मसजिद बनाते समय उसने ज़रा चूँचड़ा की थी, और साथ ही उसके सब घर वालों को मार डालने की आज्ञा दे दी थी, तब पंडित राघोबा की स्त्री तृयम्बका बाई अपने इकलौते पुत्र तिलकनाथ को साथ ले एक आदमी का वेष धारण कर काशी से उठ भागी। हाँ! हाँ!! इतने विशाल भारतवर्ष जैसे देश में इस अनाथ स्त्री के लिये कोई स्थान सर दुबकाने को भी न था। निराशा में अपनी जान बचाने की आशा में इस विद्वान पंडितानी को अब कोई ठिकाना नहीं दीख पड़ता था कि जहाँ औरंगज़ेब की तेज़ तलवार से वह बच सकें। बेचारी घबराई और बावली हुई को याद आगया कि पतिजी के मित्र काशीनाथ जब बहुत सताए गए थे तब काशी से भाग उन्होंने दशमेश कलगीधर श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी महाराज की ओट ली थी और यदि इस कलूकाल में उनकी ओट मुझे भी मिल जाये तो अपने दिन सुख चैन में व्यतीत हो जायँगे। इसी विचार से वह अपने पुत्र को साथ ले अनेकों कष्ट झेलती कितने समय बाद आनन्दपुर पहुँची।

अनजान और नावाकिफ़, शर्मो-हया की पुतली, पठित होने के कारण संकोच में निपुण, बेचारी का हौसला न पड़ता था कि किसी से अपना हाल कहे। इन्हीं विचारों में नदी किनारे पड़ी

थी कि गुरुजी के माली केसरासिंह * की स्त्री कर्मकुँवर ने देखा। लम्बे सफ़र के मारे थकी माँदी देख अपनी कुटिया में ले आई और यथाशक्ति उनकी सेवा की। तृयम्बका बाई वास्तव में अपने पुत्र समेत इस समय बीमार थी। केवल हठ के सहारे और औरंगज़ेब के भय से डरती ही यहाँ तक पहुँची थी। कर्मकुँवर ने इनकी अच्छी सेवा की, इलाज के लिये हकीम, दिलासे के लिये गुरु की वाणी, धैर्य के लिये श्री कलग़ीधर जी के गुणानुवाद और पारलौकिक सुखों की आशा के लिये सिक्खी का वर्णन आदि उपाय करती।

जब पंडितानी स्वस्थ हुई तो अनेकों कामों में हिस्सा लेने लगी। चँबेली के फूल आप तोड़ती और श्री गुरुजी के लिये सुन्दर सेहरे बना कर्मकुँवर के हाथों भेजती। गुरुजी की कीर्ति जब नित्य प्रति सुनती थी, तो मन प्रेम में आजाता था और तब नदी किनारे एकान्त में बैठ अपने छन्द रचा करती थी:—

[विषम-पद]

कबहूँ हमरी हूँ सुध लेहु।
दीना नाथ कहाय दीन जन दोखित दरसन देहु॥
हमरे औगुन अखिल अखिल प्रभु निगुनन ओर निहार।
गुनवानन गुन करत सभै को, तू निगुनन गुन दातार॥
बालक को इक अहै रुदन बल, अरु जप तप बल नाहिं।
जौ न सुने तो कौन सुनेगो, को पकरै गो बाहिं॥
लाज जहाज चहित अब डूब्यो, ताहि लगावहु पार।
लोक और परलोक दुहूँ के हौ तुमही रखवार॥

* देखो पृष्ठ ५६

भले बुरे कामी और क्रोधी लोभी मोह लवार।
है तुमरे ही जीय कलगीधर, सरनागत प्रतिपार ॥ १ ॥

[ध्रुवपद अथवा दंडक]

दिवस शुभ नखत शुभ,शुभ महूरत निरख,पुनर भव,भयो भव भवहि हारी।
पूस सुदि सप्तमी राति इक जाम रहे, राम नर देहि पुन आन धारी॥
बाल लीला ललित, मात लालित ललिक लालच लोचन रहे लोक प्यारे।
ध्वंस पाखंड, कर खंड अज्ञान को, मंड कर नेह ब्रह्मांड भारे॥
फेर कलि माहि क्षित सुजुग थापन करें, पाप खापन करें जीय जानी।
देव ब्रह्मादि स्तुति सजत जोर कर होर प्रसन्न सी धनुप पानी॥
देह कर अभय है, अभय निज सेवकन, नाम नानक निरंकार साचा।
जागती जोति सभ जोति महि जोति तव, जोति त्रिगुणातम की भवन राचा ।१।

भये पटनेस जगतेस परवेस शुभ, मनुज लीला करन महा चाहो।
मान मलिछान के छान हित हानवे आनवे सिक्ख गए दास चाहो॥
धनुप धर भूमि वर व्योम आनन्द भर, दहन दुख दीन दल दुजन नासी।
धरन धृत धारना, धरम धुर धीर उदि, धेय निज भगत के सद अनासी॥
चकत सुर थकत मुख बकत तव दान तुति, छकत आनन्द सुख कन्द बन्दे।
सदा तू, नित्य तू, वित्त तू, चित्त तू, मित्त तू, वित्त वर देह मुकुन्दे॥
भर भवकाय भटकाय बहु भाय जग आय तव पाय वर पाय पाये।
पालवर सरन के सरण पर विने सुर चरण की सरण वर देहु छाये॥
कलघिधर चक्र धर, दान कर, मान दिहु, पान दिहु सीस वर ईस मेरे।
जन्म अरु मरन दुख भीत नित भीत देहुओ निर भीत जो तनक हेरे॥
होहु कृपाल कृपाल कृपाल मुह दयाल तव बिरद सुख सरद चन्दो।
नित्यं ज सदा जै विजै गुरु वाहिगुरु भजै वर देहु सजै अनद सन्दो ॥२॥

नाम दिहु दान दिहु अमृत को पान दिहु केस दिहु सास दिहु भगत भावा।
दरस दिहु परस दिहु पैर को, हरस दिहु बरस दिहु मोहु जो कृपा छावा॥
दान दिहु मान दिहु ज्ञान दिह, भय हरहु सिदक दिहु प्रेम दिहु नेम सिक्खी।
जुगत दिहु भुगत दिहु, भगत दिहु, भाउ दिहु भय दीजै रजा की रीत तिक्खी॥

गुरु तव दरसन अगम अपारो।
विकश कलिकाल विकराल सविहाल नर मज्ञातन पुंज तव दरस टारो॥
आनन्द घन रूप अवछिन अवकास बिन अचल अनवच्य अनभेद भासे।
धार हरि रूप नर रूप भव कूप ते काढ, निज दास सुख रास भासे॥
अकल धर कला कल्यान हित जगत के काल कलि कलुख दहि जप अकाला।
दुघट कटु विकट संघट सुसंकट निपट किय दूर दे नाम माला॥
दमन दुख समन कलु जनम बिन भीत कर रमन दिय नाम सतनाम साचा।
काम हर क्रोध हर मोह हर लोभ दह नष्ट हंकार सविकार काचा॥
गुरू गोविन्द हरि तेज धर दिवाकर बख्श मुहि कृपा कर दरस जोती।
कल्गिधर, चक्र धर, जिगा धर, धरम धर, भरम हर, भीत हर, सांत नोती॥
त्राहि माँ, त्राहि हे पाहि गुरवर प्रभो, सरन तव सरन सुख करन मूला।
रक्ष माँ रक्ष हे रक्ष मै लोक कृत सदा परतक्ष पिख जगत भूला॥
गोप अति गोप परगोप सु अगोप तू आपनी ओप प्रभु आप ओपा।
धार हर बुध अनुरुध सु विसुध मन सुध तव रूप अनरुध रोपा॥
पटल भ्रम तिमर अज्ञान मद मोह के दूर कर सतिगुरो दरस दीजे।
दीन हो दुखी दारदी दुखत दिल दया निध दरब कर कै पसीजे॥

ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया, प्रेम बढ़ता गया, वैराग अधिक होता गया। एक दिन अपने वैराग पूरित छन्दों को तृयम्बका बाई इस प्रेम से गा रही थी कि गुरुजी के हृदय को खींच पड़ी :—

श्री गुरु गोविन्दसिंह सुजाना।
करी प्रेम ने खैंच महाना॥
रह्यो न गयो धीर कर गुरु ते।
जो सिमरति अनुरागति उर ते॥

गुरुजी उसी तरह अपने स्थान पर से उठ कर चले आये और तृयम्बका बाई की कुटिया के पास आकर चुपचाप खड़े हो गये। क्या देखते हैं कि वह प्रेम की पुतली ध्यान में मग्न बैठी अपने छन्दों का गायन कर रही है। गा इस प्रेम से रही है कि नेत्रों से जल की धारा वह रही है और कुछ होश ही नहीं है। अब गुरुजी ने अपने चरण कमल कुटिया के अन्दर डाले और पंडितानी के सर पर हाथ रख कर कहा—"हे असोल गौ! उठ!! शेरनी बन और शेरों की सेवा कर"। यह प्यार भरे वचन सुन, सर पर गुरुजी का हाथ देख, पंडितानी एक भौंरे की तरह सतगुरु के चरण कमलों में लिपट गई। गुरुजी ने कहा—"पुत्री! उठो!! दुखों के दिन गए, अब तुम्हारे लिये अमृत तैयार है। पियो और अपने आपको अमर बना लो"।

तृयम्बका बाई ने अपने पुत्र समेत अमृत पान किया और अनाथों की सेवा सम्भाली। इसका नाम उस दिन से सेवती कुँवर रक्खा गया और इसके पुत्र का काशीजीत सिंह। काशी जीत सिंह भी बड़ा जवान और प्रेमी हुआ और आखिर "घल्लूघारे" में शहादत पाई।

१२ — भाई नन्दलाल जी ।

क समय औरंगज़ेब के पास एक अरबी का परवाना आया जिसका मतलब अपने विद्वानों से कराने पर उसका तसल्ली बख़्श अर्थ न हुआ । शाहज़ादा मुअज़्ज़म (बहादुर शाह) ने उसी परवाने को अपने मीर मुंशी भाई नंदलाल के सामने रक्खा। नंदलाल जी ने उसका इतना अच्छा अर्थ किया कि बादशाह को बहुत पसन्द आया । तब औरंगज़ेब ने भाई साहब को कचहरी में बुलाया और उस अर्थ के बारे में चर्चा छेड़ी । तब नंदलालजी ने उसके सारे पहलू खोल कर बतलाए । औरंगज़ेब ने जब भाई साहब की अरबी फ़ारसी की कमाल की विद्वता देखी तो हैरान रह गया और पाँच सौ रुपया देकर सम्मान सहित विदा किया । भाई साहब के जाने के बाद औरंगज़ेब ने शाहज़ादे से कहा: — "देखो बेटा !

यह तो हिन्दू है मति वन्ता । है अनीत मुझ नहीं सुहन्ता ॥
दीन विखे इसको ले आवहु । ज्यों क्यों कर नीके समझावहु ॥
अस नर दीन विखै जब होइ । चलै शरह महि सुन सभ कोइ ॥
हिंदुन मँहि मतवंत न चहियहि । करहि धर्म दृढ़ तिनको लहियहि ॥
तुर्क दीन में जब अस आवै । नीके विधि कर शरह बतावै ॥
इम शहज़ादे को समझाइ । ज्यों क्यों दीन विखै इस ल्याइ ॥"

शाहज़ादा जब डेरे पहुँचा तब भाई जी को बुलाकर कहा "ऐ रौशनी-ए-तबा तू बर मन बला शुदी" वाली बात आपके साथ हुई है । बादशाह आपको मुसलमान देखा चाहते

हैं। आप मेरे मीर मुंशी हैं इसलिये मैं आपके साथ किसी तरह की ज़बरदस्ती करना नहीं चाहता परन्तु मैं मजबूर हूँ आपकी रक्षा या सहायता भी किसी तरह से नहीं कर सकता।

नंदलालजी ने शाहज़ादे का धन्यवाद किया और वहाँ से विदा होकर अपने सत्संगी मित्र मीर दारोग़ा ग़यासउद्दीन को साथ ले रात को ही चुपचाप आगरे से चल पड़े और मंज़िल-ब-मंज़िल आनन्दपुर की ओर कूच कर दिया। रास्ते में भाई नंदलाल जी ने बंदगी के पहलुओं पर कई फ़ारसी के शेर तैयार कर के एक किताब "बंदगी नामा" बनाली। जब आनन्दपुर पहुँचे तब यह पुस्तक गुरुजी के सामने भेंट की। गुरुजी ने आज्ञा दी कि पढ़ कर सुनाओ। तब भाईजी ने खड़े होकर उसमें से पढ़ा और सारी सभा सुनकर दंग रह गई। गुरुजी ने पुस्तक तब अपने करकमलों में ली और उसके पहिले सफ़े पर अपनी पवित्र क़लम से लिखा—

आबे हैवाँ पुर शुदह चू जामे ऊ।
जिन्दगी नामा शुदह जा नामे ऊ॥

गुरुजी ने उसका नाम बंदगी नामा की जगह, 'ज़िन्दगी नामा' रख दिया। इस पुस्तक में लगभग पाँच सौ शेर हैं और हर एक में गुरुमत के भेद और गुरु वाणी के भाव बड़े विचित्र रूप से भरे पड़े हैं।

जब भाई नंदलाल जी गुरुजी की मेहरों से माला माल हो चुके तब गुरुजी ने इनके साथी मीर ग़यासउद्दीन की ओर देखा और पूछा "मुरशिद?" दारोग़ा ने भाई नंदलाल की ओर इशारा किया। पास बैठा एक सिक्ख कहने ही को था कि श्री सतगुरु

के हज़ूर में किसी सिक्ख को गुरु बताना बड़ी भूल है कि गुरु जी ने उसको बोलने से पहिले ही रोक दिया और कहा "नहीं, ठीक है। आप को नहीं पता कि भाई नंदलाल की आत्म अवस्था कहाँ तक पहुँच चुकी है। भाई जी अब इस लायक़ हो चुके हैं कि 'आप जपैं अवरै नाम जपावैं"। फिर ग़यासउद्दीन पर मेहर की, प्रेमाभक्ति का दान बख़्श कर उसको भी निहाल किया।

आनन्दपुर में जिन सिक्खों ने डेरे कर रक्खे थे वह सब अपना अपना लँगर भी जारी रखते थे, जिसमें आये गये सिक्ख साधु अभ्यागत आदि को भोजन पान कराया करते थे। एक दिन गुरुजी विहंगमी वेष धर कर लंगर वालों के डेरे में अन्न माँगने चले गये। समय ज़रा जल्दी का था। जहाँ गये किसी ने कहा अभी जल्दी है, ज़रा ठहर कर आना। किसी ने कहा कि अभी तैयार नहीं। किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। सब जगह से गुरुजी ख़ाली लौटे परन्तु जब भाई नंदलाल जी के डेरे पर पहुँचे तब भाई साहब ने कहा "दाल तैयार है। वह हाज़िर करता हूँ। आटा गूंधा है, आप बैठें, फुलके अभी पका कर हाज़िर करता हूँ।" भाईजी को बड़े प्यार से आशीर्वाद देते हुए गुरुजी अपने ठिकाने वापिस आगये। जब दर्बार लगा तब गुरुजी ने सब लंगरों में से भाई नंदलाल जी का लंगर श्लाघा योग्य बतलाया और फिर सबको समझाया कि ज़रूरत वाले को कभी मना नहीं करना चाहिये। जो तैयार हो तुरन्त हाज़िर करना चाहिये। ज़रूरत वाले की ज़रूरत को ज़रूरत वाले की तरह महसूस करना आत्मद्रव्यता का चिन्ह है। फिर गुरुजी ने फ़रमाया—

नंदलाल भा हमरो दाता।
भक्ति भाव संतन मन राता॥
छुवति न देख सकहिं चिर भारो।
देग करत सोई मम प्यारो॥

भाई नन्दलाल जी ग़ज़नी शहर में एक वैश्नव क्षत्री के यहाँ पैदा हुए थे। इन्हों ने फ़ारसी अरबी की विद्या भी वहीं पाई थी और इनमें इतने प्रवीण थे कि बहादुरशाह के मीर मुंशी बने। जब यह कोई दस साल के थे तो इनके पिता ने इनको अपने मतानुसार दीक्षा देने का विचार किया परन्तु इन्होंने अपने गले में काठ की कण्ठी डलवाना अस्वीकार किया और कहा कि मैं तो वह कण्ठी गले में डलवाना चाहता हूँ जो कि वाणी रूप हो और जिसको पहनने से मेरे कण्ठ में से उसका उच्चारण हो और उसमें ईश्वर का यश हो। पहले तो पिता बड़े क्रुद्ध हुए परन्तु फिर जब नन्दलाल जी ने उन्हें समझाया कि "आप मुझे ऐसा ही रहने दीजिये, इस समय इस तरह से मैं एक वैसे ही गुरु धारण करके अपने आप को उम्र भर के लिये बाँध लूँ, यह अच्छा नहीं प्रतीत होता, मैं जब बड़ा हो जाऊँगा और कुछ समझदार हूँगा तो अपने लिये अपना गुरु मैं अपने आप खोज लूँगा," तो उन्हें कुछ तसल्ली सी हुई और उनको वैसे ही रहने दिया। जब यह बड़े हुए और ऐश्वर्य, दानाई और लयाक़त वाले हुए तो बड़े बड़े कामल फ़क़ीरों, साधु सन्तों की खोज की और सब की परीक्षा की। इसी प्रकार इन्होंने श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज की भी परीक्षा की और आख़िर इनको ही अपना गुरु माना। भाई नन्दलाल जी का सिक्ख बनना एक किसी साधारण मनुष्य का सिक्ख बनना न था। भाई साहब

आप फ़ारसी अरबी के आलिम फ़ाज़िल, संस्कृत के पंडित, हिन्दी के विद्वान थे, दानाई और दूर अंदेशी, हर एक बात के समझने और विवेक करने में इतने प्रवीण थे कि बहादुरशाह के मीर मुंशी बने। ऐसे लायक़, खोजी, विद्वान, कवि, ग्रन्थाकार, शाही ऐश्वर्य वाले होते हुए इनका श्री गुरुजी को गुरु मानना बतलाता है, कि गुरुजी एक सेनापति, राजसी महा पुरुष, योद्धा, कवि, विद्वान, पंडित आदि होते हुए भी एक कामिल फ़कीर, पूर्ण गुरु और सच्चे गुरु-अवतार थे। भाई साहब ने गुरुजी को राम कृष्ण आदि अवतारों से शिरोमणि माना है जैसाकि भाई साहब की रचनाओं में से प्रतीत होता है।

"ज़िन्दगी नामा" के अतिरिक्त भाई साहब की कई और पुस्तकें फ़ारसी नज़म में "दीवाने-गोया", "जोत-बिगास", "तोसीफ़ो-सना", "गंजनामा" आदि भी हैं। तोसीफो-सना की सलतनत दहम में से कुछ शेर यहाँ दिये जाते हैं:—

फ़ार्सी असल —	भाषानुवाद—
नासिरो मंसूर गुरु गोविन्दसिंह। एज़दे मंज़ूर गुरु गोविन्दसिंह॥ हक़रा गंजूर गुरु गोविन्दसिंह। जुमला फ़ैज़े नूर गुरु गोविन्दसिंह॥ हक हक आगाह गुरु गोविन्दसिंह।	गुरु गोविन्द सिंह आप विजयेश हैं और दूसरों को अजेय करने योग्य हैं। गुरु गोविन्द सिंह ईश्वर के दर परवान हैं। गुरु गोविन्द सिंह "ईश्वर-कोश" हैं और ईश्वरीय बख़्शिशों का एक समूह हैं। मैं सच्च कहता हूँ गुरु गोविन्द सिंह ईश्वर को जानते हैं और

शाहे शाहंशाह गुरु गोविन्दसिंह ॥	महाराजों के महाराजाधिराज हैं।
परदो आलम शाह गुरु गोविन्दसिंह।	दो जहानों पर राज्य है गुरु गोविन्द सिंह का और गुरु गोविन्द सिंह के नाम से ही
खस्महा जाँ काह गुरु गोविन्दसिंह ॥	वैरियों को जान के लाले पड़ जाते हैं। गुरु गोविन्द सिंह
फ़ाइज़ुल अनवार गुरु गोविन्दसिंह।	एक जीती जागती फ़ैज़ पहुँचाने वाली परमात्मा की पूर्ण ज्योति
फशिफुल असरार गुरु गोविन्दसिंह ॥	है और यदि कोई परमेश्वर के रहस्य खोल सकता है तो वह गुरु गोविन्द सिंह ही है। गुरु
आलमुल असरार गुरु गोविन्दसिंह।	गोविन्द सिंह सारे रहस्यों को जानते हैं और इश्वरीय कृपाओं
अबरे रहमत बार गुरु गोविन्दसिंह ॥	की वर्षा करने योग्य हैं। गुरु गोविन्द सिंह आप परमेश्वर के दर परवान हैं और दूसरों
मुक़बलो मक़बूल गुरु गोविन्दसिंह।	को परवान कराते हैं। गुरु गोविन्द सिंह आप परमेश्वर
वासलो मौसूल गुरु गोविन्दसिंह ॥	के दर पहुँचे हुए हैं और दूसरों को पहुँचाते हैं। गुरु
जाँ फ़रोज़े नहर गुरु गोविन्दसिंह।	गोविन्दसिंह मुर्दा दिलों में जान डालने वाले एक सोता हैं
फ़ैज़े हक़रा वहर गुरु गोविन्दसिंह ॥	और परमेश्वर की मेहरों के एक महा सागर। गुरु गोविन्द-

हक़रा महबूब गुरु गोविन्दसिंह ।
तालबो मतलूब गुरु गोबिन्दसिंह ॥
तेग़रा फ़त्ताह गुरु गोविन्दसिंह ।
जानो दिल रा राह गुरु गोविन्दसिंह ॥

सिंह परमेश्वर के परम प्रियतम हैं और गुरु होते हुए चेला भी हैं। गुरु गोविन्द सिंह शस्त्रविद्या में अपूर्व प्रवीणता रखते हैं और दिलो जान को एक सम खुशी पहुँचाते हैं।

गुरुजी का दर्जा पैग़म्बरों और वलियों में तथा देवी देवताओं में क्या है इसके बारे में भाई साहब जी बतलाते हैं कि :—

सर्वरां रा ताज गुरु गोविन्दसिंह ।
बर तरीं मियराज गुरु गोविन्दसिंह ॥
हमि क़ुद्स बकार गुरु गोविन्दसिंह ।
चाशिया बरदार गुरु गोविन्दसिंह ॥
जुमला दर फ़ुरमान गुरु गोविन्दसिंह ।
बरतरामद शानि गुरु गोविन्दसिंह ॥
बरदो आलम दस्त गुरु गोविन्दसिंह ।
जुमला उज़ची पस्त गुरु गोविन्दसिंह ॥
खाशिगा दर पाय गुरु गोविन्दसिंह ।

गुरु गोविन्द सिंह सरदारों के ताज हैं और ऊँचे से ऊँचे आदर्श वाले हैं। सब देवी देवता गुरु गोविन्द सिंह की आज्ञा में हैं और काठी की झाड़न उठाने वाले हैं (अर्थात् सेवा करने वाले हैं)। सब के सब गुरु गोविन्द सिंह की आज्ञा में हैं। और गुरु गोविन्द सिंह की शान सब से ऊँची है। दो जहानों पर हाथ है गुरु गोविन्द सिंह का और सारे बड़े बड़े गुरु गोविन्दसिंह के सामने छोटे हैं। परमेश्वर के निकट रहने वाले जो बड़े हैं वह सब गुरु गोविन्द-

कुद्सियाँ वा राय गुरु गोविन्दसिंह ॥
मुकवलाँ मद्दाह गुरु गोविन्दसिंह ।
जानो दिल रा राह गुरु गोविन्दसिंह ॥
लामकाँ पावोस गुरु गोविन्दसिंह ।
बर दो आलम कोस गुरु गोविन्दसिंह ॥

सिंह के दास हैं और सारे संत महात्मा गुरु गोविन्दसिंह की राय के अन्दर चलते हैं। जो ईश्वर के दर परवान हैं वह भी सब गुरु गोविन्द सिंह का यश और कीर्त्ति गायन करते हैं और उनके दिलोजान की खुशी के लिये राहतें और रस गुरु गोविन्द सिंह ही देते हैं। वैकुण्ठ भी गुरु गोविन्द सिंह के चरण चूमता है और दोनों जहानों में गुरु गोविन्द सिंह की कीर्त्ति विख्यात् है।

गुरुजी के उच्च आचरण की बाबत् भाई साहिब जी कहते हैं कि:—

खालिसो बे कीना गुरु गोविन्दसिंह ।
हक हक आईना गुरु गोविन्दसिंह ॥
हक हक अन्देश गुरु गोविन्दसिंह ।
बादशाह दरवेश गुरु गोविन्दसिंह ॥

गुरुगोविन्द सिंह का हृदय निर्मल और द्वेष रहित है और ईश्वर को साक्षी जान कहता हूँ कि गुरु गोविन्द सिंह एक "ईश्वर-आयना" हैं और उन्हें ईश्वर ध्यान का आवेश है। गुरु गोविन्द सिंह बादशाह होते हुए भी दरवेश हैं।

गुरुजी की पदवी रूहानियत में देवी देवताओं और अवतारों से ऊँची और शिरोमणी है, इस बारे में भाई साहिब जी लिखते हैं :—

सद हज़ाराँ इश्वरो ब्रह्माओ अर्शी
कुर्सी ख्वाहिंदाए पनाहश।

व सद हज़ाराँ रामो राजा काहनो
किश्न खाकबोसि अक़दामश।

सद हज़ाराँ मुक़बलि खास
हम दीयत सताइगरश।

व सद हज़ाराँ इन्दरो मारे हज़ार
ज़ुवाँ तौसीफ़ गोइश।

व सद हज़ाराँ उमि कुदसि
दरे ख़िदमतश।

हज़ाराँ चु ध्रू हज़ाराँ चु बिश्न।
बसे राम राजा बसे कान्ह कृश्न॥

हज़ाराँ चु देवी चु गोरख हज़ार।
कि पेशे कदमहाए ओ जाँ सिपार॥

—जोत बिगास।

लाखों ईश्वर (शिव) और ब्रह्मा तथा बिहिश्त और स्वर्ग के बासी गुरु गोविन्दसिंह की पनाह चाहने वाले हैं। और लाखों राम और राजा तथा काह्न और कृष्ण उनकी चरण-धूलि को चूमने वाले हैं।

लाखों ही परमेश्वर के प्यारे गुरु गोविन्दसिंह की कीर्ति गायन करते हैं, और लाखों इन्द्र और शेश नाग अपनी सहस्रों जीह्वा से उनका यश गाते हैं, और लाखों ही देवी देवता उनकी सेवा में रहते हैं।

हज़ारों ही ध्रू, हज़ारों विष्णु, अनेकों राम राजा, अनेकों कान्ह कृष्ण, हज़ारों देवी, हज़ारों गोरख, सब के सब गुरु गोविन्द सिंह के चरणों पर से अपने प्राण न्योछावर करते हैं।

भाई साहब जी गुरुजी को कामिल मुरशिद, पूर्ण ब्रह्मवेत्ता, पूर्ण दिव्य दृष्टि मानते हुए उन्हें एक साधारण मुरशिद की बराबरी नहीं देते थे। उनके तजरबे और अनुभव ने उनको यह बतला दिया था कि श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज अद्वितीय हैं और सबसे बड़े और सबसे ऊँचे हैं, और इनके तुल्य और कोई दूसरा ब्रह्मवेत्ता अथवा मुरशिद नहीं हो सकता। यथाः

दीनो दुनियाँ दर कमन्दे आँ परी रुखसारे मा।
हर दो आलम क़ीमते यक तारे मूए यारे मा॥
मा नमे आरेम ताबे चमज़ए मियगाने ऊ।
यक निगाहे जाँ फ़िज़ा अश बस बवद दरकारे मा॥
गाहे सूफ़ी गाहे ज़ाहिद गहि कलन्दर मे शवद।
रंग हाए मुखतलिफ़ दारद बुते अय्यारे मा॥
क़दरे लाले ऊ बजुज़ आशिक़ न दानद हेच कस।
क़ीमते याक़ूत दानद चश्मे गौहर बारे मा॥
हर नफ़स "गोया" बयादे नरगसे मखमूरे ऊ।
बादह हाए शौक़ मे नोशद, दिलं हुश्यारे मा॥

—दीवाने गोया।

अर्थात्

दीन और दुनियाँ दोनों मेरे सुन्दर, प्रियतम (श्री गुरु गोविन्दसिंह) जी के चरणों में रहते हैं। मेरे सुन्दर प्रियतम के एक एक रोम के दीदार का मूल्य दो दो आलम भी नहीं हो सकते। हम कोई भी उनके मस्त नयनों की ताब नहीं ला सकते, हमारे लिये तो जान डालने वाली उनकी मेहर की एक निगाह ही काफ़ी होती है। मेरे कौतुकी प्रियतम कभी सूफ़ी,*

* मुसलमानों में ज्ञानी फ़क़ीरों के एक फ़िरके को कहते हैं।

कभी ज़ाहिद,§ और कभी कलन्दर† बन जाते हैं, उनकी एक ही मूर्ति में अलग अलग कई तरह के रङ्ग हर समय झलकते रहते हैं। मेरे लाल (प्रियतम) की क़दर विना जौहरी (सच्चे प्रेमी) के और दूसरा कौन पा सकता है? इस याकूत‡ की कीमत केवल मेरे मोती बरसाने वाले नयन ही जानते हैं। अब तो हर समय इस नशीले नरगस की याद में मेरा होश्यार दिल प्रेम के प्याले पिया करता है।

भाई नन्दलालजी ने श्री गुरुजी के गुण अपनी आँखों देखे गायन किये हैं। भाई साहब जी अपने आला दिमाग़ और पूरी आयु के तजरबे के आधार पर बतलाते हैं कि गुरु गोविन्दसिंह पूर्ण गुरू है, प्रेम पुञ्ज है, पूर्ण पद पर स्थित है, यदि मुक्ति की आवश्यका हो तो शरण लो गुरु गोविन्दसिंह की। प्रिय पाठक! आइये !! आज से ईमान लाएँ श्री गुरु गोविन्दसिंह पर, उनके वचनों और आज्ञाओं का पालन करें, उनके वजूद को ग्रहण करें और बन जाएँ "ख़ालसा!" और फिर भाई नन्दलालजी के साथ ही प्रार्थना किया करें कि:—

लाल सगे गुलाम गुर गोविन्दसिंह।	ऐ गुरु गोविन्दसिंह! मैं तेरे दर का एक कूकर गुलाम हूँ,
दागदारे नाम गुर गोविन्दसिंह॥	मेरे तनमन पर तेरे नाम की ही मुहर लगी हो। मैं जानता
कमतरी ज़ि सगान गुर गोविन्दसिंह।	हूँ कि मैं एक कूकर से भी

§ कर्म काण्डी।

† ईश्वर के ध्यान में मस्त रहने वाला।

‡ एक प्रकार का लाल रङ्ग का बहुमूल्य पत्थर।

रेज़ा चीने ख्वानि गुर गोविन्दसिंह ॥	बुरा हूँ, इसलिये मुझे तेरे दर से कूकर-कौर मिलने में भी बड़ी खुशी है। मेरी हरदम
बाद जानश फ़िदाय गुर गोविन्दसिंह ।	यही इच्छा है कि मेरे प्राण तेरे लिये निछावर हों और मेरा सीस तेरे चरणों पर
फरकि श्रो बरपाय गुर गोविन्दसिंह ॥	ही टिके।
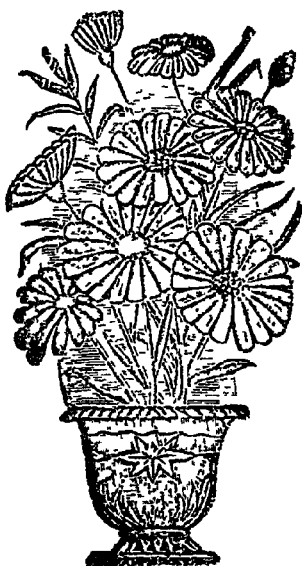
१३—पहाड़ी राजाओं का युद्ध ।

यद्यपि पहाड़ी राजाओं में से कइयों ने कई बार अवसर पड़ने पर गुरुजी से सहायता ली थी तोभी सबके मनमें यही रहता था कि जब भी अवसर पड़े इनको तबाह करके छोड़ें। अब जब कि गुरुजी के अनुगामी हज़ारों की गिनती में बन चुके थे, जब कि राजाओं ने स्वयं आनन्दपुर पहुँच कर* गुरुजी के ठाट बाट को देख उसे अपने ऐश्वर्य से कहीं अधिक पाया, जब गुरुजी को सावधानी का पत्र लिखने पर भी राजाओं ने उनको निडर पाया† तो सब के सब राजाओं ने अपना पहला वैर साधने का संकल्प किया। "एक साधारण गद्दी का गुरु जिसका कार्य केवल धर्म प्रचार ही हो, ऐसा बलवान हो जाय कि हम तिलकधारी क्षत्रिय राजाओं को मौके पर हाथ जोड़ कर सहायता माँगनी पड़े! धिक्कार है हम लोगों पर!! हो सकता है कि कल वह हम सबका राजेश्वर बन बैठे और धर्म तथा अपने खालसा पन्थ की आड़ में साम्राज्य स्थापन कर आप चैन करने लगे"। यही सब सोचकर इन मिथ्याभिमानी राजाओं ने बड़ी बुरी सायत में श्री गुरुजी को विरोध का सँदेसा भेजा :—

> मिल राजे गन पत्र लिखायो। दूत हाथ तत्काल पठायो॥
> सुनो गुरू जी थान हमारा। जहँ अनन्दपुर बस्यो तुमारा॥

---

* देखिये पृष्ठ ८६ † देखिये पृष्ठ ६१

जबको अपनो पन्थ उपायो । हथियारन कौं हाथ गहायो ॥
लूट कूट कर दूग उजारी । लरन मरन नित धूम उतारी ॥
अब जेकर रस राख्यो चाहित । बसन अनन्दपुर विखै उमाहत ॥
दया करहु दीजै कछु दामू । बसहु आप विगरहि नहि कामू ॥
नाहि त क्रुद्ध बध्यो हुइ जुद्ध । हिरदै सुद्ध विचारहु बुद्ध ॥
उत तुरकन सन बैर तुमारा । इत हम साथ बधी बहु रारा ॥
दोनहु दिस ते दल उमडावैं । सभ जुग सुभट तुमहु पर धावैं ॥
परहि भीर नहि कछु बन आवैं । घेरे जाहु न निकसन पावैं ॥
याँते दीजै दौलत अबै । आगै पन्थ बरज रख सबै ॥
तजहु जंग की रीति भयाना । जिस महि नित ब्याध विधि नाना ॥
अपन पित समान बन रहियै । संगत ते अकोर गन लहियै ॥
हमको दरब बरख प्रति दीजै । हुइ सुखवासी समा वितीजै ॥
नाहि त छोडहु भूम हमारी । गमन करहु जहि इच्छ तुमारी ॥
अब पहुँच्यो मैं निकट तुमारे । चमू समूह मिले नृप सारे ॥
छीन सकल कछ देहों बाहर । बिना विलम्ब जानियहि जाहर ॥

यह पत्र राजा अजमेरचन्द ने अपने दूत के हाथ गुरुजी को भेजा। गुरुजी इसको पढ़ बड़े चकित और क्रुद्ध हुए और सोचा कि भारतभूमि पर मेरा भी उतना ही अधिकार है जितना कि इन राजा लोगों का, और यह भूमि जहाँ मैं रहता हूँ किसी ने उनसे भीख माँग कर तो ली ही नहीं है, यह तो मेरे पूज्य पिता जी ने इनहें दाम देकर मोल खरीदी थी। उचित तो यह था कि यह सब राजा लोग इस समय मेरी इस नई जथेबन्दी में शामिल होकर इसका एक अंग बन जाते और मेरी सहायता में तत्पर रहते, परन्तु यह उलटे विरोध पर उतारू

हुए हैं । ख़ैर, इसका फल इनको हाथों हाथ ही मिल जायगा । ऐसा सोच गुरुजी ने राजाओं को उत्तर इस प्रकार लिख भेजा :—

सुन अजमेरचन्द अभिमानी । सब राजन सन देहु बखानी ॥
हमते दाम चहहिं जे लैवे । खड्ग धार सों करहैं दैवे ॥
तोमर तीरन साँगन अनी । इनते दैहों भेदो अनी ॥
सलख तुफंगन बरखा गुलकन । इनते परखन कर धन अन गन ॥
मूढ़ अजान न तुम सम कोई । चहैं दरब लिहु सनमुख होई ॥
बजे लोह सों लोह जुझारे । लेहु परख तब दाम करारे ॥
कौन सनेह रह्यो अब तोसो । करवो चाहित आन करो सो ॥
नतमति समझहु बनियहु स्यानो । परहु शरन आवहु वच मानो ॥
जुग लोकन के सुख को लहियहि । शरन खालसे की पर रहियहि ॥
हठ हंकार छोर मन मद्दे । मिलहु आनकर ह्वै बुध सुद्धे ॥
गुर घर ते चाहहु सो पावहु । राज समाज भले चिर धावहु ॥
जे अभिमान अधिक तुव मन में । बाँछत मेल करयो चहि रन में ॥
मुकुर मनिन्द गुरू घर अहै । रिदैं भावना तिम फल लहै ॥
सेवक बनं अनिक सुख पाए । करयो द्वैश जो क्रोध उपाए ॥
तौ मग महिं पग धरहु उताले । नहिं पीवहु जल बैठ सुखाले ॥
रैन बसन की है तुहि आन । हेरहु रण घमसाने आन ॥

यह पत्र जब राजा अजमेरचन्द ने पढ़ा और सब राजाओं को पढ़ कर सुनाया तो सबकी क्रोधाग्नि में घी पड़ा। बस फिर क्या देर थी। युद्ध की तैयारी होने लगी।

राजा लोग यह जानते थे कि हम लोगों की संयुक्त सेना भी गुरुजी को जीतने में सफल न होगी इस लिये उन्हों ने

सरहिंद के नवाव से सहायता माँग भेजी। वहाँ से दीनाबेग और पैंदेख़ाँ दो मुग़ल जरनैल कई हज़ार की सेना लिये चढ़ आये। साथ ही पहाड़ी राजाओं की सेना भी होली। घोर संग्राम मचा।

ठीक रणक्षेत्र में पैंदेख़ाँ ने गुरुजी को हाथों हाथ युद्ध के लिये ललकारा और कहा कि दोनों ओर की इतनी सेना इस प्रकार कटवाने से क्या लाभ? अकेले आपही मुझसे लड़ लीजिये। हम में से जो जीत जाय उसकी ही जीत मानी जाय। पैंदेख़ाँ को अपनी शस्त्र विद्या पर बड़ा अभिमान था और उसे पूर्ण विश्वास था कि मैं हाथों हाथ युद्ध में गुरुजी को अवश्य मार गिराऊँगा। श्री गुरुजी ने उसका गुमान तोड़ने के लिये यह बात स्वीकार करली और सेना का दोनों और से युद्ध बन्द करा दिया। उधर से पैंदेख़ाँ घोड़े पर सवार आगे बढ़ आया और इधर से गुरुजी अपने नीले घोड़े पर आगे बढ़े और पैंदेख़ाँ को वार करने के लिये कहा।

सुनकर पठान चमक्यो बिलन्द। दल दोउ दिखत हुइ को निकन्द॥
सभ सिंह लखैं हत प्रान खान। गुरु संग जुट्यो नहिं देहिं जान॥
सभ तुर्क भनहि इह दल महान। भट लखहि सु विद्यावान खान॥
जब तजहि तीर गुरु बचै नाहि। अब फ़ते होहि हम जंग नाहि॥

परन्तु जब पैंदेख़ाँ ने तीर छोड़ा तो वह गुरुजी के कान को छूता हुआ निकल गया और गुरुजी साफ़ बच गये। इस पर गुरुजी ने पैंदेख़ाँ से कहाः—"भाई। यह तीरंदाज़ी तुमने किससे सीखी है। जो इस विद्या में निपुण होते हैं वह तो

पहले वार में ही अपने वैरी को छेद लिया करते हैं। अच्छा, एक वार और करो।"

पैंदेख़ाँ का जब दूसरा वार भी ख़ाली गया तो वह बड़ा लज्जित हुआ और अपने दल की ओर भागने लगा। गुरुजी ने तभी उसे ललकारा कि गीदड़ों की तरह मत भागो, मेरा वार भी देते जाओ। श्री गुरुजी ने पहले वार में ही ऐसा तीर चलाया कि उसने पैंदेख़ाँ के कान को छेद उसे घोड़े से नीचे गिरा मौत के घाट ही उतारा। पैंदेख़ाँ को इस प्रकार मरता देख मुग़ल और पहाड़ी सेना दोनों एकदम गुरुजी की सेना पर आ टूटीं परन्तु सिंह ऐसे डटे हुए थे कि उनका कुछ भी न बिगड़ा। उलटा पहाड़ी और मुग़ल सेना का ही बड़ा नुक़सान हुआ। दीना बेग जब घायल हो गया तो वह और अजमेरचंद अपनी सब सेना के साथ मैदान छोड़ भाग निकले और गुरुजी की विजय हुई।

कुछ समय पाकर पहाड़ी राजाओं ने फिर से युद्ध रचाया। जगतुल्ला गूजर को उसकी सेना समेत साथ लिया। घोर संग्राम मचा। पहाड़ी राजाओं ने इस दफ़ा युद्ध के लिये बड़े सामान इकट्ठे कर रक्खे थे। हर रोज़ युद्ध बढ़ चढ़ कर होता था। गुरुजी की सेना को आनन्दपुर के अन्दर घेर रक्खा था। कोई दो महीने घेरा डाले रखने के पश्चात् भी पहाड़ी राजा गुरुजी पर विजय न पा सके। जगतुल्ला मारा गया। निराश होकर सब लौटने को थे कि राजा केसरीचन्द ने सलाह दी कि क़िले के फाटक को एक मस्त हाथी से टक्कर लगवा कर तोड़ा जाय, फिर अन्दर पहुँच गुरुजी पर शीघ्र विजय पा लेंगे क्योंकि अन्दर उनकी सेना बहुत थोड़ी है।

जब गुरुजी को इसका पता चला तब उन्होंने हाथी से लड़ने के लिये अपने एक विचित्रसिंह को तैयार किया और उसे घोड़े पर बैठा एक तीक्ष्ण भाला हाथ में देकर क़िले के बाहर भेजा। साथ ही उदयसिंह को एक तलवार देकर भेजा कि राजा केसरीचंद का सीस काट लावे। विचित्रसिंह ने भाले से हाथी पर ऐसी चोट चलाई कि उसके माथे पर लोहे का मोटा तवा जो बँधा हुआ था उसके दो टुकड़े होकर जा पड़े और भाले की नौक हाथी के माथे में गहरी चोट कर गई। हाथी चिंघाड़ता हुआ एकदम पीछे को लौटा और पहाड़ी राजाओं के दल को ऐसा रौंदा कि सब अपनी जान लिये भाग निकले। हण्डूर का राजा बड़ी बुरी तरह से घायल हुआ। राजा केसरीचंद भी भागा जा रहा था परन्तु उदयसिंह ने झट उसके पास पहुँच उसका सीस उतार लिया और भाले पर टाँगकर गुरुजी के पास ले आया।

जब इस प्रकार भी पहाड़ी राजा विजय न पा सके तो उन्होंने एक अनोखी चाल चली। आटे की एक गौ बनाकर गुरुजी के पास भेजी और साथ ही एक पत्र लिख भेजा कि आपको इस गौ की क़सम है यदि आप किला छोड़ बाहर न आवें। आप केवल एक दिन के लिये आनन्दपुर छोड़ दें, हम बिना किसी को कुछ कहे वापिस लौट जायेंगे। गुरुजी ने इस पत्र को पढ़ अपने सिक्खों से कहा:—"यह सब झूठ है। इनका कभी विश्वास न करना चाहिये। आओ! परीक्षा करके बतायें।"

अगले दिन गुरुजी थोड़े से सिंहों को साथ ले कोई डेढ़ कोस दूर एक ऊँचे स्थान पर, जहाँ अब निर्मोह नामक गाँव है, जा बैठे। राजाओं ने अब गुरुजी को क़िलों के मोर्चों

के बाहर खुले मैदान में देख उनको घेर लेने की ठानी। राजा अजमेरचंद ने एक होश्यार मुसलमान तोपची को ५०००) रु० और एक गाँव देना किया यदि वह गुरुजी को तोप के गोले का निशाना बनाले। परन्तु ईश्वर की कुछ ऐसी लीला हुई कि गोले यातो गुरुजी को साफ़ बचा आगे जाकर पड़ते थे या गुरुजी तक पहुँचते भी नहीं थे। गुरुजी ने झट उस तोपची को अपने बाण से मार गिराया और आप राजाओं की सेना को चीरते हुए साफ़ आनन्दपुर आ पहुँचे। इस प्रकार राजा लोग अपनी सौगंध तोड़ फिर मुँह की खा मैदान छोड़कर भाग गये। यह वृत्तान्त सं० १७५८ वि० का है।

अब गुरुजी ने आनन्दपुर के सब स्थानों की मरम्मत कराई और लड़ाई का सामान भी अधिक तैयार कराना शुरू कर दिया।
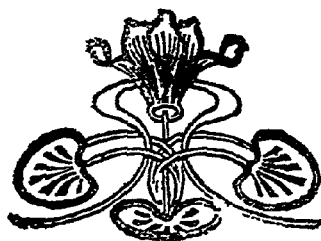
१४—चन्दन कवि।

क दिन गुरुजी का ख़ास दरबार सजा हुआ था। बड़े बड़े कवि और विद्वान् हज़ूरी में हाज़िर थे। इस समय एक चंदन नामक कवि ने वहाँ हाज़िर होकर विनती की कि "हे सर्व शिरोमणि सतगुरु जी! आप जी के दरबार में बड़े बड़े कविराज और विद्वान् पंडित हैं। आपजी के दिये दानों की कीर्ति चाँद की चाँदनी की भाँति पसर रही है। श्री जी का देश देशान्तरों में उज्ज्वल यश मालती की भाँति फैल रहा है। श्री जी की पवित्र सभा में कोई ऐसा विद्वान् भी है जो एक मेरे रचे हुए छंद का अर्थ कह सुनाये?"

यह अभिमान के वाक्य सुन गुरुजी ने फ़र्माया "कविजी! आप अपना रचा छंद सुनाइये। छंद सुनकर फिर कहा जा सकेगा कि उसका अर्थ यहाँ कोई कर सकता है कि नहीं" तब चंदन कवि ने यह छंद पढ़ा।

नव सात तिये नव सात किये, नव सात पिये नव सात पियार।
नव, सात रचे नव सात बंदे, नव सात पिया पहि दायक पाए॥
जीत कला नव सातन की, नव सातिन के मुख अंचर छाए।
मानहु मेघ के मण्डल महिं, कवि चन्दन चन्द कलेवर छाए॥

यह छंद सुनकर गुरुजी मुसकराये और इधर उधर देख चोबदार से बोले "जाओ तबेले में, वहाँ से भाई धन्नासिंह को अपने साथ ले आओ।" चोबदार आज्ञा पाते चला गया

और गुरुजी अपने रंग में मग्न हो गये। चन्दन कवि ने अपने पास बैठे एक सिक्ख से पूछा "यह मेरी कविता सुनकर तबेले से आदमी क्यों बुलाया है?"

सिक्ख—गुरुजी अपनी आपही जानते हैं। परन्तु कविजी! यहाँ तो वीर रस, शान्त रस और काव्य रस के प्रवाह चल रहे हैं। दरबारी कवि छोड़ कर सेना में, नौकरों में, तबेले में, सब स्थानों में कविता का चर्चा रहता है। आपका छंद कोई उच्च भाव या कोई तीक्ष्ण कटाक्ष वाला नहीं प्रतीत होता है। गुरुजी ने शायद धन्नासिंह को तबेले में से इसीलिये याद किया है कि वह आपको छंद के अर्थ बतावें जो आपको पता लग जाय कि यहाँ कविता का कितना परिचय है।

चन्दन कवि— यदि तबेले के किसी सेवक ने मेरे छंद का अर्थ कर दिया तो मेरी बड़ी किरकिरी होगी।

सिक्ख—नहीं कवि जी, आपका अभिमान का रोग दूर होगा और फिर आप अच्छी कविता बना सका करेंगे।

इधर यह बातें हो रही थीं कि भाई धन्नासिंहजी आ पहुँचे। तब गुरुजी ने फ़रमायाः—"भाई धन्नासिंह! यह कवि जी बड़े बुद्धिमान हैं। इन्होंने एक छंद रचा है। उसके अर्थ जो आपको मालूम हों सुना दीजिये।" तब कविजी ने अपना छंद फिर पढ़ा और भाई धन्नासिंह ने तुरन्त उसका अर्थ सुना दिया।

सुन धन्नासिंह अर्थ बखाना। त्रिय पोड़स बरखन बयबाना॥
तन पोड़स शृङ्गार सुहायो। पोड़स मासन मद्धि पिय आयो॥
पोड़स घर को चौपर रच्यो। पोड़स दाव लाइ सुख मच्यो॥
सोई पोड़स प्यारो ल्यायो। पोड़स की बाजी जै पायो॥

पोड्स कला चन्द मुख जोई । हार पाय त्रिय छादति सोई ॥
मनहु मेघमहि निस पति छायो । इम अंबर महि मुखि दर्सायो ॥

यह अर्थ सुनते ही चंदन कवि का रंग बदल गया और दिल में से कविता का अभिमान टूट गया। सर नीचे को हो गया और हाथ जोड़ कर कह उठा "श्री महाराज जी ! यह बुद्धि का-बल नहीं। यह आपजी की शक्ति है। यह नूरे नज़र है जो दिलों के पर्दे खोल देती है। गुणियों में सुनना और सुनाना दोनों काम होते हैं। मैंने तो छंद सुनाकर अर्थ सुन लिया है। अब यदि यह कविजी कोई छंद मुझे भी सुना दें तो मैं भी अर्थ करने का यत्न कर सकूँ।"

तब गुरुजी से इशारा होने पर भाई धन्नासिंह जी ने कविता का चमत्कार दिखाने के लिये अपने रचे हुए यह छंद बोले।

मीन मरे जल के परसे कबहूँ न मरे पर पावक पाए ।
हाथी मरे मद के परसे कबहूँ न मरे तन ताप के आए ॥
तीय मरे पिय के परसे कबहूँ न मरे परदेस सिधाए ।
गूढ़ में बात कही द्विजराज विचार सकै न बिना चित लाए ॥१॥

कउल मरे रवि के परसे कबहूँ न मरे ससि की छवि पाए ।
मित्र मरे मित के मिलबे कबहूँ न मरे जब दूर सिधाए ॥
सिंह मरे जब मास मिले कबहूँ न मरे जब हाथ न आए ।
गूढ़ में बात कही द्विजराज विचार सकै न बिना चित लाए ॥२॥

यह छंद जब भाई धन्नासिंह ने बोले तब चन्दन कवि ने बड़ी सोच दौड़ाई। आँखें झमक झमक कर, सर नीचा कर लिया। कुछ समय सोचने के बाद भी जब कुछ न समझ पड़ा

तब शर्मिन्दा होकर हाथ जोड़कर उठ खड़ा हुआ और विनय की "सच्चे बादशाह जी! आपजी की महिमा अपार है। शेष और सारदा आपका भेद नहीं पा सकते। मैं संसारी जीव क्या वस्तु हूँ। मेरा अभिमान टूट गया है और अब आपकी शरण हूँ।" इस प्रकार जब उसने दीन होकर विनती की तब गुरुजी ने मेहर की और उसे अपनी कवि मंडली में दाखिल कर लिया।

१५—हंस जी ।

क दिन गुरुजी प्रातःकाल के समय अपने बग़ीचे में पश्चिम की ओर मुख किये समाधिस्थ बैठे हुए थे। जब नैन खुले तो सामने से सूरज की किरणें आँखों में पड़ीं, फिर ग़ौर से देखा और बोले "हमारे सामने पश्चिम की दिशा है तो सूरज इधर से कैसे चढ़ आया।" तब पीठ फेर कर देखा तो सचमुच पीछे से सूरज निकला हुआ है। तब गुरुजी खड़े हो गये और दोनों सूरजों की ओर देख हँस पड़े और बोले "वाह! वाह!! कमाल!!!"

गुरुजी आगे बढ़े, पश्चिम के सूरज के पास पहुँचे। क्या देखते हैं कि एक तरह के कपड़े पर सूरज की रौग़नी तसवीर बनी हुई है जो ठीक चढ़ते सूरज के सामने इस तरह से टिकाई है कि सूरज की सारी रोशनी इस तसवीर पर पड़कर चमकती और चारों ओर किरणों के मानिन्द फैलती है। रंग ऐसे शोख़ भरे हैं और चारों ओर दृश्य ऐसा सुन्दर और कमाल का बनाया है कि बिलकुल असल सूरज ही मालूम पड़ता है। कोमल हुनरों के क़द्रदान गुरुजी यह प्रवीणता देख कर ख़ुश हो रहे हैं और वाह-वाह कह रहे हैं कि आपकी नज़र ज़मीन पर एक काग़ज़ पर पड़ी जिस पर यह कवित्त लिखा हुआ था :—

साधन को सिद्ध सरणागत समर शिष्य,
सुधा धर सुन्दर सरस पद पायो है।

कुल को कलिस कवि कामना को काम तर,
कोप किये काल कवियन गुन गायो है ॥
देवन मैं दानव मैं मानव मुनन हूँ मैं,
जाको जस जाहर जहान चल आयो है।
तेग साचो देग साचो सूरमा सरन साचो,
साचो पातसाह गुरु गोविंद कहायो है ॥

यह काग़ज़ पढ़ा और फिर मुसकराये। दूर कुछ सिक्ख आज्ञा की इन्तज़ार में खड़े हुए थे। आपने बुलाया और पूछा 'यह कौन रख गया है?" सबने कहा "सच्चे पातशाह! पता नहीं कौन किस समय आया और रख गया।" गुरुजी फिर मुसकराये और चल पड़े। एक सिक्ख इसी आज्ञा की इन्तज़ार में खड़ा था कि यह तसवीर उठानी है या नहीं। गुरुजी ने उसकी ओर देखा और कहा "चले आओ। पड़ी रहने दो। तसवीर प्यारी है। कविता न्यारी है। पर हाथ क्षमा हीन हैं।"

जब गुरुजी दूर चले गये तब केलों की आड़ में से एक पतली पर लम्बी सूरत तसवीर के पास आ खड़ी हुई और लम्बा साँस भर कर कहने लगी, तेरे दरबार आया था कि पनाह मिलेगी। शरणपाल सुना था। हुनरों का क़दरदान सुनते थे। हाँ, आया था आस धर। निराश ही बिलाया है। गुणदान ने क़दर तो पाई। कहा था "वाह वाह कमाल।" पर साथ ही कह गया है हाथ क्षमा हीन हैं। यह मेरा जीवन कौन सुनाये कि मैं जती हूँ, सती हूँ, धर्म की मूर्ति हूँ, पाप रहित हूँ, पावन परम पवित्र हूँ, कवि हूँ, चित्रकार हूँ, हाँ! आप धर्म धुरंधर हूँ। कौन जाकर बताये? कहते हैं अन्तर्यामी है। शायद

जानता ही हो। "हाथ क्षमा हीन हैं" कुछ जानकर ही कहा होगा। पर मैं क्षमा हीन नहीं फिर ऐसा क्यों कहा ?

इतने में कवि सेनापति जी भी वहाँ आ निकले और कहने लगे "हँस जी ! क्या बताऊँ मैंने सोलह दर्शन विचारे, देश देशान्तर फिरा, साधु, तपी, हठी देखे पर मुझको पूर्ण शान्ति यहाँ आकर ही मिली।

हंस—परन्तु मुझे यह समझ नहीं आती कि मुझे सतगुरु ने देखा नहीं, उनसे मेरा किसी ने हाल कहा नहीं। जब आप मेरी ओर से विनती करने उठते हैं तो आगे से हुक्म हो जाता है कि निर्दयी है, क्षमा हीन है। आज यह मेरी तसवीर देख देख खुश हो रहे थे। पर फिर क्षमा हीन कह कर चले गये। मैं आप से सच कहता हूँ कि मैं बाल जती हूँ। मैंने झूठ कभी नहीं बोला। बुरा काम कभी मैंने नहीं किया। अपने मत में मैं अभी तक पूज्य हूँ। हज़ारों ही मेरे चेले हैं। मठ का मैं मुखिया हूँ। अहिंसा मेरा परम धर्म है। मैंने कभी भूलकर चिउटी पर भी पैर नहीं धरा। बतलाइये मेरे पर क्यों क्रुद्ध हैं।

सेनापति—मेरा हाल भी इसी तरह से था। मैं भी बड़ी भूल में रहा। मैं अपने जान शास्त्रवेत्ता और धर्मात्मा था। पर जब मैं यहाँ आया तब मेरी आँखें खुलीं और ऐसा ज्ञान पड़ा कि मैं जन्म जन्मान्तरों का सोया हुआ जागा हूँ।

हंस—आपको पता है कि मैं माधवाचार्य की तरह सोलह मतों का ज्ञाता हूँ और बौद्ध और जैन धर्म का ख़ास एक पंडित हूँ। परन्तु मेरी समझ में आपकी बात नहीं आई।

सेनापति—कोई अपूर्णता अवश्य है। मैंने कई बार सतगुरु

जी के आगे आपकी बाबत् विनय करने का साहस किया है पर मुझे बोलने देने से पहले ही कह देते हैं "नहीं भाई! क्षमा हीन है। मज़लूम नहीं ज़ालिम है।" आप अपने जीवन को पड़ताल करिये, शायद कभी कोई काम ऐसा कर बैठे हो।

हंस—(ठंडी साँस लेकर)—ऐसा कोई याद नहीं पड़ता।

बहुत देर तक दोनों का आपस में फिलसफ़ाना (तत्व ज्ञान सम्बन्धी) वार्तालाप होता रहा। जब गुरुमत के सिद्धान्तों का हंस जी को पता लगा तब बोल उठे "अब साफ़ हो गई सब बात, समझ में आ गया। सारी उम्र व्यतीत हुई, सदाचार पवित्रता कमाई, ज्ञान समझे; व्रत, तप, हठ कमाये। परन्तु मन लगातार वश में न आया। यह तो सब बात समझ गया परन्तु मैं क्षमा हीन कैसे?"

सेनापति—यह तो श्री सतगुरुजी ही आपको बतला सकते हैं। अब मैं दरबार में जाता हूँ। समय बहुत व्यतीत हो गया है।

सेनापतिजी गुरु दरबार में पहुँचे। क्या देखते हैं कि एक सन्यासियों की जमाअत भी वहाँ आई हुई है। इतने में उनके मुखिया ने उठकर बड़े अदब के साथ गुरुजी से विनय की "आप जी श्रीगुरु नानकदेव जी की गद्दी के मालिक हैं। आपने सन्यास की जगह रजोगुण का अधिकतर उपदेश दिया है—हे अवतार शिरोमणि जी! जगत् का उद्धार कैसा होगा?"

सतगुरु जी—हमने भाई श्रुति का सन्यास सिखलाया है। ज़ाहरी और ढोंग का सन्यास ठीक नहीं।

साधु—मेरी समझ में श्रुति का सन्यास नहीं आया।

सतगुरु जी—भाई सन्तजी! माया निर्वाह करती है! आपका सन्यासी होकर भी निर्वाह माया करती है। हमारे सिक्खों का गृहस्थी होकर भी निर्वाह माया करती है।

यह कहकर गुरुजी ने सन्यासियों की चिपियाँ देखने को मँगाई और भरे दरबार में हुक्म दिया कि इनके ऊपर जमी हुई लाख को पिघलाया जाय। इस आज्ञा का पालन होते ही हर एक चिप्पी में से कई कई अशर्फियाँ निकल पड़ीं। तब सतगुरु जी बोले "माया निर्वाह करती है। हमारे गृहस्थी इन अशर्फियों को डब्बों में रख कर निर्वाह करते हैं। आप चिपियों के साथ लगाकर निर्वाह के लिये रखते हैं। फ़र्क कोई नहीं मालूम पड़ता है।"

तब गुरुजी ने सेनापति जी को बुलाया और बोले "भाई! क्षमा हीन है। ठीक जानो, आओ, तुम्हें प्रत्यक्ष दिखलायें।" यह कह कर गुरुजी दयासिंह की ओर देख बोले "दयासिंह! तुरन्त घोड़े पर सवार होकर नैना पर्वत के टीले की दाहिनी ओर जाओ। बड़ी चट्टानों की आड़ में एक गुफ़ा है, वहाँ एक तपस्वी है। उसको वहाँ से ले आओ। अति निर्बल है, होशियारी से लाना।"

आज्ञा पाते ही दयासिंह जी चले गये और सारी संगत देख रही है कि सतगुरुजी कैसे कैसे कौतुक कर रहे हैं। गुरुजी ने सेनापति से कहा "जाओ, अपने मित्र हंसजी को भी ले आओ।" हंसजी आये और नमस्कार करके खड़े हो गये। थोड़े समय बाद भाई दयासिंह जी उस तपस्वी को ले आये। वह बेहोश हो गया था। गुरुजी ने झट सिंहासन से उतर उसको आप अपनी

गोदी में लिया और फिर सिंहासन पर विराजमान हुए और उस पिंजर से शरीर को प्यार दे दे कर कह रहे हैं "तुम पापी नहीं, तुम पापी नहीं।" जब तपस्वी जी होश में आये तो झट सतगुरु की गोदी में से निकल चरण पकड़ कर रो पड़े "हे विष्णु, हे बुद्ध, हे जिना, हे अर्हन्न, तुम मेरे परब्रह्म हो, साक्षात् ब्रह्म हो। परन्तु मैं पापी हूँ। मेरे साथ मत छुओ।"

सतगुरुजी बोले "तुम पापी नहीं। सावधान हो। अब तुम सत्संग के वैकुण्ठ में हो। सारी संगत को अपनी व्यथा सुनाओ।"

तपस्वी—मैं सूरत शहर का बासी हूँ। मेरी माँ और उसकी पड़ौसिन दोनों सहेलियाँ थीं। उन्हों ने प्रण किया था कि जो हमारे घर पुत्र जन्में तो मित्रता में जोड़े जायँ। जो पुत्र पुत्री जन्में तो ब्याहे जायँ। अपनी माता के घर मैं और उसकी सहेली के घर कन्या हुई। हम इकट्ठे हो खेलते और पलते रहे। हम कोई ग्यारह बरस के थे जब कि हमारे शहर में एक साधुओंका टोला आया। वह कई दिन तक कथा वार्त्ता करता रहा। मुझपर और कन्या पर ऐसा असर हुआ कि हम दोनों ने वहीं प्रतिज्ञा करदी कि हम इस दुःख रूपी संसार में नहीं रहेंगे और साधु हो जायँगे। सो हम चौमासे बीते उस टोले के साथ भेजे गये, स्त्रियों के साथ वह कन्या और मर्दों के साथ मैं। उस दिन हमें यह पता लगा कि हम आपस में फिर न मिलेंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा का नियम है। ख़ैर हम एक पहाड़ पर पहुँचे। मर्द साधुओं के मठ में मैं और स्त्रियों के मठ में वह कन्या दाखिल की गई। कई व्रत मुझसे कराये गये। फिर क्रिया शुरू हुई। बड़े बड़े उग्र तप, संयम, साधन किये। बड़े कष्ट झेले। यही

आज्ञा होती थी कि पाप नहीं करना। पवित्र रहना। यही कल्याण का मार्ग है। जब मेरी आयु क़रीब बीस वर्ष के हो आई तो मैं कुछ और ही हो गया। मुझ में एक और इच्छा प्रकट हो आई। मेरे शिक्षकों ने बताया कि यह काम है। इसको मारना परम धर्म है। जो जो साधन उन्हों ने बताये मैंने किये। चन्द्रायण व्रत भी मैंने कई बार किये। एक तोला बादाम रोग़न रोज़ पर भी मैंने कई महीने निकाले परन्तु इस सारे संयम में मुझे वह कन्या मेरी बाल सखाई भूली नहीं और जब कभी याद आया करे और जब जब मैं यह बात साधुओं को बताऊँ तब तब मुझसे कठिन तितिक्षा और करायी जाया करे और फ़ाके कराये जावें। एक दफ़ा मैं बन में लकड़ियाँ बीनने गया तो वह कन्या भी उसी बन में लकड़ियाँ बीन रही थी। अचानक हम एक दूसरे के सामने हो गये। बिना कुछ विचारे हम आपस में बातें करने लग गए और अपने दुःख दर्द कहते सुनते रहे। कितना समय इसी तरह व्यतीत हो गया कि उधर से मठ की साधुनी ने आकर देखा। आँखें लाल करके बिजली के मानिन्द टूट पड़ी और कहने लगी, तुम पापी हो, तुम पापी हो। मैंने चरण पकड़ कर कहा मुझे पाप की कोई ख़बर नहीं। हम बाल सखाई इकट्ठे खेलते होते थे। बरसों बाद मिले हैं, और बेबस मिले हैं और हमें कुछ ख़बर नहीं। वह भिक्षुक माई कहने लगी तुम घोर पापी हो। पाप करके अड़ते और झगड़ते हो। बात क्या, हम अपने अपने मठ में गये। कन्या का मुझे मालूम नहीं क्या हाल हुआ पर जो मेरे साथ बीती वह मैं क्या बताऊँ ? बड़े बड़े कठिन व्रत दिये गये। फिर सारे साधुओं की सेवा, चन्द्रायण व्रत, कई रातों का जागना,

फिर व्रत, परन्तु फिर भी मेरा नाम पापी ही पड़ गया। हमारे मठ के मुखिया हंस नाम के साधु थे जो पहिले कभी बड़े कवि और चित्रकार थे पर फिर साधु होकर उग्र तप करते हुए मठ के महन्त हो गये। उनसे मैंने कहा कि कोई उपाय बताइये कि मैं पापी न रहूँ और फिर आप सारे मुझे कहें कि अब तुम पापी नहीं रहे। हंस जी को पता था कि मैं पाप से रहित था। केवल इतना ही पापी था कि एक कन्या को जिसको मैं बाल अवस्था की सहेली अथवा साथ खेलने वाली समझ कर प्यार करता था मुद्दतों बाद मिली को उसी प्यार के साथ मिला। हंसजी ने मुझ से कहा "मैं जानता हूँ कि तुमने कोई पाप नहीं किया परन्तु तुम्हारा व्रत था कि किसी स्त्री की सूरत भी नहीं देखूँगा। वह व्रत तुम्हारा भंग हो गया है। तुम इसीलिये पापी हो।" मैंने पूछा यह पाप किस तरह मिटे। कहने लगे यातो आँखें निकाल दी जायँ या बारह बरस एक तोला बादाम रोग़न प्रति दिन पीकर व्रत धारण किया जाय। सो मैं सोच में पड़ गया। पहिले तो जोश में आकर मैं आँखें निकलवाने को तैयार होगया परन्तु फिर हृदय ने न माना। तब मैं बारह बरस के तप की आज्ञा ले छिपकर निकल आया। मैं अपने मठ के बड़े बड़े स्थानों पर गया, बड़े बड़े तपस्वियों से मिला, सब ने कहा कि तू पवित्र नहीं रहा। तुमने व्रत भंग किया। तुमने स्त्री के साथ बातें क्यों कीं और इलाज भी सबने वही बताया। सो मैं घूमता, रोता, बनों पहाड़ों में कष्ट झेलता यहाँ कोई छः मास से गुफ़ा में पड़ा था। न कहीं जा सकता था, न आ सकता था। बादाम रोग़न मिलता नहीं। सो किसी किसी दिन पत्तियाँ वग़ैरह खाकर पड़ा रहता हूँ कि जो बारह बरस बीत जायें।

आज दो बरस बीते हैं पर मैं सच कहता हूँ कि उस कन्या की मूर्ति मुझे नहीं भूलती। अब मिले तो मैं नयन बन्द कर लूँगा परन्तु वह मुझे भूलती नहीं है। पता नहीं यह भी पाप ही हो। इन वहमों में पड़ मैं जीवन से तंग आगया हूँ और मौत माँग रहा हूँ। आज मेरा संकल्प था कि किसी वृक्ष पर से कूद कर इस पापी देह का अन्त करलूँगा परन्तु आज आपने बुला लिया है। पता नहीं क्या हुआ जो मेरे ऊपर मेहर हुई है। मैं पापी नहीं जानता। मुझे आपकी आज्ञा होगई है कि मैं पापी नहीं हूँ परन्तु मेरे शरीर के सारे अङ्ग मुझे अभी पापी पापी कह कर पुकार रहे हैं। यह कह कर तपस्वी जी बैठ गये और उनकी आँखें मुंद गईं।

सतगुरु जी—सेनापति! यह चिता आपके हंस जी की जलाई हुई है। यह प्रत्यक्ष क्षमाहीन है। हंसजी कपड़ों पर तो सूर्य का चित्र बनाते हैं परन्तु परमेश्वर के रचे तख़्तों पर पाप का चित्र रचते हैं। बताइये, है न क्षमा हीन?

यह सुनते ही हंस जी उस तपस्वी के चरणों पर आगिरे और कहने लगे "मुझे समझ आगई। मैं क्षमाहीन हूँ। मैं सचमुच ही पापी हूँ। तुम पापी नहीं, मैं पापी हूँ। मुझे अब क्षमा करो।"

उस निर्बल तपस्वी ने हैरान होकर हंसजी की ओर देखा। पहिले काँपा परन्तु फिर साहस पड़ा। उसको विह्वल देख कर बोला "वह बैठे हैं विष्णु जी! मालिक, शरणपाल।"

दरबार में यह अचरज नज़ारा था। सेनापति, भाई नन्दलाल और सारे कवि और पंडित हैरान थे कि आज सतगुरुजी यह क्या लीला वर्ता रहे हैं। इतने में सतगुरुजी की

ओर से इशारा हुआ और रागियों ने यह शब्द गायन किया -

पाठ पड़िओ अरु वेद विचारिओ निवल भुअंगम साधे।
पंच जना सिउँ संग न छुटकिओ अधिक अहम्बुधि बाधे ॥१॥
प्यारे इन विधि मिलणु न जाई मैं कीए करम अनेका।
हार परिओ स्वामी के द्वारै दीजै बुधि विवेका ॥रहाउ॥
मौन भयो कर पाती रहिओ नगन फिरयो बन माँही।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुविधा छुटकै नाहीं ॥२॥
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिर करवत धराए।
मनकी मैल न उतरै इह विधि जे लख जतन कराए ॥३॥
कनिक कामनी हैवर गैवर बहु विधि दान दातारा।
अन्न, बस्त्र, भूमि बहु अरपे नहिं मिलिऐ हरिद्वारा ॥४॥
पूजा अर्चा बन्धन डंडउत खट कर्मा रतु रहता।
हउँ हउँ करत बन्धन महिं परिआ नहिं मिलिऐ इह जुगता ॥५॥
जोग सिद्ध आसन चौरासी ए भी कर कर रहिआ।
वड़ी आरजा फिर फिर जनमै हरि सिउँ संग न गहिआ ॥६॥
राज लीला राजन की रचना करिआ हुक्म अफारा।
सेज सोहनी चन्दन चोआ नर्क घोर का द्वारा ॥७॥
हरि कीरति साध संगत है सिर कर्मन के कर्मा।
कहु नानक तिस भयो परापत जिस पूर्व लिखे का लहना ॥८॥
तेरो सेवक इह रंग माता।
भयो कृपाल दीन दुख भंजन हरि हरि कीर्तन इह मन राता ॥

— श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी।

फिर सतगुरुजी बोले "भाई हंसजी! जब यह बारह बरस के बच्चे ही थे इनको क्या पता था कि इनके अन्दर एक और

ताक़त पैदा होनी है जिसने इनको और का और ही बना देना है। उस ताकत के पैदा होने से पहिले यह क्या व्रत धारण कर सकते थे। यह पाप था जो कि आपने इनसे बालपन में ही जती होने का व्रत लिया। इस तरह के आपने ख़याली धर्म बनाकर जगत को बहा दिया है। आप गृहस्थ से पैदा होते हैं, और फिर गृहस्थ को ही पाप बताते हैं। दोनों बच्चों बच्चे की माताएँ प्रण कर चुकी थीं कि यह स्त्री मर्द होंगे, विवाहित होंगे, फिर आपने वह व्रत भंग कराया और बालकों के व्रत को मनुष्य के व्रत के बराबर समझा। अब फिर केवल बातें करने पर ही ऐसी कठिन सज़ा दो कि मर ही मिटे। वाह रे धर्म! दुनिया के हर देश में इस ख़याली तितिक्षा ने प्राणी मात्र को नष्ट कर दिया है। आपने आदमी को कुदरत का पुतला नहीं जाना। इसके अन्दर ईश्वर नहीं पहचाना। इसके इन्द्रिय, इसके रसों को इसके दास नहीं समझा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, हंकार यह पाँचों महा बली वश करने हैं, क़तल नहीं करने। इनसे सेवा लेनी है। सब ताक़त मनुष्य के शरीर में सेवा के लिये हैं। जब यह मनुष्य के ऊपर सवार हो जायँ तब पाप है। जब मनुष्य इनको वश और क़ाबू में रक्खे यह पाप नहीं, कुदरत के रंग हैं, मनुष्य के दास हैं।"

हंस गुरुजी के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे "हे दाता! यह तपस्वी शरण बेटा है। यह पापी नहीं। पापी मैं हूँ। मैंने इस तरह के कई दिल धर्म की भूमि में मुर्झाए और सताए हैं पर अब मैं दुखी दीन शरण आया हूँ।"

गुरुजी ने आज्ञा दी तब शरण बेटे को तत्काल अमृत पान कराया गया और शरण बेटा से शरणसिंह बनाया। फिर

हंसजी को आज्ञा दी कि उस कन्या को खोजकर हाज़िर करें जिस निरअपराधिनी को केवल अपने बालपन के हमसाये के साथ बातें करने के बदले में महान कष्ट में डाला गया।

कुछ समय बाद हंसजी उस कन्या को खोज गुरु दरबार में ले आये। कन्या नेत्र हीन है। जब इस कन्या को अपने मठ में बताया गया कि मनुष्य का दर्शन करना और उससे बात करना पाप था तब इस धर्म की प्यासी कन्या ने अपने अपराध की क्षमा के लिये अपने आपको नेत्र हीन कर लिया था।

यह नेत्र हीन अबला सतगुरु के दरबार में आती है। गुरुजी ने उसको बुलाया और कहा "तू सतगुरु के घर में आई है। तू अंधी नहीं। नयन खोल।" यह कहते ही कन्या के नयन खुले। चेहरे पर एक अजब सरूर छाया और वह दौड़ कर गुरुजी के चरणों से लिपट गई। कन्या को भी अमृत पान कराया और उसका उसी तपस्वी शरणसिंह से विवाह कर दिया। इन दोनों को गुरुजी ने गृहस्थ निर्वाण का मत दिया। हंसजी पर भी मेहर हुई। उनको भी हंसराज से हंसराज सिंह बना दिया।

इस प्रकार के आत्म रस वाले कौतुकों में युद्ध भी आ छिड़ते थे। फिर गुरुजी उस कार्य को भी पूरी तरह निपटाते। पिछली हार और ख्वारी से पहाड़ी राजाओं ने अब सरहिंद के नवाब के पास फ़रियाद की और उसे बीस हज़ार रुपया नक़द और अपने ख़ानदान की एक लड़की नातं में देकर गुरुजी पर आक्रमण करने के लिये तैय्यार कर लिया। जब वह सेना लेकर चढ़ आया तब पहाड़ी सेना भी ऊपर के रास्ते रोपड़ के स्थान पर जा मिली। गुरुजी ने आनन्दपुर लड़ाई ठीक न समझ

निर्मोह गढ़ के मैदान में मोर्चे लगाये और आते हुए नवाब को रोका। घोर संग्राम के बाद सरहिंद का नवाब दिक पड़ गया। उसी समय वैसाली के राजा ने उसको समझा कर वापिस किया और राजाओं से गुरुजी को नज़राने दिलाये और गुरुजी को बड़े आदर के साथ वैसाली ले गया। यहाँ गुरुजी ने कई दिन विश्राम किया। इसके पश्चात् राजा भभोर के यहाँ पहुँचे। वहाँ राजा के अनोखे प्रेम और रानी को अद्वितीय प्रीति भावना होने के कारण गुरुजी इतने समय तक वहीं ठहरे कि दूर दूर से प्रेमी सज्जन वहीं पहुँचने लग गये।

यहाँ से विदा हो गुरुजी फिर आनन्दपुर आ पहुँचे। यहाँ फिर वही सत्संग, कीर्तन, आनन्द होना शुरू होगया।

१६—योगी चन्दन नाथ

अब की मरतबा आषाढ़ मास संवत् १७५६ विक्रमी में ग्रहण के समय गुरुजी भी कुरुक्षेत्र गये। इस समय लाखों आदमी वहाँ इकट्ठे हुए थे। गुरुजी ने सब में ख़ालसा पन्थ का आदर्श फैलाया। लोगों की हीन दशा, धर्म विमुख हालत स्पष्ट करके बताई और उपदेश दिये। इस समय गुरुजी का लंगर भी जारी था। और सारे मेले की भीड़ क़रीब इधर ही रहती थी।

इस अवसर पर वहाँ एक कनफटे योगियों का टोला भी आया हुआ था। इनके मुखिया चंदन नाथ ने गुरुजी का यश बहुत फैलते देख कर उनको हिरास करने की ठानी। अपने टोले के सारे योगियों को और सारे चेले और सेवकों को सिखा इकट्ठे हो गुरुजी के लंगर में जा पहुँचे। गुरु घर की यह रीति चली आई है कि लंगर में किसी मत, वेश या मज़हब का भी आये सबको भोजन दिया जाता है। गुरुजी के सेवकों ने इसलिये उन सबको शुभागमन कहा और सबके हाथ धुला कर भोजन परोसा। योगियों ने तब अपनी योग कला द्वारा अन्न को ख़तम करना शुरू किया। जो कुछ उनके आगे परोसा जाता था वह सब अपनी सिद्धियों द्वारा ख़तम करते जाते थे। गुरुजी के सेवकों ने जब यह देखा तब उनमें से एक जल्दी से गुरुजी के पास यह सारा हाल कहने को गया। गुरुजी उस समय दर्बार में बैठे थे और कहा "ख़ालसा जी! इन ऋद्धियों सिद्धियों को कुछ अच्छा मत समझिये। यह हमको मुक्ति मार्ग से रोक

लेते हैं। इनको प्राप्त कर योगी लोग इनमें ही फँस जाते हैं और अभिमान और अहंकार में पड़ जाते हैं। किसी सिद्धि ने महमूद के हमले को न रोका। किसी ने औरंगज़ेब को सीधा नहीं किया। पंडित लोग सैदपुर में हाकिम को तसल्ली दिलाते रह गए कि हमारी विद्या के सामने बाबर की तोपों के मुँह बंद हो जायेंगे, मुग़ल अन्धे हो जायेंगे, परन्तु किसी सिद्धि या करामात ने कोई भी सहायता न की। बाबर ने बे खटके सैदपुर को क़त्ल आम की। इसलिये ज़ालिमों को सीधा करने के लिये एक ही करामात है और वह है तलवार। यह सिक्खों के हाथ ज़ुल्मों के दूर करने को इसीलिये दी गई है।"

इतने में लंगर का एक और सेवक आया और कहने लगा "हे गुरुजी! पका पकाया भोजन जो तैयार है वह अब खतम होने को है, और भोजन इतनी जल्दी तैयार नहीं हो सकता। ऐसा न हो कि बीच में टूट पड़ जाय।" गुरुजी ने अब भाई दयासिंह को बुलाया और कहा "भाई दयासिंह जी! जाइये आज लंगर में सेवा कीजिये। योगियों का टोला बैठा है। सब के आगे एक एक फुलका अपने हाथों से रखिये और कहते जाइये 'धन्य श्री गुरु नानक देवजी।' इस प्रकार उन अतृप्त योगियों को जिन्हें मानसिक शक्ति पर अभिमान है और जिन्हें अपने मन पर बिलकुल क़ाबू नहीं है, उनको तृप्त कीजिये।"

आज्ञा पाते ही भाई दयासिंह जी लंगर में पहुँचे और "धन्य श्री गुरु नानक देवजी" उच्चारते हुए फुलके वर्तने लगे। जिसके आगे आपने एक फुलका रक्खा उसने फिर और कोई चीज़ न माँगी। वह अशान्ति जो सिद्धियों द्वारा खाने वालों में छा रही थी दूर हो गई। चन्दन नाथ की तृष्णा भी दूर हुई।

यह कला देख चंदन नाथ ने विचारा कि जिस गुरु के एक सिक्ख में इतना बल है वह आप पता नहीं कितनी ऋद्धियों सिद्धियों का मालिक होगा। यह सोचकर भोजन पाते ही अपने चेलों समेत चंदन नाथ गुरुजी के दर्शन करने को जाता है। कितने ही समय तक गुरुजी से वार्तालाप किया। चंदन-नाथ आप बड़ा तीरन्दाज़ था। उसको अपनी शस्त्र विद्या पर ख़ास अभिमान था। गुरुजी के पास बड़े बड़े भारी धनुष पड़े देख इसने प्रश्न किया कि यह धनुष सजावटी हैं या कभी चलाये भी जाते हैं। गुरुजी मुस्कराये और कहा "सजावटी नहीं, यह काम के शस्त्र हैं। वक्त पर इनसे काम लिया जाता है।"

चंदन नाथ ने फिर इच्छा प्रकट की कि चलाकर दिखलाइये। गुरुजी ने धनुष उठाया और बाण चढ़ाकर छोड़ा। लगभग तीन कोस की दूरी पर किसी तुर्क की एक गढ़ी थी और यह बाण उसके ऊपर से निकल कर आगे चला गया। सारे योगी यह देखकर बहुत अचम्भित हुए। चन्दन नाथ को सब अपनी विद्या भूल गई। इस समय और कई राणा राजपूत बैठे हुए थे। चंदननाथ और सब राणाओं ने बहुतेरा ज़ोर लगाया पर जितनी दूर गुरुजी का बाण पहुँचा था वहाँ तक और दूसरे किसी का भी न पहुँच सका।

इसी प्रकार परीक्षा करने पर जब चंदन नाथ ने गुरुजी को हर विषय में पूर्ण पाया तब उसका अभिमान का रोग दूर हुआ और निरोग होकर गुरुजी का चेला बन गया।

इसी प्रकार के और कई कौतुक वहाँ होते रहे और फिर अनेक स्थानों से होते हुए गुरुजी आनन्दपुर को लौटे। बिलास पुर के राजा और और राजाओं को पता था कि इस समय

गुरुजी के साथ थोड़े से ही सिक्ख हैं और इस तरह इनको घेर कर मार लेना बहुत आसान है। आप तो राजा लोगों में से कोई आगे न हुआ परन्तु सैद बेग और अलिफ़ ख़ाँ दो जरनैल जो पाँच हज़ार की फ़ौज के साथ देहली से लाहौर को जा रहे थे उनके साथ राजाओं ने अन्दर ही अन्दर सलाह पकाई और उनसे कहा कि आनन्दपुर जाते हुए गुरुजी पर अचानक हल्ला करके उन्हें मार दें। जितने दिन भी लगें उसके ख़र्च के अलावा दो हज़ार रुपया रोज़ और देना ठहराया। इस लालच में सैदबेग और अलिफ़ ख़ाँ दोनों छिपकर गुरुजी का इन्तज़ार करने लगे परन्तु गुरुजी को उनकी घात का पहले से ही पता लग चुका था और आनन्दपुर भी ख़बर पहुँच चुकी थी इस लिये वहाँ से सिक्खों की एक फौज भी चल पड़ी थी। इधर तुर्क गुरुजी पर आ पड़े। उधर आनन्दपुर की फौज तुर्कों पर आ पड़ी। ख़ूब संग्राम मचा। सैदबेग गुरुजी की रूहानियत से असर पागया और अपना दल छोड़ गुरुजी की ओर से लड़ने लगा। अलिफ़ ख़ाँ अपनी हार होते देख पीछे लौट गया और सतलज के पार जा पहुँचा। इधर गुरुजी आनन्दपुर आ पहुँचे और फिर वही ईश्वरीय रंग होने लग गये।

१७—ब्राह्मण स्त्री की रक्षा ।

क दिन रात्रि समय जब गुरुजी दर्बार में बैठे थे, तो किसी पीड़ित पुरुष के दोहाई के शब्द उनके कानों पड़े। गुरुजी ने चोबदार को बुलाया और पूछा कि कौन है? और क्या चाहता है? चोबदार ने उत्तर दियाः—"महाराज! एक दुखी ब्राह्मण है। पीड़ा से कराह रहा है।" गुरुजी ने ब्राह्मण को अपने पास बुलाया और पूछा "हे दुखी द्विज! तुम्हें क्या पीड़ा है?" वह ब्राह्मण बोलाः—

हे प्रभु हिन्दु धरम की धुजा। दीन दयाल दीरघ बल भुजा ॥
सभ थल ते मैं होइ निरासी। फिर आयो रावर के पासी ॥
अति अन्याइ मोहि सँग कीना। दुष्ट पठान गरब दुख दीना ॥
पुर हुश्यार निकट इक बसी *। बसै पठान तहाँ मति नसी ॥
मैं मुकलाइ वधू को डोरा। गमनति जात अपन घर ओरा ॥
करी विलोकन तिन मम दारा। छीन वरयो लै सदन मझारा ॥
मैं जब ऊचे कीन पुकारा। नर ते गहिवायो बहु मारा ॥
तिस हित मैं बहुतन ढिग गयो। तुरक जहाँ कहिं धन तिन दयो ॥
नहीं फिराद लगन कित दीन। जिउँ किउँ जतन अनिक मैं कीन ॥
काज़ी कोटवार ढिंग फिरयो। किनहूँ न्याउँ न मेरो करयो ॥
लख कै गुरु हिन्दुन सिरमौर। परम दुखी आयो इस ठौर ॥

—सूर्य्य प्रकाश।

---

* एक बस्ती है। इसका नाम पठानों की बसी था, ज़िला हुश्यारपुर था।

प्रिय पाठक! यह दुखी ब्राह्मण क़ाज़ी आदिकों के अतिरिक्त पहाड़ी हिन्दू राजाओं के पास भी गया, पर किसी ने उसकी सहायता न की। करता भी कौन? मुग़ल राज्य के सामने कौन बोल सकता था? हिन्दू जाति सदियों से ज़ुल्म की तलवार से कटती कटती इतनी निर्बल हो चुकी थी कि यह कोई ख़्याल ही नहीं कर सकता था कि पठानों से बलवान और कोई भी हो सकता है और उनको कोई दण्ड भी दे सकता है। सतगुरुजी ने जब ब्राह्मण की यह दर्द भरी विथा सुनी तो किसी सोच में आये, नैनों में लाली भर आई और श्री मुख पर कोई नूरानी झलक दिखाई पड़ी। सत गुरुजी को चुप देख ब्राह्मण ने सोचा कि इस जगह से भी जवाब मिलता दीख पड़ता है, तब उसने और ज़ोर से पुकार कीः—

थी प्रभु! कै अब त्रिय को पाऊँ।
नति मैं दुआर अग्र जर जाऊँ॥
जीवन धर्म नहीं अब मेरा।
तुम विन जतन नहीं को हेरा॥

यह सुनकर श्री गुरुजी मुस्कराए और कहने लगेः— "हे ब्राह्मण! तेरा क्या नाम है?"

ब्राह्मण—जी! मेरा नाम देवदास है। मैं सारस्वत ब्राह्मण हूँ।

गुरुजी—देवदास! चिन्ता की अग्नि में मत जलो। धैर्य्य रक्खो। तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है। हम इसके ठीक करने का उपाय करते हैं। जैसे कैसे हो सकेगा तुम्हारी स्त्री को तुम्हें ले देंगे।

ब्राह्मण ने सुख का लम्बा साँस लिया, नेत्रों से बहती जल

धारा को पोंछा और सर भूमि पर टिका कर कहाः—"हे वन्दी छोड़ ! आप धन्य हैं !! हे ग़रीब निवाज ! आप धन्य हैं !!"

गुरुजी आज्ञा देते हैं:—"साहब अजीत सिंह को बुलाओ।" कौन है अजीतसिंह ? कोई जमादार, सूबेदार, सेनापति नहीं, कोई नौकर चाकर अन्य सूरमा नहीं, अपना लख़्ते-ज़िगर है, अपना बड़ा सुकुमार है। आयु कितनी है ? अभी बीस वर्ष की भी नहीं। साहब अजीतसिंह हाज़िर होते हैं। गुरुजी की आज्ञा होती है:—"बेटा ! इस ब्राह्मण की स्त्री बसी के जाबरखाँ पठान ने छीन ली है। उससे छीनकर इसकी स्त्री इसको दिलानी है। जाओ, कुछ सेना साथ ले जाओ, बसी पहुँचो, पठान और स्त्री दोनों को पकड़ कर ले आओ। बिजली की तेज़ी की तरह जा टूटो, आते जाते पता न लगे, बस कार्य्य करना है और फुर्ती का काम है।"

प्रिय पाठक ! कौन है जो ऐसे कठिन समय एक अनजान ब्राह्मण की स्त्री की ख़ातिर औरङ्गज़ेब के चमक रहे सूर्य्य के मध्यान्ह के समय अपने पुत्र की जान ख़तरे में डाले ? यह धर्म धुरन्धर श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ही हैं जो हज़ारों नहीं लाखों अन्य सूरमा होते हुए भी इस कठिन कार्य्य के लिये अपने जिगर के टुकड़े को भेजते हैं और इसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं करते हैं। यद्यपि कुछ सिंहों ने प्रार्थना की कि रात्रि को विश्राम करके सूर्य निकलते ही धावा बोल दिया जावेगा, परन्तु दीन धर्म रक्षक श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज के दया-समुद्र शूरवीर सुपुत्र अजीतसिंहजी एक अबला स्त्री की दुखित अवस्था को सुन स्वयम् आराम की निद्रा कैसे सो सकते थे ?

तत्काल ही शस्त्र धारण कर उन्होंने सौ सवार अपने साथ लिये और दुखी ब्राह्मण को भी एक घोड़े पर बिठाकर अपने साथ लिया और कूच बोल दिया। समय रात्रि का है, रात्रि के अँधेरे में उजाला करने वाले गुरु के सपूत अपनी छोटी सी सेना समेत चले जा रहे हैं। दिन निकलने से पहले ही आप पठानों की बस्ती में जा पहुँचे। पठान अभी सब सोए पड़े थे। तभी जाबरखाँ की हवेली का बड़ा फाटक टूटा और बस्ती में बड़े ज़ोर की आवाज़ हुई। पठान जाग उठे और एक दम "आ पड़े, आ पड़े, सिक्ख आ पड़े" की आवाज़ सब जगह गूँज गई। परन्तु जब पठानों ने सिक्खों की सनद्ध बद्ध सेना देखी तो सामना करने का हौसला न पड़ा, कुछ ने जो सामना किया भी तो मुँह की खाई। सिक्खों ने हवेली तोड़ी, अन्दर गए, पहरेदारों को जकड़ कर एक जगह बाँध दिया। अब सीधे खाँसाहिब को उनके सोने वाले कमरे में जहाँ वह घबराये हुए इधर उधर दौड़े फिरते थे जा पकड़ा। ब्राह्मण ने पहचाना कि यही है। उसने भी माना कि मेरा नाम ही जाबरखाँ है। फिर स्त्री पहचानी, इसको भी पकड़ लिया। बाकी घर की और स्त्रियों को किसी को कुछ न कहा, उनके किसी पदार्थ को हाथ न लगाया। पठान और ब्राह्मण की स्त्री दोनों को बाहर ले आये। घोड़ों पर बैठाकर अपनी सेना के बीच में ले कूच किया। जहाँ तक हो सका युद्ध नहीं किया पर जहाँ कहीं किसी ने आगे से मुकाबला किया तो उसे मार गिराया। इस प्रकार लगभग साफ़ ही बच कर निकल आए और उसी दिन आनन्दपुर आ पहुँचे। जब सतगुरुजी के दबार में पहुँचे तब साहब अजीतसिंहजी ने दोनों पठान और ब्राह्मण स्त्री सभा में पेश किये।

न्याय शील श्री गुरुजी ने जाबरख़ाँ को जिसने ज़ुल्म का बाज़ार गरम कर रक्खा था मौत के घाट उतरवाया और स्त्री ब्राह्मण को दिलाई। जब स्त्री ब्राह्मण को मिल गई तब उसकी दूसरी कठिनाई यह थी कि घर वाले उसको बिरादरी से अलग न कर दें। इस विपता को दूर करने के लिये श्री गुरु जी ने उस स्त्री को वहीं शुद्ध किया और आनन्दपुर रहने वाले ब्राह्मणों की बिरादरी में अभेद किया जिससे कि ब्राह्मण को हुश्यारपुर अपने घर पहुँच कर किसी प्रकार की कठिनाई न हो। तब ब्राह्मण अपनी स्त्री को ले घर पहुँचा और सारे देश में डंका बजाया कि श्री कलग़ीधर दुष्ट दमन अवतार हैं।

इस चरित्र को सुन जग सारा। श्री सतिगुरु जस महद उचारा॥
जथा चाँदनी निर्मल होत। तिम घर घर महिं सुजस उदोत॥
मनहुँ मालती फूलत भूली। राइबेल है सुन्दर फूली॥
जहिं जहिं कीरत बरनन करते। धन्य धन्य प्रभु धन्य उचरते॥

१८–शाही सेना का आक्रमण।

हाड़ी हिन्दू राजाओं की कृतघ्नता की भी कोई सीमा न थी। जब जब भी इन्होंने गुरुजी से सहायता माँगी तब तब ही गुरुजी ने इन सबको सहायता दी परन्तु इन देश द्रोही राजाओं का यह हाल था कि जिस वृक्ष तले बैठते उसी की जड़ों पर कुलहाड़ा चलाते। सिक्ख तो इनकी रक्षा और इनकी बहू बेटियों की आबरू के बचाने के लिये अपने घर बार छोड़, भूख प्यास के दुःख झेल. अपनी जानें हथेली पर रक्खे फिरते थे परन्तु यह देश और हिन्दू जाति के शत्रु पहाड़ी राजा सिक्खों के ख़ून के प्यासे उन्हें संसार से मिटा देने के लिये यवनों के द्वार पर ठोकरें खाते फिरते थे।

अब जब कि सरहिन्द के नवाब की सहायता से भी यह राजा लोग गुरुजी का कुछ न बिगाड़ सके तो सबने मिलकर शहंशाह औरङ्गज़ेब को यह पत्र लिखा कि हुज़ूर! आपकी सल्तनत में अब तक हम सब बड़े चैन से रहते थे, पर अब एक ऐसी बला आ पड़ी है जिससे हम हरदम ख़तरे में रहते हैं। संवत् १७३२ में तेग़ बहादुर नाम का एक फ़कीर शाही आज्ञा से बाग़ी समझकर देहली में मरवाया गया था, उसी का लड़का यह गोविन्दसिंह है जिसने यह तूफ़ान मचा रक्खा है। इसने हिन्दू व इसलाम के धर्मों के प्रतिकूल एक बिल्कुल स्वतन्त्र और नवीन ख़ालसा धर्म स्थापन किया है और सब

धर्मों के विरुद्ध प्रचार करता है। इसने कई मज़बूत किले भी बनवा लिये हैं और बहुत सारी सेना भी इकट्ठी करली है जिसमें इसने एक नई रूह फूँक दी है और जिसकी बदौलत वह किसी को कुछ भी नहीं समझता। बड़े बड़े लुटेरे डाकू और बादशाही बाग़ी इसके साथ हो गए हैं और वे रोक टोक लूट-पाट कर लोगों का सर्व नाश कर रहे हैं और अब इसने हुज़ूर के शासन को पलट देने का पक्का इरादा कर लिया है। इसने केवल स्वयम् ही राज द्रोही विप्लव का झगड़ा नहीं उठाया हुआ किन्तु हम सब राजाओं को भी ख़ालसा धर्म धारण करके हुज़ूर के विरुद्ध तलवार उठाने का निमन्त्रण दिया था। हम सब ने कई बार मिल कर इस पर चढ़ाई भी की है पर इसकी दिलेरी और चालाकी से हमको हार कर पीछे ही हटना पड़ा है, यहाँ तक कि सूबा सरहिन्द की मदद भी कुछ कारगर नहीं हुई है। इसने अपने आपको सच्चा बादशाह मशहूर कर रक्खा है और प्रति दिन इसका बल बढ़ता जा रहा है। यदि अभी से हो कोई विशेष उपाय इसकी ताक़त को जड़से उखाड़ डालने का न किया गया तो सम्भव है कि यह आपकी सलतनत में भारी ग़दर मचा दे जिसके लिये यह अभी से ही हिन्दुओं को आपके ख़िलाफ़ उभाड़ रहा है और उन्हें पट्टी पढ़ाया करता है। इत्यादि, इत्यादि।

यह सब तो राजाओं ने पत्र द्वारा लिख कर भेजा। फिर पीछे से सूबा सरहिन्द की सलाह से राजा अजमेरचन्द को अपना प्रतिनिधि बना कर सारा हाल ज़बानी कह सुनाने के लिये भेजा। इस समय औरङ्गज़ेब दक्षिण देश में था। राजा अजमेरचन्द वहीं पहुँचा और ऊपर लिखा सारा वृत्तान्त

शहंशाह को ज़बानी कह सुनाया। शहंशाह औरङ्गज़ेब पहले से ही लाहौर व सरहिन्द के शासकों की रिपोर्टें सुन और मुग़ल सेना की हार के भयदायक समाचार सुन जला भुना बैठा था। अब जब उसने राजा अजमेरचन्द की वक्ता सुनी तो क्रोधाग्नि में जल कर और ख़ाक स्याह हो गया। इस सब उपद्रव को सदैव के लिये रोकने के विचार से उसने तुरन्त ही कोई दस हज़ार सेना अमीरख़ाँ, नजाबतख़ाँ, सैयदख़ाँ, हैबतख़ाँ, रमज़ानख़ाँ, दीनाबेगख़ाँ आदि फ़ौजदारों की ताबे में भेजने का प्रबन्ध कर दिया और सरहिंद देश के नवाब को आज्ञा कर भेजी कि अपनी फौज साथ भेजे और बाग़ी गोविन्द सिंह को पकड़ कर फ़ौरन शाही दरबार में हाज़िर करे।

उधर गुरुजी को भी पता लग गया और उनकी आज्ञा कर भेजने पर सारे देश में से सिक्ख सूरमा आने शुरू हो गये। बड़े बड़े सिक्ख चौधरियों ने सवार और लड़ाई के सामान भेजे। इस तरह से कोई दस हज़ार के लगभग सेना आनन्दपुर में जमा हो गई। उधर शाही सेना के साथ सरहिन्द की सेना मिली और ऊपर के रास्ते पहाड़ी सेना भी जा मिली। इस कुल वैरी सेना का अन्दाज़ उस समय का सवा लाख का था।

युद्ध छिड़ा। सैदबेग ने बड़ी बहादुरी करके राजा हरीचंद को मार लिया परन्तु दूसरे दिन अमीरख़ाँ को ज़ख़्मी कर आप भी शहीद हो गया। इसी तरह कितने समय तक भयंकर युद्ध छिड़ा रहा और सिक्खों का पाँसा ऊपर रहता रहा और तुर्क दल की भारी हानि होती रही।

तुर्कों के दल का शिरोमणि जत्थेदार सैदख़ाँ गुरुजी की

रूहानियत के बड़े क़ब्से सुन चुका था और उसे आश्चर्य हो रहा था कि गुरुजी यदि साहिबे कशफ़ हैं तो युद्ध क्यों कर रहे हैं? उसने गुरुजी को निशाना बना गोली चलाई परन्तु निशाना चूक गया। उसका निशाना पहले कभी नहीं चूकता था, इस समय क्यों चूक गया? गुरुजी के तेजसे उसकी आँखें चकाचौंध हो गई थीं। उसने दूसरी मरतबा बड़ी होश्यारी से फिर गोली चलाई पर यह भी कारी न हुई। तब तो उसका दिल दहल गया और दिमाग़ चक्कर खाने लगा। कहीं सचमुच ही साहिबे कशफ़ न हों। मन ही मन में विचार करने लगा कि अगर गुरुजी सच्चे गुरु हैं तो मुझे यहाँ आकर दर्शन दें। ऐसे ही विचारों में उसको दर्शन की तीव्र इच्छा पैदा होती है और वह दुआ करने लगा—

अन्तर्यामी पीरन पीर। उर की लखहिं प्रेम की धीर॥
तौ अब तेज तुरंग कुदावहिं। कलगी झूलत रूप दिखावहिं॥
अब उत्कण्ठा लख चित मेरी। एक बार इत पावहिं फेरी॥

सुबह हो आई है। दोनों दल युद्ध की तैयारी में हैं पर गुरुजी इस समय किसी और रंग में हैं—

सह न सके विरह प्रेमी केरा। बड़ी प्रात ते उठ बिन देरा॥
हे तैयार तबही कट कसी। सदा प्रेम के जो हैं बसी॥
धनुष बान निज पान सँभारा। भए तुरंगम पर असवारा॥
करत शीघ्रता हय चप लाए। तत छिन खान अग्रं को आए॥

गुरुजी के तेज का वैरी दल पर इतना प्रभाव पड़ा कि गुरुजी के सामने से वह इस तरह एक दम हटते गये कि गुरुजी को सैदख़ाँ के डेरे तक रास्ता बिलकुल साफ़ मिल गया।

गुरुजी वहाँ पहुँचे तो सैद्ख़ाँ अपनी तलवार की जाँच कर रहा था। गुरुजी बोले "ख़ाँन साहब! जिसका आप सर काटना चाहते हैं वह मैं अब यहाँ आपके सामने मौजूद हूँ। अगर आपकी तलवार में ताक़त है तो उठाइये और मेरे ऊपर वार कीजिये।"

सैद्ख़ाँ जिस दर्शन को ललचाता था वह सन्मुख देख रंग बदला और लड़ना बड़ना सब भूल गया। उसके नयन भर आये, झुक कर सलाम किया और बेबस होकर बोल उठा—

खुदा आयद खुदा आयद, कि मे आयद खुदा बंदह।
हक़ीक़त दर मिजाज़ आयद, कि मुर्दारा कुनद ज़िंदह॥

यह कहते हुए घोड़े की रक़ाब में गुरुजी के चरण कमलों पर अपने सीस को टिका दिया। तब गुरुजी ने महर की—

कृपा दृष्टि ते धर सिर हाथा। तत छिन सेवक कीन सनाथा।।

अंग अंग में और रोम रोम में "नाम" का प्रवेश हो गया। वैराग्य ने आ डेरे जमाये और सैद्ख़ाँ उसी क्षण सब कुछ त्याग कर वनों को पधार गया।

यह वार्ता ठीक शत्रु दल के बीचो बीच में हुई। कोई ऐसा प्रभाव छाया था कि वह सब तीर गोली चलाना भूल गये। जब सैद्ख़ाँ की रूह का कल्याण होगया और वह सब को छोड़ कर चला गया तब तुर्कों को होश आया कि वह गुरू जिसको हम पकड़ना चाहते हैं इस समय हमारे दल में आया हुआ है और हमारे सरदार पर न मालूम क्या जादू किया है कि वह सेना को बे सरदार छोड़ कर चला गया है। गुरुजी ने अपने घोड़े को एड़ लगाई और अपने दल की ओर चले तो

सब तुर्क सेना आपके ऊपर किच किचा कर टूट पड़ी पर गुरुजी, वीरों के वीर, शत्रुदल में से साफ़ बचकर निकल आये और अपने दल में आ पहुँचे। पश्चात् घोर संग्राम होता रहा।

एक दिन कुछ सिक्खों ने गुरुजी से आकर शिकायत की कि जिन शत्रुओं क हम रण में मार कर पृथवी पर लिटाते हैं हमारे भाई कन्हैया जी उनको भी जाकर पानी पिला पिला कर फिर हमसे लड़ने के लिये तैयार कर देते हैं। गुरुजी ने भाई कन्हैया को बुला कर पूछा तब भाईजी ने कहा कि मुझे तो तुर्क और अतुर्क कोई नहीं दीख पड़ता, मुझे तो सब में और सब जगह एक आपकी ही ज्योति नज़र पड़ती है। मैं जहाँ तहाँ उसी को देखता हूँ और उसी को पानी पिलाता हूँ—

> कियो है प्रकाश जोति चमकत है चहूँ ओर,
> दीसै रवि चन्द हूँ में तेरी सब जोति है।
> जेते हैं जीव जन्त करनहार तुही है,
> पूरि रह्यो सर्व ही में आपि ओत पोत है॥
> सेवा जाकी अनूप सुन्दर सरूप रूप,
> चरन कमल निरखे ते जन की गति होत है।
> बिनसे हैं सबै पाप निस दिन प्रभु एक जाप,
> चहूँ ओर आप आप आप ही दिसोत है॥

गुरुजी ने हँस कर भाई कन्हैया जी को गले लगाया और एक डिबिया उनके हाथ दी और कहा कि पानी के साथ साथ जहाँ जहाँ ज़रूरत पड़े यह मरहम भी लगाते जाना!

मुग़ल सेना बिना अपने सरदार के अधिक देर तक न ठहर सकी। तुरन्त ही उनके पैर उखड़ गये और चारों ओर "वाह

गुरू जी की फ़तह" के आकाश भेदी नाद से आकाश गुंजायमान हो उठा। गुरुजी की पूरी जीत हुई। मुग़ल सेना को ऐसी लज्जा जनक हार पहले कभी नहीं खानी पड़ी थी। गुरुजी का कट्टर वैरी और इस झगड़े में सव उत्पात की जड़ राजा अजमेर चन्द भी सख़्त घायल हुआ और इसका दीवान भी मारा गया।

शहंशाह औरंगज़ेब को जब इस हार का संवाद पहुँचा तो युगपत् लज्जा और क्रोध से उसके सर में चक्कर आगया। तत्काल ही उसने लाहौर और काश्मीर के सूबों के नाम शाही फ़रमान भेजे कि जल्दी ही आनन्दपुर पर चढ़ाई करो और बाग़ी गोविन्दसिंह का सिर काट कर हाज़िर करो। अब क्या था? लाहौर और काश्मीर के सूबों की संयुक्त सेना भी कोई पचास हज़ार के लग भग और आ घिरी।

गुरुजी इसके लिये तैयार ही थे। यद्यपि पहाड़ी राजाओं की और मुग़लों की संयुक्त सेना गुरुजी की सेना से कई गुना अधिक थी तो भी उनका साहस न पड़ता था कि सिक्खों के सामने होकर युद्ध करें। उन्होंने कईवार अकस्मात आक्रमण किये परन्तु सिक्ख उनपर सिंह समान टूट पड़ते और उन्हें मार भगाते थे।

एक दिन जब कि संयुक्त सेना आनन्दपुर के बहुत समीप आगई थी तो सरदार शेरसिंह ने सरदार नाहर सिंह से सलाह कर कोई आधी रात को ही कुछ सिक्ख साथ ले वैरियों पर आक्रमण कर दिया। थोड़ी देर में ही शत्रुओं को गाजर मूली की तरह काटना आरम्भ कर दिया। ख़ून की नदियाँ वह

निकलीं। पहाड़ी और मुग़लों की संयुक्त सेना घबरा उठी। अँधेरे में शत्रु-मित्र की कुछ पहचान न रही। पहाड़ी और मुग़ल आपस में ही लड़ मरे। इस कोलाहल में मुग़लों का सरदार दिलग़ीरखाँ भी मारा गया और मुग़लों ने भागकर जान बचाई।

सरहिन्द के सूबेदार ने जब यह सब देखा तो राजा अजमेर चन्द को बहुत कोसा और उसे अकेले ही सिक्खों की कृपाण भेंट होने के लिये छोड़ जाने की धमकी दी। राजा अजमेर चन्द और भूपचन्द ने उसकी बहुत ख़ुशामद की और धन आदि का लालच दे उसे युद्ध जारी रखने पर राज़ी कर लिया।

सुबह होते ही संयुक्त सेना बड़ी धूम धाम से आनन्दपुर पर चढ़ आई। गुरुजी एक ऊँचे बुर्ज पर से शत्रुओं की फ़ौज का जमाव देख रहे थे। जब शत्रुओं का दल बढ़ता हुआ गोली की मार के बीच में आ पहुँचा तब गुरुजी ने एकदम पलीता दाग़ देने की आज्ञा दी। एक बार ही "विजयघोश," "बाघन" आदि सत्तर तोपों पर पलीता पड़ गया और बड़े भारी प्रकाश के साथ पृथ्वी को दहला देने वाली आवाज़ हुई। आगे बढ़ते हुए वैरी दल का एक भाग न मालूम उड़कर कहाँ चला गया। अब तो मुग़ल सरदारों की आँखें खुलीं और उन्होंने भी तोपखाना आगे लाने की आज्ञा दी। थोड़ी देर में ही आकाश और पृथ्वी धुएँ और बारूद के गंध से परिपूर्ण हो गये और कुछ भी दिखाई न पड़ता था।

इसी प्रकार कई दिवस तक लड़ाई का बाज़ार गरम रहा। एक दिन जब कि सूबा सरहिन्द के डेरे में मुगल सरदार

और पहाड़ी राजा लोग बैठे चौपड़ खेल रहे थे तो पास पलंग के एक पाये में एक तीर आकर लगा। सूबा सरहिन्द ने स्वर्णमुखी तीर को पहचाना और दंग होकर सब को कह उठा "करामत! करामत!! यह तीर तो गुरु गोविन्द सिंह का है पर गुरु गोविन्द सिंह इस वक्त हम से कोई तीन कोस की दूरी से कम नहीं है। उसका यह तीर इतनी दूरी पर मार करना करामत नहीं तो क्या?"

अजमेर चन्द—क्या जाने हुज़ूर, गुरु गोविन्द सिंह में किसी दैवी शक्ति या कोई अन्य करामात का बल अवश्य प्रतीत होता है। यही कारण है कि इतने थोड़े से सिक्ख इतनी भारी बादशाही सेना पर भी प्रबल हो जाते हैं और किसी प्रकार से हराए नहीं जा पाते।

भूप चन्द—हाँ हुज़ूर! कुछ समझ में नहीं आता कि गुरु गोविन्द सिंह क्या बला है और इसकी शिक्षा और ख़ालसा मंत्र में क्या जादू है! जिसे यह एक बार अपनी तलवार से छुआ कर अमृत पिला देता है, वह मानों वीरता का अवतार बन जाता है। उसे मरने का तो बिलकुल भय ही नहीं रहता और मारने के लिये सब से बढ़ चढ़ कर निकलता है।

यह बात चीत अभी जारी ही थी कि पलंग के दूसरे पाये में एक और तीर आकर लगा जिसके साथ एक पत्र भी बँधा था। पत्र खोल कर पढ़ा तो लिखा हुआ था—"यह करामात नहीं परन्तु कमाल है।"

सारे मुग़ल सरदार, और पहाड़ी राजा हैरान-परेशान गये। सब ने यही कहा कि गुरु जी का लक्ष्य बड़ा सच्चा

है। यदि वह चाहते तो यह तीर जो उन्हों ने पलंग के पायों पर चलाये हैं, हम में से किसी की छाती पर भी चला सकते थे। पर नहीं वह सच्चे वीर हैं, इसी लिये उन्हों ने ऐसा करना ठीक नहीं समझा। यद्यपि सब ने ऐसा सोचा तो भी सारे भय भीत हुए तुरन्त उठ कर एक सुरक्षित स्थान पर चले गये।

कई दिवस तक घोर युद्ध होता रहा। एक दिन मुगलों की सेना बड़ी लापरवाही से लड़ रही थी। साहब अजीत सिंह जी उसी समय अपने सिंहों को साथ ले उन पर ऐसे जा टूटे कि लड़ना तो दूर रहा उनसे ठीक तरह से भागते भी न बन पड़ा। सारी पहाड़ी और मुग़ल सेना तित्र वित्र हो गई और लड़ाई का मैदान सिक्खों के हाथ लगा। यह दशा देख सरहिन्द और लाहौर के नवाब दोनों ने औरंगज़ेब को सारा समाचार कहला भेजा और साथ ही अपनी राय दी कि गुरु गोविन्द सिंह की सेना बड़ी कट्टर और बहादुर है, इस लिये हम केवल अपनी सेना से ही, जिसमें से कई हज़ार के लग भग सिपाही मारे जा चुके हैं और घायल हो चुके हैं, इन्हें हरा नहीं सकते।

यह समाचार पा औरंगज़ेब के क्रोध का कोई ठिकाना न था। परन्तु उसके क़ाज़ी ने समझाया कि युद्ध के बिना कोई और उपाय ऐसा सोचना चाहिये जिससे कि गुरु गोविन्द सिंह यहाँ आपके दरबार „में आ जायँ और फिर यदि वह आपकी ओर हो जायँ तो उनसे बहुत अच्छी सहायता मिल सकती है। औरंगज़ेब ने तुरन्त गुरुजी को पत्र लिख भेजा कि "आप में हम में कोई मत भेद

नहीं है। आप मेरे दरबार में आइये। आपका वैसा ही सम्मान किया जायगा जैसा कि बादशाह लोग साधुओं फ़क़ीरों का करते हैं। आप अवश्य आइये। यदि आप न आयेंगे तो मैं बड़ा क्रुद्ध हूँगा और फिर मुझे स्वयं आना पड़ेगा।"

गुरु जी ने इस पत्र का उत्तर लिखवा भेजा कि जब तक शहंशाह अपने ज़ुल्म के राज्य का त्याग नहीं करता और हिन्दुओं पर अत्याचार करना बन्द नहीं करता तब तक गुरु गोविन्द सिंह उसके दरबार में कदापि नहीं आ सकता।

यह उत्तर पा औरंगज़ेब बड़ा चकित हुआ। क्रोध की जगह अब उसको चिन्ता ने आ घेरा। बहुत कुछ सोच विचार के पश्चात् उसने पंजाब के सारे सूबों के नवाबों और सूबेदारों के नाम शाही फ़रमान लिख भेजे कि सब लोग मिलकर एकबार ही आनन्दपुर पर चढ़ाई करदो। अबके उसके क़िलों को बिना तहस नहस किये और गुरु गोविन्द सिंह को बिना मारे या पकड़े यदि पीछे लौटे तो सख़्त सज़ा दी जायगी। यह हुक्म पा सारे सूबों के हाकिम पहाड़ी राजाओं समेत चैत संवत् १७६१ विक्रमी में आनन्दपुर पर चढ़ आये और अगणित पहाड़ी और मुग़ल सेना बादलों की मानिन्द आनन्दपुर पर उमड़आई।

विचित्र दृश्य है। समुद्र रूप शत्रुओं की सेना के बीच में आनन्दपुर के द्वीप-रूप क़िले शोभायमान हैं। मुग़ल और पहाड़ी सेना मानों भीषण समुद्रवत् आनन्दपुर को डुबाने चली आ रही है। एक धर्म स्थान और धर्म-नेता के ध्वंस करने के लिये इतनी धूमधाम से चढ़ाई पहले कभी नहीं

हुई थी। इधर गुरुजी ने यह सब दृश्य देखा। कई लाख की सेना देख किसी प्रकार से चिन्तित नहीं हुए। उसी समय उन्हों ने अपने सारे सिक्खों को वीर रस पूरित उपदेशों से उत्साहित कर उनका साहस बढ़ाया और उन्हें युद्ध के लिये सन्नद्ध किया। शत्रुओं ने आते ही गोले बरसाने आरम्भ कर दिये, जो कि आनन्दपुर के किलों पर ओलों की मानिन्द पड़ने लगे। इधर गुरुजी की ओर से भी इसका यथोपयुक्त जवाब दिया जाने लगा परन्तु उन्होंने मुग़लों की तरह फुकन्त जारी न की। जब अच्छी तरह से यह जाँच लिया जाता था कि इस लक्ष्य से वैरी दल की भारी हानि होगी तभी तोप दागी जाती थी और इससे वैरियों में एक भारी हल चल मच जाती थी। गोले बरसाते हुए जब शत्रुओं का दल किलों के बहुत पास आ पहुँचता तो किलों पर से एक बारगी ही वह गोले तीरों की वर्षा होती कि फिर सारे दल को हज़ारों कदम पीछे हटना पडता था और सो भी एक भारी हानि के साथ। कभी गुरुजी के न चूकने वाले तीरों से बड़े बड़े मुग़ल सरदार अकस्मात् घोड़े की पीठ पर से गिर कर सीधे यमलोक का मार्ग लेते थे मानों आकाश से वज्रपात हुआ हो। कुछ पता ही नहीं लगता था कि कहाँ से तीर सनसनाता हुआ आया और अपना काम तमाम कर शान्त हुआ। इसी प्रकार से कई सप्ताह तक भारी युद्ध जारी रहा और शत्रुओं की बड़ी भारी हानि हुई। कई हज़ार की गिनती में बादशाही और पहाड़ी सेना मारी गई, कई हज़ार ही घायल हुई और शेष बहुत थकित हो गई। इतनी हानि होती देख शत्रु लड़ना छोड़ आनन्दपुर के चारों ओर केवल घेरा डाल ही बैठ गए

और युद्ध में सारी हानि होने का समाचार औरंगज़ेब को कहला भेजा। औरंगज़ेब ने सूचना पाते ही कई लाख की सेना और भेज दी और घेरा बड़ी सख़्ती से जारी रखने की आज्ञा दे भेजी।

बस अब क्या था। जिधर देखिये आनन्दपुर के चारों ओर कई मीलों तक पहाड़ी और मुग़ल सेना का पड़ाव जमा हुआ था। घेरा ऐसे घने रूप से डाला गया कि एक चिउँटी निकलने के लिये भी उन्होंने कोई मार्ग नहीं छोड़ा।

वज़ीरखाँ और ज़बरदस्तखाँ ने जोकि इस समय शाही सेना की कमान में थे गुरुजी को अपने दूतके हाथ पत्र लिखकर भेजा कि यह सेना राजाओं और राणाओं की नहीं है, यह शहंशाह औरंगज़ेब की सेना है, इस लिये आपको चाहिये कि इसका अदब करें और सच्चा दीन इस्लाम कबूल करें। यह पत्र देते समय दूत ने अपनी ओर से गुरुजी को बड़ी शेख़ी से कहा कि महाराज! आप हम लोगों का कहना मानिये, आपको इतनी भारी सेना से लड़ना उचित नहीं है क्योंकि यह तो आप देख ही सकते हैं कि आपकी अब जीत नहीं हो सकती। दूत अभी और कहना ही चाहता था कि गुरुके सुकुमार साहब अजीतसिंह ने अपनी तलवार नंगी कर उसके सामने खड़े हो उसे रोका और कहा "ख़बरदार! गर कोई और बात अपने मुंह से निकाली तो देख मैं तेरा सर तेरे बदन से अलग कर दूँगा और ऐसे गुस्ताख़ अलफ़ाज़ के बदले तेरा बदन अभी टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा।"

साहब अजीतसिंह जी का यह कहना क्या था कि दूत

जल भुन कर ख़ाक होगया। उसने लौट अपने मालिक नवाबों को जब इस सबकी सूचना दी तो नवाब लोग अब और चाल सोचने लगे।

इधर कई सप्ताह से आनन्दपुर में घिरे हुए सिक्खों का भी हाल सुनिये। इनकी दशा अति हृदय विदारक हो गई थी। खाने पीने का सामान सब चुक गया था। यहाँ तक कि अब वह वृक्षों की छाल पत्तों पर गुज़ारा कर रहे थे। गुरुजी का प्रसादी हाथी और कई घोड़े भूख के मारे मर चुके थे और कई वीर सिक्ख भी भूखे मरने लगे। सैंकड़ों वीर जो घायल पड़े थे उनकी सेवा-शुश्रूषा और पथ्य-पानी का भी अब कोई इन्तज़ाम न रहा। यह सब अवस्था देख सिक्ख लोग घबराने लगे और गुरुजी से आनन्दपुर छोड़ने को कहने लगे।

शत्रुओं को गुरुजी की सेना में इस बेचैनी और घबराहट का पता लग चुका था इस लिये उन्हों ने इसका लाभ उठाने के लिये तभी गुरुजी को एक पत्र लिख भेजा और मुसलमानों की ओर से क़ुरान का हलफ़ उठा और हिन्दुओं की ओर से गौ माता की कसम खा यह कहला भेजा कि यदि आप चुपचाप निरस्त्र हो आनन्दपुर छोड़कर चले जायँ तो हम लोग इसका मुहसरा छोड़ देंगे और आपको बे रोक टोक जाने देंगे। इस पत्र को पा अब तो सारे सिक्ख एक ज़बान हो गुरुजी को आनन्दपुर छोड़ने के लिये कहने लगे। परन्तु गुरु जी शत्रुओं की इस चाल को अच्छी तरह समझते थे कि वह सिक्खों पर आनन्दपुर से निकलते समय आक्रमण कर विजय

प्राप्त करना चाहते हैं। इसी लिये उन्होंने सबको शांति पूर्वक समझाया कि खालसा जी! आप घबराइये नहीं। शत्रुओं की बात पर विश्वास कर अपना नाश न करिये। उनके दिल में, छल और कपट है और वह आप पर धोखे से विजय प्राप्त करना चाहते हैं। अब वह भी सारे बहुत थक गये हैं। आप केवल धैर्य्य रखिये, थोड़े दिन बाद वह अपने आप मुहासरा छोड़ कर चले जाने वाले हैं। इस समय निरस्त्र हो बाहर जाना तथा शत्रुओं की बात पर विश्वास करना नीति के सर्वथा प्रतिकूल है

परन्तु भूख और प्यास के सताए हुये सिक्खों को गुरुजीका यह उपदेश इस समय अच्छा न मालूम दिया। उन्हों ने जब देखाकि गुरुजी हमारी बात स्वीकार करने के लिये तैय्यार नहीं हैं तब उन्होंने गुरुजी की माता के पास जा पुकार की कि वह गुरुजी को आनन्दपुर छोड़ने के लिये राज़ी करें। माता जी ने गुरुजी को बड़ा समझाया परन्तु गुरुजी यही कहते रहे कि इस समय बाहर जाने से हम लोगों की अवश्य मृत्यु है। आख़िर जब माता जी और सिक्खों ने बड़ा ज़ोर दिया तब गुरुजी ने शत्रुओं के दूतों से कहा कि "अच्छा, पहले हमको अपना सामान बाहर निकाल लेने दीजिये पीछे हम सब लोग भी आनन्दपुर को छोड़ बाहर चले जायँगे"। दूतों ने गुरुजी की बात स्वीकार करली और हर प्रकार से भरोसा दिलाया कि आप बिना किसी डर या ख़तरे के बाहर जाइये। जब दूत चले गए तब गुरुजी ने बड़े बड़े काठ के सन्दूकों में पुराने जूते, लत्ते और कंकड़, पत्थर भरवाकर, बड़े बड़े ताले लगवाकर उन्हें बैलों पर लाद कर बाहर भेज दिया। जब शत्रुओं ने

गुरुजी का माल मता बाहर आता देखा तो उनसे रहा न गया। और अपनी क़समें तोड़ एक बार ही उस सामान पर टूट पड़े और उसे लूट लिया। पर खोलने पर जब लत्ते चीथड़े और रोड़े-कंकड़ ही मिले तो बड़े लज्जित हुए। गुरुजी ने तब अपनी माताजी से और सारे सिक्खों से कहा कि "देखिये! शत्रुओं के दिल में कपट है। यही बात मैंने आपसे कही थी और अब आपने स्वयं भी प्रत्यक्ष रूप में देखली है। आप थोड़ा और धैर्य्य धरिये, श्री अकाल-पुरुष भली करेंगे"। पर सिक्खों ने कहा कि यहाँ भूखे प्यासे सड़ने से तो बाहर लड़कर मरना ही अच्छा है और हम सब सशस्त्र बाहर जायेंगे और लड़ते भिड़ते अपना रास्ता निकाल लेंगे।

इसी ज़िद्द में कई सप्ताह और निकल गये। आख़िर एक पत्र औरंगज़ेब का अपने हाथ का लिखा हुआ गुरुजी के पास पहुँचा जो कि इस प्रकार था* :—

"मैंने कुरान शरीफ़ पर यह हलफ़ उठाया है कि आपको किसी प्रकार का नुक़सान न पहुँचाऊँ, यदि पहुँचाऊँ तो मैं अल्लाह के दर्बार में जगह न पाऊँ। अब आप लड़ाई बन्द कर दीजिये और मेरे पास आइये। अगर आप मेरे पास नहीं आना चाहते तो आप जहाँ कहीं और चाहें वहाँ जा सकते हैं।" यह पत्र देते हुये शाही दूत ने गुरुजी से कहा कि "जो कोई भी शहंशाह औरंगज़ेब के दर्बार में जाता है वही आपकी बड़ी प्रशंसा करता है इस लिये शहंशाह को यह विश्वास हो गया है कि आपसे मुलाक़ात करने में उन्हें बड़ी प्रसन्नता

* मैकौलिफ़, जिल्द ५, पृष्ठ १७९

होगी। उन्हों ने अल्लाह को साक्षी जान मुहम्मद साहब की क़सम खाई है कि वह आपको किसी प्रकार से हानि न पहुँचायेंगे। पहाड़ी राजाओं ने भी गौ माता की क़सम खाई है कि वह आपको बिना किसी प्रकार का नुक़सान पहुँचाये यहाँ से जाने देंगे। पीछे जो कुछ भी हो चुका है उसे अब भुला दीजिये। आपके बैलों पर जो आक्रमण किया था वह किसी राजा लोगों की ओर से न था। आक्रमण करने वालों को यथोपयुक्त दण्ड दिया जा चुका है और इस उपद्रव के मुखिये इस समय कैद में हैं। ऐ सच्चे पातशाह! अब आपको हानि पहुँचाने की किसी को हिम्मत नहीं हो सकती। अब आप बेखटके बाहर चलिये और मेरे साथ शहंशाह के दर्बार में तशरीफ़ ले चलिये। इसके बाद आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।"

शाही दूत को गुरु जी ने जवाब दिया कि "आपकी क़समों पर अब मुझे बिल्कुल भी विश्वास नहीं रहा है, इस लिये मैं आनन्दपुर छोड़ने को तैय्यार नहीं हूँ।" परन्तु सिक्ख सारे भूख प्यास के मारे बिल्कुल तंग हो चुके थे, उन्हों ने गुरु जी को बड़ा ज़ोर दिया कि किले छोड़ दिये जायँ। गुरु जी ने सब को समझाया—"प्यारे खालसा जी! जो जो इस समय बाहर जायेंगे वे अवश्य मारे जायेंगे। आप कोई तीन सप्ताह के लिये और ठहरे रहिये फिर सब कठिनाइयें दूर हो जायेंगी।" सिक्ख इतने समय तक ठहरने के लिये तैयार न थे, तब गुरुजी ने कहा—"अच्छा, केवल पाँच दिन और धैर्य्य धरो, इतने समय में श्री अकाल-पुरुष अवश्य इस कष्ट को दूर करेंगे।" पर सिक्खों ने एक न मानी और बाहर निकलने के लिये ही ज़िद्द करने लगे और शाही दूत को

माता जी के पास ले गये। गुरु जी जब अपनी माता जी के समझाने पर भी अपनी बात पर स्थिर रहे, तब माता जी ने उनसे कहा—"देखो बेटा! मैं तुम्हारी माँ हूँ। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि तुम अब आनन्दपुर छोड़ो और अपने बच्चों की और सिक्खों की जान बचाओ। यहाँ उन्हें इस तरह भूखे प्यासे न मरने दो।" माता जी की यह आज्ञा सुन गुरु जी ने आने वाली हानि का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया और सिक्खों से कहा—"अच्छा यदि, आप आनन्दपुर छोड़कर मेरी आज्ञा के विरुद्ध बाहर जाना चाहते हैं तो फिर मेरा आपका गुरु-सिक्ख का सम्बन्ध कैसा? आइये, जिसे बाहर जाना हो वह इस प्रतिज्ञापत्र पर दस्तख़त करता जाय कि आज से हमारा आपका गुरु-सिक्ख का नाता टूट गया।"

बेचारे भूख प्यास से आतुर सिक्खों ने यह स्वीकार कर लिया और कई हज़ार की गिनती में इस "बेदावे" पर दस्तख़त कर दिये कि आज से न हम आपके सिक्ख और न आप हमारे गुरु। गुरु जी के पक्ष के केवल कोई डेढ़ सौ सिक्ख ही निकले जिन्हों ने कि "बेदावे" पर दस्तख़त न किये और जिन्हों ने कि गुरु जी के साथ रह कर ही मरना स्वीकार किया। ऐसी हालत में जब कि बहु सम्मति आनन्द-पुर छोड़ने के पक्ष में निकली और माता जी की आज्ञा भी यही थी, तो गुरु जी ने आने वाली हानि का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी माता जी की आज्ञा और ख़ालसा जी की बहु सम्मति के सामने अपना सर झुका दिया और आनन्दपुर छोड़ने के लिये तैयारी की आज्ञा दे दी।

जब "बेदावा" लिखने वाले सारे सिक्ख चले गए और केवल गुरुजी के पक्ष के लग भग डेढ़सौ सिक्ख ही रह गए तब जो जो माल अपने साथ नहीं लिया जा सकता था और जो गुरुजी शत्रुओं के हाथ भी नहीं पड़ने देना चाहते थे वह सब कुछ तो जला दिया गया और कुछ नदी में बहा दिया गया। जब सब तैयारी हो चुकी तो सं० १७६१ वि० ७ पौष बुधवार को आधी रात के समय गुरुजी अपनी माता, स्त्री, पुत्रों और सिक्खों के साथ किले के बाहर निकले। अपने इन थोड़े से सिक्खों का गुरु जी ने एक सूचीव्यूह रचा जिसके मुख पर गुरु जी स्वयं आप थे और पीछे के रक्षक जत्थे की कमान साहब अजीतसिंह के सुपुर्द की। अँधेरी रात में शत्रुओं ने गुरु जी को इस प्रकार जाते देखा। बस फिर क्या था। अभी थोड़ी दूर भी न जाने पाये थे कि पहाड़ी हिन्दू राजाओं और मुग़लों के टिड्डी दल ने अपनी सारी क़समें तोड़ एक बारगी धावा बोल दिया। देश द्रोही और धर्म विक्रेताओं के लिये भला कहाँ की प्रतिज्ञा और कहाँ की क़सम। वह तो सब इस अवसर की ताड़ में ही थे कि गुरुजी क़िले के बाहर मिलें और हम उनको पकड़ लें। सिक्ख लोग महीनों की भूख प्यास के मारे बड़ी विस्मित दशा में थे और गिनती में भी यह मुट्ठी भर ही थे और इनके पीछे कई लाख की सेना दौड़ी आ रही है। कितने समय तक गुरु जी के अव्यर्थ शर-संधानों ने इस टिड्डी दल को दूर ही रक्खा परन्तु वह गिनती भी कुछ अर्थ रखती है। थोड़े समय में ही शत्रु इतने निकट आगए कि सिक्खों को अपनी कृपाण निकालनी पड़ी। यद्यपि सिक्ख भूख प्यास के सताये हुए थे तो भी उन्होंने एक बारगी वह

हाथ दिखलाये कि गिनती में इतने थोड़े होते हुए भी कई लाख की सेना का चढ़ाव कुछ समय के लिये रोक दिया। इस प्रकार लड़ते, शत्रुओं को रोकते गुरु जी सरसा नदी के तट पर आ पहुँचे। यहाँ सरसा नदी भी अपने पूरे जोवन में खूब चढी हुई थी। नदी पार करते समय कई सिक्ख, कितना माल असबाब और कई मन बहु मूल्य पुस्तक-भंडार डूब कर नष्ट हो गए। इस नष्ट हुए पुस्तक-भण्डार में अनेकों ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रन्थ और अरबी, फ़ारसी और संस्कृत ग्रन्थों के भाषानुवाद थे जो कि गुरु जी ने स्वयं और अपने दरबारी कवियों की सहायता से कई सालों की मेहनत से तैयार किये थे।

नदी पार कर गुरु जी ने अपने परिवार और बचे हुए सिक्खों के साथ रोपड़ का रुख़ किया। परन्तु रोपड़ पहुँचना था कि वहाँ पठानों का एक बड़ा दस्ता उनपर अकस्मात आ टूटा। इससे ऐसी गड़बड़ी मचगई कि सब एक दूसरे से बिछुड़ गए। गुरु जी की माता और उनके दो छोटे साहज़ादे जुझारसिंह और फ़तेसिंह अपने रसोइये गंगू ब्राह्मण के साथ खेड़ी ग्राम की ओर निकल गए। माता सुन्दरी और माता साहब कुँअर को कुछ सिक्ख एक डोली में बिठाकर बड़ी फुर्ती से बचाकर एक दूसरी ओर लेगए और बड़ी कठिनाइयों का सामना कर आख़िर देहली पहुँचाया। और गुरु जी स्वयं अपने दो बड़े सुपुत्रों के साथ और केवल चालीस बचे हुए सिक्खों के साथ चमकौर ग्राम में जा निकले।

१९–चालीस का दस लाख से युद्ध ।

मकौर इस समय एक छोटा सा ग्राम था। इसके चारों ओर न किसी प्रकार की फ़सील और न स्वरक्षा के लिये कोई आड़ ही थी। गुरु जी ने वहाँ के चौधरी को बुलाकर विश्राम के लिये जगह माँगी। चौधरी की हवेली वैसे तो कच्ची थी परन्तु एक अच्छे स्थान पर बनी हुई थी। जब गुरु जी ने यह हवेली माँगी तो चौधरी मुग़लों से डरता कई बहाने बनाने लगा। इतने में जब चौधरी के भाई ग़रीबू को इसका पता चला तो उसने आकर गुरु जी से विनती की कि "महाराज! इस हवेली में आधा हिस्सा मेरा है, आप बड़ी खुशी से चलिये और विश्राम करिये।"

गुरु जी अपने दोनों सुपुत्रों और चालीस सिक्खों के साथ उस हवेली में चले गए और प्रातःकाल के समय से पहिले ही उसकी मोरचे बन्दी करली। मुग़ल और पहाड़ी सेना गुरु जी का पीछा करती चली आरही थी परन्तु उन्हें यह पता न था कि गुरु जी चमकौर में हैं। इसके अतिरिक्त देहली से एक और बड़ी भारी नवीन सेना मुग़लों की औरंगज़ेब की आज्ञा अनुसार गुरुजी के विरुद्ध आरही थी। इस सेना को एक गुप्तचर ने आकर पता दिया कि गुरु जी चमकौर की हवेली में हैं। तब यह सेना चमकौर को ओर हो ली और उसे चारों ओर से घेर लिया। उधर से आनन्दपुर से आरही शत्रु सेना भी वहीं आ निकली और कई कोसों तक चमकौर के चारों ओर घेरा पड़ गया।

चमकौर का युद्ध जगत के इतिहास में अद्वितीय है। संसार के सारे इतिहासों को खोज डालिये आपको ऐसा उदाहरण कहीं न मिलेगा कि महीनों भूख प्यास के सताए हुए केवल चालीस मनुष्यों ने लाखों की सेना का इस प्रकार मुक़ाबिला किया हो और निश्चित मृत्यु को जानते हुए भी दो-दो चार-चार या अकेले ही हाथ में कृपाण ले रणक्षेत्र में निकले हों।

रात व्यतीत होजाने पर सुबह तुर्कों का एक दस्ता हवेली पर हमला करने के लिये आगे आया। दर्वाज़े पर हमला करके हवेली का लेना चाहा पर अन्दर से सिक्खों ने इनको गोली और तीरों का शिकार बना लिया। इसी प्रकार कई दस्ते आये परन्तु सब घायल होकर ज़मीन पर लेटते गये। इस तरह जब शत्रु दल का कितना ही नुक़सान होगया तब पहाड़ी राजे और सेनापति ख़्वाजा मरदूद और अन्य नवाब सलाह करने लगे। पहले तो उनका ख़्याल था कि हवेली के अन्दर कोई पाँच दस ही योद्धा होंगे। कइयों ने कहा कि रात को सिक्खों की और सेना आगई थी और आधी रात के बाद हवेली के अन्दर शब्द गायन करती हुई गई थी। ख़िज़रख़ाँ ने कहा—"भाई सरदारो! यह जो हमारा नुक़सान हो रहा है इसमें कोई अचरज नहीं है। गुरु एक कमाल का योद्धा है और उसको साहिबे कशफ़ भी कहते हैं। आनन्दपुर में हमने क़रीब साल भर तक इसे घेरे रक्खा पर इसने हार नहीं मानी। फिर निकला तो हमारी क़समों और सौगन्धों पर भरोसा करके। हमने यह नीति सोच कि वैरी को दग़ों से भी मार लेना चाहिये अपने कौल तोड़े हैं पर वह देखो ख़ौफ़ नहीं खाता। वह हवेली

में बैठा देख रहा है कि टिड्डी दल सेना घेरे खड़ी है, कोसों में डेरा पड़ा है परन्तु वह मर्दों का मर्द उसी तरह डटा खड़ा है। फिर उसकी धार्मिक आन, उसकी वीरता और लड़ाई शूर-वीरता का उसूल देखो। कोई बात दाउ फ़रेब की नहीं करता। इस समय अगर वह चाहे हवेली में से दूर दूर तक तीर चलाकर हम सबको छेदन कर सकता है। परन्तु वह देखो उसके तीर उसी दस्ते पर चलते हैं जिसकी ओर से हवेली पर हमला होता है। यह है असल वीरता। बाकी रही हार जीत की बात। जीत हमारी ही है। हमारी सेना की कोई गिनती ही नहीं है। वह थोड़े ही हैं। हवेली छोटी सी है। कितने दिन निकालेंगे। रसद अन्दर थोड़ी है। युद्ध का सामान भी थोड़ा है। हद्द हुई तो चार दिन। इस लिये जल्दी न करो। क़सम तो हारो है परन्तु अब ज़रा गुरु को भी अपनी शूर वीरता के हाथ दिखला लेने दो। उसकी ज़िन्दगी के दिन अब ख़तम हो चुके हैं, एक है या दो, और हमें चाहिये कि हम भी उसी मरदानगी के साथ कुछ करके दिखायें। आख़िर जिनको इस समय निश्चय मौत सामने दीख रही है वह हमारा लिहाज़ करके क्यों लड़ेंगे पर.फिर आफ़रीन है उस आन के कि हमला करने वाले दस्ते के बिना किसी दूसरी जगह इनके तीर गोली या बारूद का धमका भी नहीं पड़ता। तुम भी कुछ करके दिखाओ। आख़िर सूरमा हो।"

इस तरह के विचारों के बाद एक भारी दस्ता और आगे बढ़ा। गुरुजी और सिक्खों ने उन सबको भी मौत के घाट उतारा। इसी प्रकार जो जो दस्ता हमला करने आता

तब तब ही वह घायल हो ज़मीन पर लेट जाता था। अब वैरी दल के चुनीदा सूरमाओं ने देखा कि दिन ढलने को है, नुक़सान हमारा बड़ा भारी हो गया है और अपनी सेना में बे दिली फैल गई है कि बड़े बड़े सूरमा सिपाहियों और छोटे नायकों को भेज भेज तमाशा देख रहे हैं। ऐसी बातें विचार अब ख़्वाजा ख़िज़रख़ाँ आगे आया और गुलेरख़ाँ, नाहरख़ाँ आदि बड़े बड़े सूरमा सरदार भी सेना ले हमला करने को आगे बढ़े। यह हमला बड़ा भयानक और ज़बरदस्त था। इसका कुछ थोड़ा सा वृत्तान्त श्रीगुरुजी ने फ़ारसी में आप लिखा है जिसका उलथा इस प्रकार है—

"बड़ा शोर मचाते नीले कपड़े वाले शत्रु हमला करते हुए आये। वैरी का हरएक सिपाही जो अपने मोर्चों से निकल हमारे पर हमला करने आया वह खून में ग़र्क होकर गिरा। (हे औरंगज़ेब!) तुम्हारी सेना में से जो आदमी अपने ठिकाने से उठ कर हमारे ऊपर हमला आवर नहीं हुआ उसको हमने तीर नहीं मारा और व्वार नहीं किया (भाव यह है कि केवल हमला करने वाले दस्तों पर ही गुरुजी की ओर से युद्ध हुआ। और यह महान वीरता की आन है)। जब नाहरख़ाँ युद्ध करने आया तब उसको मैंने अपने तीर का स्वाद चखा दिया। बड़े बड़े ख़ाँन जो उसके साथ बड़ी शेख़ी मारते हुए आये थे कि यह करेंगे वह करेंगे, मैदान छोड़ कायर बनकर भाग गये। फिर एक और पठान तीर और गोलियाँ बरसाता हुआ तूफ़ान की तरह बढ़ आया। उसने बड़े हमले किये, बड़े घाव खाये, और जब वह मेरे दो सिक्खों को मारने लगा था, ठीक उसी समय वह आप मारा गया।

फिर ख़्वाजा मरदूद आया, पर वह दीवार की आड़ में दुबक गया। अफ़सोस जो कभी सामने आजाता तो लाचार एक तीर मैं उसको भी बख़्श देता। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। तुम्हारी सेना के बड़े वीर मारे गये। मैदान ख़ून से लाल हो गया। मेरे सिक्खों ने बड़ी मरदानगी दिखाई। पर चाहे कितनी ही बहादुरी की, केवल चालीस की भारी शूरवीरता क्या करे जब कि उनपर अगणित ही आ पड़ें। फिर भी जब दिन का दिया छिप गया और रात को रानी निकली तब मेरे करतार ने मुझको रास्ता दिखा दिया और मैं सही सलामत निकल गया। मेरा बाल भी बाँका न हुआ।"—ज़फ़रनामा।

असल में ऊपर बताये वृत्तान्त के समय अब युद्ध की हालत यह होगई थी कि अन्दर लड़ने का सामान, तीर बारूद गोली आदिक, कम होता जाता था इस लिये कुछ सिक्ख हवेली के बाहर निकल शत्रु दल को हवेली के पास आने से रोकते थे—

> केतक सिंह मरे लर बाहर, जाहर जंग दिखाइ उदारे।
> केतक अन्तर वीर निरन्तर, जूझति हैं सर वृन्दन मारे॥
> छोरत गोरी लगै रिपु ओरी, सरीरन फोर जिमी पर डारे।
> हेल को पावति आवत धावत, प्रान गँवावति पुञ्ज जुझारे॥

इस प्रकार घोर संग्राम मच रहा था। तुर्कों की ओर से चुप या शान्ति नहीं होती थी। हमले पर हमला होता था। कितने समय तक कई सिक्ख बाहर लड़ कर शहीद हो चुके थे। अब भाई मुहकम सिंह जी अकेले ही हवेली के बाहर निकल आये और ललकार कर कहा कि "अगर

बहादुरी है तो आओ, एक एक आओ। हाथ देखो और हाथ दिखाओ।" यह ललकार सुन एक मुग़ल आगे बढ़ा। कितनी देर की पटे बाज़ी के बाद मुहकम सिंह की कृपाण ने उसको नीचे गिरा लिया। फिर जो जो सूरमा आया मुहकमसिंह ने उन सबको दो दो टुकड़े कर नीचे गिराया। उसकी पटेबाज़ी को वैरियों ने भी सराहा पर फिर वैरी गुस्सा खाकर कई मिल कर आपड़े। मुहकमसिंह ने अत्र सेला सँभाला और वैरियों को पिरो पिरो ऐसे फेंके गया जैसे कि नेज़े की बाज़ी खेली जाती है। बिजली की तरह दौड़ दौड़ और कूद कूद पड़ता। शत्रुदल के इतने आदमी मार गिराये कि "सवालाख सँग एक लड़ाऊँ" वाला गुरुजी का वाक्य पूर्ण कर दिखाया। जब एक अकेले सिक्ख के ही युद्ध द्वारा इतना नुक़सान होते देखा तब ख़्वाजा मरदूद को गुस्सा आया और उस अकेले पर गोलियों की वर्षा करके उसके शरीर को छलनी कर डाला।

इस प्रकार इस महा भयानक युद्ध में जगत के इतिहास में अद्वितीय वीरता दिखा गुरुजी के बीस सिक्ख अब शहीद हो चुके थे। यह देख गुरुजी के बड़े साहबज़ादे अजीतसिंह जी अपने पिता गुरुजी के आगे हाथ जोड़ कहने लगे कि "पिताजी! मेरे दिल में बड़ा चाव है कि अपने भाइयों की तरह मैं भी एक बार जी खोलकर यवनों को अपनी तेज़ तलवार का मज़ा चखऊँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी जाऊँ और रण को भूचाल की तरह हिलाऊँ।"

कौनसा पिता है जो अपनी सन्तान को इस प्रकार की निश्चित मृत्यु के मुँह में भेजे? परन्तु धन्य हैं श्री गुरु गोविन्द

सिंह जोकि अपने पुत्र की यह वीरोचित वाणी सुन प्रसन्न होते हैं और उसे धर्म रक्षा के लिये मरमिटने की आज्ञा देते हैं। गुरु जी ने साहब अजीतसिंह को अपने हाथों से अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया और पीठ पर थापि देकर मुँह चूमा और कहा—"बेटा! जाओ, मैं तुम्हें अन्तिम विदायगी देकर श्री अकाल पुरुष वाहिगुरू के अर्पण करता हूँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हारा यह प्यारा मुखड़ा अब रणक्षेत्र से वापिस न आयेगा परन्तु मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा देता हूँ। तुम जाओ, बड़ी खुशी से जाओ और खालसा धर्म की शान क़ायम रख वीर-गति को प्राप्त हो। देखना! रण-भूमि में शत्रु को पीठ न दिखाना और सन्मुख रहकर शहीदी अमृत पान करना"। अपने पिता गुरु जी की यह आज्ञा सुन साहब अजीतसिंह जी का और हौसला बढ़ा और गुरु जी को विश्वास दिलाने के लिये कहा :—

हे पिता जी!

मैं नाम का अजीत हूँ जीता न जाऊँगा।
जीता गया तो खैर मैं जीता न आऊँगा॥

गुरु जी ने पाँच सिक्ख साहब अजीतसिंह के साथ किये और यह छःओं गुरु जी के चरणों में सीस नवा हवेली के बाहर निकले।

बाहर निकलते ही साहब अजीतसिंह और इनके पाँच साथियों ने ऐसा भयानक युद्ध रचाया कि जिसका कवि "सेनापति" ने इस प्रकार वर्णन किया है :—

दिन गढ्हु रण खम्भ सिंह रण जीत धरत पर।
त लरज उठी धूर भान छिप गयो आप घर॥

पवन मन्द हुइ रही रैन भई दिवस छपानो ।
लरजे सकल अकाश तोप छूटी पर मानो ॥

बज्यो निसान तिहुँ लोक मैं मुनि देवन मन थउँ भयो ।
चढ़ि चढ़ि बिमान देखन चले सु शंकर समेत नहीं को रह्यो ॥

युद्ध करते करते साहब अजीतसिंह के पाँचों साथी कईयों को मौत के घाट उतार शहीद होगये और आप अब अकेले ही रह गये । यह सत्रह अठारह वर्ष की उठती जवानी के सूरमा अपने को अकेले पा घबराये नहीं किन्तु युद्ध और तेज़ी से करने लगे । तीरों का भत्था जब ख़तम होगया तब नेज़ा सँभाला और वास्तव में सिंह-सुवन ही की तरह शत्रुओं पर बड़ी तेज़ी से झपटते हुए उन्हें पिरो पिरो कर ज़मीन पर डालने लगे :–

लेत परोइ पठान को, सबहन साँग दिखलाइ ।
देखत ही सब करत हैं, अरे खुदाइ ! खुदाइ !!

एक नवयुवक के हाथों अपनी सेना का इस तरह संहार होते देख मुग़ल सरदारों को बड़ा क्रोध आया और अपने सिपाहियों को फटकारने लगे । एक मुग़ल सरदार अनवर खाँ जो एक बचाव वाले स्थान पर खड़ा अपनी सेना को आज्ञा देरहा था उस पर साहब अजीतसिंह ने नेज़े का ऐसा वार किया कि वहीं उठाकर ज़मीन पर गिरा लिया । पर नेज़ा खेंचा तो उसके दो टुकड़े होगये । तभी झट अपनी कृपाण निकाल ली और वह उसी समय रण भूमि में सर्व संहार करती हुई बिजली सी नाचने लगी :—

टूटकै साँग दुइ टूक हुइ भुइ परी, गही तरवार दल बहुत मारे।
एक के सीस धरि दुइ टुकरे करे, दुइ के सीस धरि करत च्यारे॥
भाँत इह पूर प्रवाह दीने कई, रक्त दरियाउ मैं परे सारे।
गिरे विकराल वेहाल सुध कछु नहीं, परे रणमाहिं सब कछु विसारे॥

वह देखिये! बिजली सी चमकती हुई कृपाण अब एक मुग़ल सरदार की खोपड़ी पर जा पहुँची है और एक ही वार में उसने उसे यमलोक का रास्ता दिखलाया है। अब बिजली सी चमक कर वह एक दूसरे मुग़ल सरदार के सर पर गिरी और वह एक आह करके वहीं भूमि पर दिखाई दिया। इसी प्रकार साहब अजीतसिंह की तेज़ तलवार ने शत्रुओं के कई बड़े बड़े सरदारों को यमलोक पहुँचाया। आख़िर इस तलवार के भी दो टुकड़े हो गए और अब साहब अजीतसिंहजी बिलकुल ख़ाली हाथ रह गए। शत्रुओं ने झट इन्हें पास आ घेरा परन्तु इनकी लोथ का उन्हें कहीं पता न चला:—

देखन को विध यौं ही भई, प्रभु की गति की कोऊ का मिति जाने।
जूझ परे कि गए कितहूँ दिस, देख रहे किनहूँ न पछाने॥
लोथन मैं नहीं लोथ परी, निकसे कितहूँ किनहूँ नहीं माने।
एक विचार विचार कियो कोऊ, ताको विचार विचार न आने॥

श्री गुरुजी हवेली के ऊपर की कोठड़ी पर से अपने प्यारे अजीत की वीरता देख देख बड़े खुश हो रहे थे। उसे अपनी आँखों के सामने घायल होता और टुकड़े होता देख गुरुजी के मुख पर शोक और दुःख का कोई चिह्न नहीं था। वह तो उलटा वाहिगुरू का धन्यवाद कर रहे थे कि "हे अकाल पुरुष! आज यह तेरी अमानत मुझसे अदा हुई है।"

अपने बड़े भाई का युद्ध और उनकी कृपाण के कौतुक देख साहब ज़ोरावरसिंह का ख़ून भी जोश से उबल रहा था, पर अब उन्हें शहीद होते देख आपसे न रहा गया और पिता गुरुजी से बोले—" पिताजी ! क्या मैं अपने बड़े भाई की तरह शहीदी प्राप्त नहीं कर सकता ? मुझे भी आज्ञा दीजिये कि मैं भी रणभूमि में जाऊँ और यवनों को अपने भुज बल के जौहर दिखाऊँ।" साहब ज़ोरावर सिंह की आयु इस समय केवल तेरह वर्ष की है। इस छोटी सी अवस्था में यह हौसला देख गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए और—

कहा आफ़रीं वाह ! शाबाश बच्चा ।
करो तुम गनीमों से पुर खाश बच्चा ॥
गिराओ अभी लाश पर लाश बच्चा ।
बढ़ो पापियों का करो नाश बच्चा ॥
रक़ीबों को काटो सफ़ाई से रण में ।
मिलो जा के तुम अपने भाई से रण में ॥

गुरुजी ने उन्हें अपने हाथ से शस्त्र पहनाए, सर पर दस्तार सजाई और कमर में एक छोटी सी कृपाण लगाकर युद्ध देवी को वरने के लिये तैयार किया—

वहीं बाँधी छोटी सी दस्तार सर पर ।
कमर से वहीं बाँधा छोटा सा खंजर ॥
दिये तीर छोटे से खूँख्वार कर कर ।
दी बन्दूक छोटी सी बोले कि लड़ मर ॥
तू है शूर वीरों की औलाद बेटा ।
ज़रा अपने दादा को कर याद बेटा ॥

अपने इस पुत्र को भी तैयार करके गुरुजी ने उसका मुख चूमा, शाबाशी दी और कहा— " बेटा ! जाओ !! रण भूमि में, यवनों के रक्त से होली खेलो और सन्मुख रहकर शहीदी प्राप्त करो । "

साहब जोरावरसिंह प्रातःकाल से ही हवेली में ऊपर बैठे तीर वर्षा कर रहे थे । इस समय उन्हें कुछ प्यास सी मालूम हो रही थी, इस लिये रणभूमि में जाने से पहले गुरुजी से कहने लगे—"पिता जी ! थोड़ा जल दीजिये । प्यास लगी है ।"

गुरुजी—बेटा ! मैं तुम्हें अन्तिम विदायगी दे चुका हूँ । वह देखो तुम्हारा भाई तुम्हारे लिये शहीदी अमृत का प्याला लिये खड़ा है । जाओ ! अब अपनी प्यास शत्रुओं के रक्त से बुझाओ ।

कैसा अद्भुत दृश्य है । आज तक कभी किसी और ने भी इस प्रकार अपनी सन्तान को अपनी आँखों के सामने हँसते हुए टुकड़े टुकड़े कराया है ? मुहम्मद साहब का लड़का लड़ाई के मैदान में जब प्यास के मारे तड़प रहा था तो मुहम्मद साहब से नहीं रहा गया और दुश्मनों से पानी के लिये दरख़्वास्त करते फिरते थे, परन्तु यहाँ देखिये ! पानी होते हुए भी गुरुजी अपने जिगर के टुकड़े को कहते हैं कि "तेरे लिये पानी अब इस जगह ख़तम हो गया है, तेरे लिये पानी रण क्षेत्र में तेरा भाई लिये खड़ा है, वहाँ जाओ और पीयो ।" श्री गुरुजी ने ख़ालसा धर्म की फुलवाड़ी को अपने और अपने परिवार के अमूल्य रक्त से इस प्रकार सींचा है कि किसी और

दुसरे धर्म वेत्ता ने आज तक कभी नहीं किया है। तभी तो कहते हैं कि—

दसवें गुरू का सानी कोई दूसरा न देखा।
आगे कोई न होगा पाछे हुआ न देखा॥

गुरुजी ने पाँच सिक्ख साहब ज़ोरावरसिंह के साथ किये और वे जब हवेली के बाहर निकले तो मुग़ल सब हैरान हुए कि यह छोटा सा बालक भला क्या युद्ध करेगा। परन्तु—

दल में जु धस्यो बलवन्त बली, इह भाँत सों तीर चलावत है।
जिहके उर मारत देत गिराइ, परो रण में बिल लावत है॥
गिरी लोथ पै लोथ अपार तहाँ, खरी जोगन पत्र पूरावत है।
इह भाँत जुझार करे रण मार, सु यों रण में रण पावत है॥

शत्रु दल में साहब ज़ोरावरसिंह जी इस प्रकार दौड़ने लगे जैसे कि नदी में मच्छोओं की खोज करता एक मगरमच्छ दौड़ता है। इस छोटे से योद्धा को देख वैरी उस पर उमड़ आए और चाहा कि ज़िन्दा ही पकड़ लें। पर साहब ज़ोरावर-सिंहजी इस समय वीरता का अवतार बन रहे थे। जब उन्हों ने देखा कि शत्रु पास आ गये हैं तो उन्हों ने अपनी बरछी सँभाली और वैरियों को परो परो कर इस तरह फेंकने लगे कि एक बारगी मुग़ल भी सब वाह! वाह!! कह उठे।

ऐसे ही चल्यो जब बरछी फिरावै हाथ,
लेत है परोइ मानों फूल पोइयत है।
गूँदबे को हार भार भार डारी घन सार,
पउन प्रबाह बह्यो ऐसो जोइयत है॥

बरछा लगावै जाहि लेत है परोइ ताहि,
सभन दिखाइ डार यउँ विरोइयत है।
स्रोन को अगम नीर देखिकै रहै न धीर,
ताही में लोथ डार यउँ डबोइयत है॥

कई मुग़ल सरदार साहब ज़ोरावरसिंह को पकड़ने के लिये आगे बढ़े, पर जो जो आगे आया वही ज़मीन पर लेटता गया। यह दशा देख मुग़ल लोग सब चौंक उठे और सबने साहब ज़ोरावरसिंह पर तलवारों से हमला कर दिया। साहब ज़ोरावरसिंह ने भी अपनी कृपाण निकाल ली और आगे पीछे दाहिने बाएँ ऐसी चलाना शुरू की कि उनके चारों ओर लोथों के ढेर के ढेर दिखाई पड़ने लगे—

खैंचत खड़ग जद मारत सड़क,
गिर पड़त तड़क असवार आगे ताही के।
गिरत विहाल विकराल सुध नाहीं कछु,
लोटत धरत जो कपोत सुत ताही के॥
ऐसे मारे असवार एक एक झार झार,
मानो कि वग व्यारपति विरखाही के।
कौन है कहै विचार नाहीं कछु पारावार,
जोरावर सिंह दल मारे राई राई के॥

साहब ज़ोरावर सिंह के पाँचो साथी इस समय तक शहीद हो चुके थे और अब इनका शरीर भी गोलियों और तलवार के घावों से छलनी हो चुका था। पर इनकी कृपाण दृढ़ मुट्ठी में बन्द उसी तरह से अपना काम करे जा रही है और मुख पर दृढ़ता का भाव ज्यों का त्यों विद्यमान है।

क्यों न हो ! एक तो सवा लाख संग एक लड़ाने वाला खण्डे का अमृत पान किया हुआ और फिर श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी का वीर्य्य ! आख़िर इनका भी अन्तिम समय आन पहुँचा। यवन चारों ओर घिरे हुए मार कर रहे थे पर उन्हें इस बालक वीर की लोथ का भी कहीं पता न चला—

पटक पुटक कै कटक को, झटक निकस गयो पार।
जोरावर प्रभु जोर करि, राख लियो करतार॥

गुरुजी के दो वीर बालक अब शान्त हो चुके हैं। पर उनके चहरे पर किसी प्रकार का उद्वेग नहीं है, कोई चिन्ता नहीं है। उसी तरह प्रफुल्ल मुख आनन्दचित्त हैं। उनके पास अब केवल दस सिक्ख ही रह गये हैं। बाहर मुग़लों ने जब यह देखा कि गुरुजी के दो साहबज़ादे अब शहीद हो चुके हैं तो उन्हों ने यह अनुमान लगाया कि हवेली के अन्दर अब केवल गुरुजी ही अकेले होंगे। इस लिये बहुत सारों ने एक दम हवेली पर हमला कर गुरुजी को पकड़ लेने का इरादा किया। पर जब यह सब हवेली की ओर दौड़े तो अन्दर से गुरुजी और सिक्खों ने तीरों की ऐसी वर्षा की कि आगे बढ़ रहे दल का कितना भाग वहीं ज़मीन पर लेट गया। तब तो मुग़ल सरदार बड़े चौंके और सोचा कि हवेली में अभी तो क़ई सैंकड़े सिक्ख और होंगे। अब रात भी हो आई थी। दिन भर के घोर संग्राम से मुग़ल और पहाड़ी सेना का बड़ा भारी नुकसान हो चुका था। उनके कई बड़े बड़े सरदार भी मारे जा चुके थे पर वे फिर भी हवेली के पास नहीं पहुँच पाये थे। इस लिये वैरी दल के सरदारों ने फिर आपस में सलाह

की और सोचा कि यदि ऐसे युद्ध जारी रक्खेंगे तो और बड़ा नुकसान होगा। जीत हमारी अवश्य है और अगर चुप चाप हम बैठे रहें तब यह तीन चार दिन में हवेली ज़रूर हाथ आ जायगी। वैसे ही क्यों जानें गँवायें। रात हो ही गई थी, इस लिये इस विचार के बाद यही सलाह ठहरी कि चारों ओर पहरा लगा दिया जाय जो रात को भाग न जायँ। जब दिन निकलेगा फिर देखा जायगा।

तीन रातें महान कष्ट की सिक्खों को इस तरह युद्ध करते व्यतीत हुईं। अब चौथी रात आई। जो दस सिक्ख अभी बचे हुए थे उन्होंने मिल कर इस समय गुरुजी की सेवा में विनती की कि "हे गुरुजी! हम सब आपके आज्ञाकारी जीव हैं। जो आज्ञा होगी सो करेंगे परन्तु अब बड़े मान और दावे के साथ आपसे हमारी एक विनय है और वह यह कि आप यहाँ से चले जाइये। हम सारे आपके सेवकों का यही विचार है और आशा है कि आप हमारी प्रार्थना मान लेंगे। हम हवेली को जब तक जीते रहेंगे रोके रक्खेंगे। आप इतने में दूर निकल जाइये। यह दाव है, हार नहीं। इस समय हमारी और ख़ालसा धर्म की जीत इसी में ही है कि आप शत्रुओं के हाथ न आवें। इतनी भारी लाखों की अगणित सेना के सामने दिनभर केवल चालीस आदमियों का अड़े रहना और उनके हज़ारों आदमी घायल और मुर्दा कर देना, यही आपकी शूर वीरता और विजय और जीत है। अब इस घिरी हुई टिड्डी दल सेना में से निकल जाना और उनके हाथ न आना यह भी वीरता और जीत है। आप जो यहाँ से सलामत निकल गये तो सिक्ख पन्थ और आदर्श भी

सलामत है। पर इस समय आपके प्राण देने से ख़ालसा पन्थ का बड़ा अपकार होगा। यह पौधा अभी बिलकुल नरम है। इसे अभी आप से प्रवीण माली की बड़ी आवश्यकता है। हम जैसे तो अगणित ही सिक्ख आप और पैदा कर सकते हैं परन्तु हम आप जैसा गुरु कोई दूसरा पैदा नहीं कर सकते। इस लिये आप हमारी प्रार्थना मंजूर कीजिये।"

यह प्यार भरी विनती सुन गुरुजी के चेहरे पर एक अजब रंग छाया। झट पट विचार होकर यह फैसला होगया कि गुरुजी जायें और आपके साथ तीन सिक्ख भाई दयासिंह, धर्मसिंह और मानसिंह भी जायें। इस तरह ख़ालसे का प्रस्ताव स्वीकार कर गुरुजी वहाँ से चलने को तैयार होगये। सामने दर्वाज़े से जाना ठीक न था। इसलिये पिछली ओर दीवार में से एक रास्ता बना सहज से बाहर निकल आये। गुरुजी ने और तीनों सिक्खों ने अच्छी तरह से शस्त्र धारण किये हुए थे। जब बाहर आगये और थोड़ी दूर निकल गये तो गुरुजी ने बड़ी ज़ोर से आवाज़ लगाई कि "सिक्खों का गुरु निकल गया है।" फिर तीन बार तीनों सिक्खों ने भी ज़ोर से पुकार कर कहा कि "हिन्द का पीर निकल गया है।" यह अवाज़ें सुनते ही एक दम सोये हुए लशकर में खल बली मचगई। पहरे पर दो मशालची आवाज़ की सीध में आगे आये। गुरुजी ने एक तीर चलाया, दोनों को नीचे लिटा दिया और मशालें भी गिर पड़ीं। इनके गिरने और मरने की हायहूय की आवाज़ उठी तो सब घबरा कर उठे। कोई किसी ओर कोई किसी ओर पकड़ने को दौड़ा। चन्द्रमा को बादलों ने आ घेरा और

अँधेरे में यवनों की सेना ने आपस में ही एक दूसरे को घेर काट छांट करना शुरू कर दिया। उधर हवेली में से जब सिक्खों ने गुरुजी की आवाज़ सुनी तो उनका कौतुक समझ गये और अपने धौंसे पर धुंकार लगाई और थोड़े से तीर दूर दूर चला दिये। बस इस धौंसे की धुंकार ने वैरी सेना में शोर मचा दिया कि "आगये! आगये!!"। किसी को ख्याल हुआ कि बाहर से और सिक्ख सेना आगई है, किसी ने ख्याल किया कि गुरुजी और सारे सिक्ख हवेली से बाहर आकर हम पर छापा मार रहे हैं। किसी ने कुछ और किसी ने कुछ सोचा। इस प्रकार शत्रुओं के सेनापति और जत्थे दारों के प्रबन्ध में बिलकुल गड़ बड़ मचगई। अँधेरे में जो उठता था वही शस्त्र चलाने लगजाता था। सारी रात जो बाक़ी थी वैरी दल में आपस में ही कटा छनी होती रही —

मच्यौ कुलाहल भिड़े भेड़ भट, आपस महिं चल गयो हथियार।
छुटी तुपक तोमर अरु तीरन, तरवारन जुट के कर मार॥
पिता पूत के सिर में झारत, पूत पिता के तन पर झार।
भ्रात भ्रात के चचा भतीजा, सखा सखे के वहि तरवार॥
जथेदार को हनें सिपाही, मार सिपाही को जथे दार।
नहीं पछान परस्पर कोई, क्यामत रात भई तिस बार॥
भये कतल सिर धर किह कर पग, केतक दारुण करहिं पुकार।
कहि लग कहूँ बिती तुरकन पै, बिन मार मर गए गवार॥

इस तरह के घमसान में दिन चढ़ आया। तब तुर्कों और पहाड़ियों को होश आया। राजा अजमेर चन्द भी रात को ज़ख्मी होगया था। ज़ेर दस्त, लाहौर का नवाब भी ज़ख्मी

था परन्तु सेना के सरदारों और सिपाहियों की जो मरे और ज़ख़्मी हुए उनकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। दस लाख के लशकर में से केवल कुछ हज़ार ही बाक़ी बचे थे। इतना ढेर सारा अपना नुक़सान हुआ देख तुर्कों को बड़ा ग़ुस्सा आया और एक दम सबों ने इकट्ठे होकर हवेली पर हमला कर दिया। अन्दर से गोली बारूद ख़तम हो चुका था इस लिये सिक्ख भी कृपाणें खींच बाहर मुक़ाबले के लिये निकल आये—

सभ हूँन शास्त्र को त्याग त्याग। जुगसिंह खड़ग ते भाग भाग॥
घन घाव देह को लाग लाग। बहि चल्यो रक्त पट पाग पाग॥
गरजन्त तऊ तब दौर दौर। घावन अनेक तब ठौर ठौर॥
असि भार तबक ते मार मार। भभकन्त सबद ते तार तार॥
तुरकान तोम को काट काट। मृत बेशुमार किये फाट फाट॥
रिपु आये सैंकरे घेर घेर। जिम चन्द्र प्रवाहे हेर हेर॥
निज चरन अग्र को डार डार। बल रह्यो जबै लग मार मार॥
तब गिरे धरन अरि गेर गेर। सभ खड्ग प्रहारैं हेर हेर॥

इस प्रकार सिंह लड़ते मारते मरते शहीद हो गये। जब तुर्कों ने भाई सन्तसिंह जी का पतला लम्बा शरीर और सुन्दर चहरा देखा तो उन्हों ने उनको ही गुरु समझा और फिर उनकी ख़ुशी की कोई हद्द न रही। फ़ौरन लशकर में ख़बर फैल गई। सेनापति ख़्वाजा मरदूद आप आया और धड़ और सीस को देख कर अल्लाह का शुक्र किया। सीस को उठवा कर अपने साथ ले गया कि शाहंशाह औरंगज़ेब के पास भिजवाये।

भाई सन्तसिंह और भाई संगतसिंह दोनों के चहरे गुरुजी के चहरे के साथ मिलते थे परन्तु संतसिंहजी का

तो बहुत करके मिलता था। इस लिये भाई संतसिंहजी के शीश को गुरुजी का समझ खुशी के नारे बजने लगे कि फ़ते हो गई! फ़ते होगई!! पहाड़ी राजा ज़ख़्मी अजमेर चन्द को लेकर विदा होने की तैयारी में लग गये और लाहौर का नवाब भी कूच की तैयारी में लग गया परन्तु जब पता लगा कि यह सीस गुरुजी का नहीं है तब शाही लशकर में से कुछ सेना उनकी खोज में लग गई। इधर मुसलमान अपने मुर्दों को बड़े बड़े गड्ढे खोद कर दाबने लगे और सिक्खों की लोथों की किसी ने परवाह न की।

रात हुई तब एक बहादुर सिक्ख स्त्री बीबी शरन कुँअर वहाँ आई और सिक्खों की लोथों को ढूँढ़ ढूँढ़कर एक जगह इकट्ठा किया और उनके ऊपर लकड़ियों का ढेर लगा कर आग लगादी। जब आग बड़े ज़ोर से भड़क उठी तब कई तुर्क वहाँ दौड़े दौड़े आये और उस सिक्ख स्त्री से पूछने लगे कि यह आग क्यों जलाई है। जब किसी तरह कोई उत्तर न मिला और उनको पता लग गया कि यह सिक्खों की लोथें जलाई जारही हैं तब तुर्कों ने बीबी शरनकुँअर को पकड़ दो भालों पर टाँग उसी आँच में ज़िन्दा जला डाला! दुष्टों से और क्या उम्मीद हो सकती थी। एक निरापराधिनि और निरस्त्र स्त्री को ज़िन्दा आग में जलाना! पर धन्य है। एक बार नहीं सौ सौ बार धन्य उस वीर स्त्री को जिसने अपने भाइयों की लोथों का संस्कार करने में अपनी जान की कुछ भी परवाह नहीं की।

२०—अद्भुत धर्मबलि ।

पाठक देख आये हैं कि सं० १७६१ वि० ७ पौष बुद्धवार की रात को जब गुरुजी परिवार सहित आनन्दपुर से निकले थे, तब शत्रुओं के हमले से सारा परिवार तितर बितर हो गया था । गुरुजी तो चमकौर की तरफ़ निकल गये थे जहाँ के युद्ध का हाल ऊपर बताया जा चुका है, और उनकी माता गूजरी जी छोटे साहबज़ादे जुझार सिंह और फ़तेसिंह के साथ गंगाराम रसोइये को साथ ले किसी और तरफ़ निकल गये थे। गंगाराम माताजी और साहबज़ादों को अपने गाँव सहेड़ी में ले आया और उनकी रात कटी का प्रबन्ध कर दिया।

माताजी के पास एक जवाहिरात की पेटी थी, जिसमें बहुमूल्य रत्न के आभूषण थे। यह कई लाख का माल था और इसे देख गंगाराम की नीयत में फ़र्क आगया। कोई आधी रात के समय उसने इस पेटी को आगे पीछे कर दिया और चोर चोर का शोर मचा दिया। माताजी की इस फ़िक्रमयी दशा में आँख भी नहीं लगी थी । उन्होंने देखा कि कोई चोर यहाँ आया तो है नहीं इस लिये गंगाराम से कहा कि यदि तुमने पेटी को सँभाल कर रख लिया है तो अच्छा किया है। गंगाराम का अपना पाप काँपता था। कहने लगा कि "पेटी तो चोर ले गये। मैंने कहाँ सँभाल कर रक्खी है।

एक तो मैंने आपको अपने घर में रक्खा दूसरे आप मुझ को ही दोषी बनाती हैं।" माताजी ने उसको बहुत कुछ समझाने की कोशिश की कि "पेटी चली गयी है तो कुछ परवाह नहीं। मैं तो तुमसे वैसे ही कह बैठी थी कि शायद तुमने किसी ठिकाने सँभालदी हो। सो इस बात की तुम्हें बिलकुल परवाह नहीं करनी चाहिये।"

मनुष्य एक पाप को छिपाने के लिये कई और पाप कर बैठता है। गंगाराम ने अपनी करतूत छिपाने के लिये छोटे साहबज़ादों को तुर्कों के हवाले करने की ठानली और सोचा कि ऐसा करने से बादशाह मेरे ऊपर ख़ुश होगा और मुझको कोई बड़ी पदवी देगा। माता जी ने बहुतेरा समझाया पर गंगाराम ने एक न मानी और सुबह होने से पहिले ही साहबज़ादों और माताजी को पकड़वा दिया। मोरंडे से जानीख़ाँ और मानीख़ाँ आकर इनको रथमें बिठा कर सरहिन्द में ले गये और उनको ठण्डे बुर्ज में क़ैद किया गया।

हाय! आज देखिये वह माता जो जगत गुरु अवतार की माता है, जो सदैव फूलों की सेज पर सोया करती थी और मख़मलों के फ़र्शों पर चला करती थी, आज देखिये वह इस ठण्डे बुर्ज में अपने दो पौत्रों समेत क़ैद है। सोने के लिये कोई चारपाई नहीं है। ठण्ड से बचने के लिये ऊपर लेने को कोई कपड़ा भी नहीं है। केवल एक चद्दर में अपने प्यारे नन्हे से पौत्रों को लपेट उन्हें छाती से लगाकर बैठी है और ईश्वर से प्रार्थना कर रही है—"हे अकाल पुरुष! कृपा करो। अपने प्यारों की इस विपद को दूर करो, बिछुड़ों को मिला दो। इन मासूम बच्चों को पापियों से छुटकारा बख़्शो,

आदिक ।" बुड्ढी माता जो चिंता के समुद्र में गोते लगा रही हैं और बुर्ज के चारों ओर खुली खिड़कियों में से जाड़ों की बर्फ़ सी ठण्डी हवा बड़े वेग से उन पर ऐसे हमला कर रही है कि मानों सब कुछ लुटा बैठी वृद्ध माता के शरीर की गरमी को भी अभी लूट लिया चाहती है। ऐसी दुरावस्था में भला नींद कहाँ। ज़रा आँख लगी भी तो दुखी माता क्या देखती है कि दोनों बड़े पौत्र. साहब अजीतसिंह और साहब ज़ोरावरसिंह, तीरों से छलनी हुए धरा पर रक्त में लेटे पड़े हैं। दुखियारी माता इन दोनों को हिला हिला कर कहती है—

जागो जागो हो लाल दुलारे। बुड्ढी माता है खड़ी पुकारे॥
कैसी नींद तुम्हें है प्यारी। उठो! उठो!! हो मेरे प्यारे॥

इतने में माता की दृष्टि पीछे की ओर गई तो देखा कि एक भयंकर पठान दोनों छोटे पौत्रों को भी उठाकर ले भागा है। माता भागी कि उसके पीछे दौड़े पर उसी समय आँख खुल गई।

सुबह होते ही वह पठान जो माता को स्वप्न में दिखाई दिया था वहाँ सामने वास्तविक रूपमें आ खड़ा हुआ और कहने लगा—"माता! इन बच्चों को ज़रा भेजो। सरहिन्द के नवाब वज़ीरख़ाँ का दर्बार लगा हुआ है। और वह इन बच्चों को देखना चाहते हैं।" यह वही सूबा सरहिन्द था जो श्रीगुरुजी से कई बार हार खा कर बड़ा दुखित था। जब इसने गुरुजी के निस्सहाय परिवार को अपने हाथ लगा देखा तो अपना वैर साधने का अच्छा मौका समझा।

हे सन्तान वालो! ठण्डी हवा से बचा बचा कर पुत्रों को छाती से लगाने वाले प्यारो!! ज़रा सोचो, इस समय

माता गूजरी के दिल की क्या हालत होगी। किस तरह मासूम बच्चों को वैरी के हाथों से बचावे और किस तरह से न न बचावे। जानती है पर फिर बच्चे पापी के हाथों में पकड़ाती है। नहीं, नहीं, भारत भूमि के पापों के बदले भेंटा होने के लिये अपने जिगर के टुकड़े यज्ञवेदी को भेजती है।

साहब जुझार सिंह ने माता जी को कुछ शोकातुर सी देख उन्हें हौंसला दिलाया और कहा—

धन्य भाग हमरे हैं माई। धर्म्म हेत तन जे कर जाई॥
मात पिता क्यों शोकित होवैं। पूत धर्म्म पर जे तन खोवैं॥

साहब जुझारसिंह की आयु इस समय केवल आठ वर्ष की है और इनके यह वाक्य सुन माता जी को निश्चय हो गया कि बच्चे अपने धर्म में दृढ़ रहेंगे और परीक्षा में पूरे उतरेंगे। तोभी माताजी का हृदय करुणा रस से भर आया और कहने लगीं—

जाने से पहले आओ तुम्हें गले लगा तो लूँ।
केशों को कंघी करलूँ ज़रा मुँह धुला तो लूँ॥
नन्हे से इन सरों पै कलग़ी सजा तो लूँ।
मरने से पहले तुम्हें दुलहा बना तो लूँ॥

माता जी ने आगे होने वाली घटना का कुछ कुछ आभास पा पौत्रों को गले से लगाया, मुख चूमा और सर पर हाथ रखकर कहा—"मेरे वीर पुत्रो! जाओ, बड़े हर्ष से जाओ। अपने धर्म पर दृढ़ रहना। किसी प्रकार से घबराना नहीं। मृत्यु देवी को वरने के लिये मैं तुम्हें दूलह बनाकर भेजती हूँ। जाओ! अकाल पुरुष तुम्हारा रखवारा है।"

दोनों साहबज़ादे जिनकी आयु इस समय केवल आठ और छः वर्ष की है, दर्बार में लेजाये गये। वहाँ बड़े बड़े हिन्दू मुसलमान रईस बैठे हुए थे। नवाब वजीरख़ाँ चौकी पर बैठा था। शेर दिल बच्चे निर्भय निस्संकोच सिंह-सुवनों की तरह इधर उधर देखते हुए सर ऊँचा किये उस के पास जा खड़े हुए। यह देख पास से दीवान सुच्चानंद, जो कि एक खत्री था, बोला—"बच्चो! तख़्त पर सरहिन्द के नवाब साहिब विराज मान हैं। इनको झुक कर सलाम करो।"

जुझारसिंह — एक अकाल पुरुष और गुरु के बिना दूसरे के आगे सर झुकाना हमारे लिये मना है।

यह दिलेरी की बात सुन दर्बार में सारे हक्के बक्के होगये। नवाब वैसे तो शरमिन्दा हो गया पर बच्चों को अपने पास बुलाकर और बड़े प्यार से कहने लगा कि "दो तीन दिन हुए हैं तुम्हारा पिता गुरु गोविन्दसिंह चमकौर में अपने साथियों समेत मारा गया है, सो अच्छा हुआ। वह काफ़िर था। उसका जीना अच्छा नहीं था। अब शुक्र है कि तुम उसके बच्चे इस्लामी दर्बार में आ पहुँचे हो।"

जुझारसिंह — हमारे पिताजी जीते हैं। इसमें ज़रा भी संशय नहीं। अभी उन्हें कई काम करने हैं।

वजीरखाँ — अब तुम्हारा वली वारिस कोई नहीं। अब तुम हमारी क़ैद में हो। अब तुम्हारी जान तभी बच सकती है जब तुम दीन इस्लाम क़बूल कर लो।

दोनों साहबज़ादों ने कोई उत्तर नहीं दिया और चुप खड़े रहे। फिर वज़ीरख़ाँ ने पूछा—"क्यों, तुमने सुना नहीं क्या मैंने क्या कहा है ?"

जुझारसिंह—क्यों, क्या कहते हो ?

वज़ीरख़ाँ—मैं कहता हूँ कि तुम्हें अब मुसलमान बनना पड़ेगा।

जुझारसिंह—ऐसा क्यों कहते हो ?

वज़ीरख़ाँ—हमारी किताब का यही हुक्म है कि जहाँ तक हो दूसरे मज़हब के लोगों को अपने मज़हब में लाया जाय। कहो क्या कहते हो ? तुम्हें मुसलमान बनना मंज़ूर है या नहीं ?

जुझारसिंह—हमारी किताब यह कहती है कि अपना धर्म न छोड़ो। इस लिये हम तो मुसलमान नहीं बन सकते।

वज़ीरख़ाँ—मुसलमान नहीं होगे तो क्या जान गँवाओगे ?

जुझारसिंह—जान क्यों कर जावेगी ?

वज़ीरख़ाँ—हमारी किताब का यही हुक्म है कि जो मुसलमान न बने उसे मार डाला जाय।

जुझारसिंह—क्या हमसे युद्ध करेगा ? ला, दे, हाथ में तलवार दे, गुरु के बच्चे युद्ध में जान जाने से नहीं डरते।

वज़ीरख़ाँ—अरे बच्चे तू निरा भोला है। युद्ध नहीं करना होगा। जल्लाद की तलवार दोनों का सर काट कर फेंक देगी। सोचो और समझो। अगर इस आफ़त से बचना चाहते हो तो मुसलमान हो जाओ नहीं तो बड़ी दुर्दशा होगी।

जुझारसिंह—अच्छा ! तू हमारे हाथ में तलवार नहीं देगा और योंही दोनों का सर कटवा डालेगा। हाँ ! ठीक !! माता

जी कहती थीं कि हमारे दादा गुरु तेग़ बहादुर भी योंही मारे गये थे क्योंकि उन्होंने मुसलमान होना मंज़ूर नहीं किया था। अरे पापी! ले सुनले!! हम उसी गुरु के पोते हैं। हम भी उसी तरह क़त्ल हो जायँगे पर मुसलमान नहीं होंगे।

वज़ीरखाँ—भोले बच्चे! तेरे सर पर क्या ख़ब्त सवार है जो ज़रा ज़िद्द के सबब जान गँवाता है।

जुझारसिंह—पर तुम तो समझदार हो, तुम ही अपनी ज़िद्द क्यों नहीं छोड़ देते और हमें क्यों ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना चाहते हो?

वज़ीरखाँ—अरे नादन! क्या तुझे नहीं बतलाया गया है कि यह हमारी किताब का हुक्म है।

जुझारसिंह—तो फिर बार बार तू ही हमसे क्या पूछता है? क्या मैंने तुझसे नहीं कहा कि हमारी किताब का भी हुक्म यही है। और गुरु की शिक्षा भी यही है कि चाहे जो हो, चाहे कितने कष्ट से क्यों न मरना पड़े, "अपना धर्म नहीं छोड़ना"।

वज़ीरखाँ *(गुस्से में)—अगर नहीं मानोगे तो अभी जान से* मारे जाओगे।

जुझारसिंह—कुछ परवाह नहीं। मौत एक दिन ज़रूर आयेगी फिर आज आजायगी तो क्या बुरा है? दीन इस्लाम क़बूल करके भी तो मौत से हम बच नहीं सकते। इस लिये हम मरने को तैयार हैं पर धर्म त्यागने को नहीं।

फतेसिंह—मौत से वह डरे जो ईश्वर से बिछुड़ा हुआ हो। जिनके हृदय में ईश्वर है उनके लिये मौत एक

सच्चा जन्म है—

जिस मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये, पूरण परमानन्द॥

कैसा अद्भुत समय है! जिस दर्बार में जी हुज़ूर, जी हुज़ूर के विना किसी को और कुछ कहने की आज्ञा नहीं है, वहाँ यह दोनों सिंह बालक किस निर्भयता से स्वयं नवाब को उत्तर दे रहे हैं। सारे दर्बार में एक दम सन्नाटा छाया हुआ है। नवाब वज़ीरख़ाँ ने झुँझला कर सामने बैठे मलेर कोटले वाले शेर मुहम्मद ख़ाँ से कहा कि तुम अपने भाई नाहरख़ाँ (जो देहली से आई नई फ़ौज का कमांडर था) और भतीजा ख़िज़रख़ाँ जिनको गुरु गोविन्दसिंह ने चमकौर के युद्ध में मौत के घाट उतारा है उनका बदला तुम अब लेलो। और जैसे तुम्हारा जी चाहे इन बच्चों को क़त्ल कर डालो। मैं इन्हें तुम्हारे हवाले करता हूँ।

शेर मुहम्मद ख़ाँ एक दिल वाला आदमी था। उसने कहा कि "मेरा भाई और भतीजा मैदाने जंग में मरे हैं। मैं उनका बदला गुरु गोविन्दसिंह से मैदाने जंग में लूँगा। कसूर तो गुरु गोविन्दसिंह का है। उसके इन दूध पीते बच्चों का नहीं। दूसरे इनको क़त्ल करना इस्लामी शरह के भी ख़िलाफ़ है। आपका कोई बालक अगर हिन्दू पकड़ कर ले जायें तो आपके दिल का क्या हाल होगा? उस बात को भी ज़रा याद कीजिये जिसे बीते अभी साल भर भी नहीं हुआ है। जब टेवाणे का नवाब नाहरख़ाँ युद्ध में मारा गया था तब सिक्ख उसके डोले और बच्चों को पकड़ कर

गुरु गोविन्दसिंह के पास ले गये थे और उनसे कहा था कि जैसा हुक्म हो वैसा ही इनके साथ किया जाय। गुरु गोविन्द-सिंह ने फ़ौरन हुक्म दिया कि इन को बड़े आदर के साथ सही सलामत इनके घर पहुँचाओ। और सिक्खों ने हुक्म मान कर उनकी दोस्तों से भी बढ़ कर ख़ातिर की और बड़ी अच्छी तरह से घर पहुँचा दिया। आप को भी इन बच्चों और बड़ी बुड्ढी माता के साथ ऐसा ही वर्ताव करना चाहिये।"

शहाबदीन—ऐ शेर मुहम्मद! तुम काफ़िर वेदान्ती कब से हो गये? क्या तुम गुरु के चेले बन गये? दुश्मन के घात से क्यों डर गये?

वज़ीर ख़ाँ—शहाबद्दीन साहब! ऐसी बात न बोलिये। इस जगह सब को अपने दिल के ख़्यालात ज़ाहिर करने का हक्क है। शेर मुहम्मद ने जो बात कही है वह ज़रा सोच विचार करने वाली है। इन मासूम बच्चों को क़त्ल करके आख़िर हमारे हाथ आयेगा क्या?

सुच्चानन्द—बादशाह! आपका दिल बड़े रहम वाला है पर रहमत का काम बड़ा नाज़ुक है। अगर किसी न रहमत करने वाली जगह पर की जाय तो यह उल्टी मार करती है। अभी तो ये बच्चे ही हैं। बड़े होकर अपने बाप से किसी तरह भी कम न होंगे। साँप के बच्चे आख़िर साँप ही होते हैं। अभी तो अकेले गुरु गोविन्द सिंह ने ही जिसके साथ फ़ौज भी कोई ज़्यादा नहीं इतना तूफ़ान मचा रक्खा है। भला ये दोनों बड़े होकर क्या कम

गुज़ारेंगे। और यह तो शरह भी कहती है कि "क़त्ल उल ईज़ा क़त्ल उल मूज़ी।" साँप बिच्छू और शेर के बच्चों को तो पैदा होते ही मार देना चाहिये।

वज़ीर ख़ाँ—(साहबज़ादों से) बच्चो! अगर तुम्हें छोड़ दिया जाय तो तुम क्या करोगे?

जुझार सिंह—हम सिक्खों की फ़ौज इकट्ठी करेंगे और आपसे लड़ेंगे। या तो आपको मारेंगे या हम खुद मर जायेंगे।

वज़ीर खा—अगर तुम हार जाओगे तो फिर क्या करोगे?

जुझार सिंह—हम फिर फ़ौज इकट्ठी करेंगे और आपके साथ जंग करके मारेंगे और मरेंगे।

सुच्चानन्द—हुज़ूर! देखिये मैंने आप से कहा है न कि शेर के बच्चे आख़िर शेर ही होते हैं? अभी तो दूध पीते बच्चे हैं तो इस तरह जवाब देते हैं। जब बड़े हो जायेंगे तो राज्य की ईंट से ईंट बजा देंगे। ये ज़िन्दा छोड़े जाने लायक नहीं।

शेर मुहम्मद—यह बेशक सच है लेकिन मासूम बच्चों पर हाथ उठाना कायरता है। इन्हों ने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा। इनको छोड़ देना ही ठीक है। इन बच्चों पर हाथ उठाना इस्लाम को कलंक का टीका लगाना है।

इस समय सब ख़ुशामदी क़ाज़ी और मुल्ला मुर्गों की तरह बोल उठे—"नहीं, गर्दन ज़दनी, गर्दन ज़दनी के लायक हैं!" नवाब ने उसी समय हुक्म दिया कि इनको यहाँ से लेजाओ और जिस तरह से भी बने, प्यार से, डर से, धमका कर या लालच देकर इनको दीन इस्लाम में लाया

अद्भुत धर्म बलि

धन्य धन्य गुरुदेव सुत, तन दै जस गहि लीन ।
[illegible]र अमर तिहुँ लोक में, रिपु सुख कारिख दीन ॥

जाय। साहबज़ादों को अब कई तरह के प्रलोभन दिये गये और उनको कितने कष्ट पहुँचाये गये परन्तु उनको कोई डर धमकी या लालच सिक्ख मज़हब से न डिगा सका। जिस तरह से इनको कष्ट पहुँचाये गये उनका वर्णन करना महा कठिन है। एक दिन उनकी छोटी नरम उँगलियों में पलीते रख कर आग लगादी गई। उनको इतने कष्ट पहुँचाने पर भी जब नवाब ने फिर आकर दीन इस्लाम कबूल करने को कहा तब भी शूरवीर बच्चों ने यही उत्तर दिया कि "हम सत्य धर्म को छोड़कर असत्य ग्रहण नहीं करेंगे। जो हमही धर्म छोड़ देंगे तो धर्म पर चलेगा कौन?"

जब कोई चारा चलता न दीखा तो नवाब ने बड़े गुस्से में आकर साहबज़ादों को दीवार में चिन देने का हुक्म दिया। उसी समय ईंटें और गारा मँगवाये गये और साहब ज़ादों को खड़ा करके एक मीनार सा चिनना आरम्भ किया। ज्यों ज्यों रद्दे पर रद्दा चढ़ता जाता उनको फिर फिर इस्लाम कबूल करने को कहा जाता परन्तु उन्हों ने एक न मानी। जब मीनार गर्दन तक चिना जा चुका तब नवाब फिर आया। उसको देख साहब जुझार सिंह कह उठे—"जाओ पापी! अब पाप का काम पूरा होने दो। तुम्हारे पाप राज्य का प्याला नकानक होकर अब फैलने वाला है।" यह शब्द नवाब को गोली की तरह लगे और पाप की फट्कार उसके मन पर सवार हो गई। हृदय में काँपा और थर्राता हुआ महल को चला गया। उसी समय न जाने ईश्वर ने क्या गति दिखाई, छोटे साहबज़ादे फतेसिंह

तो पहिले ही वेहोश हो चुके थे, अब जुझारसिंह भी वेहोशी की हालत में होगये और इस समय बड़े कहर की आँधी आई। कई वृक्ष जड़ों से उखड़ गये। सूर्य को बादलों ने आघेरा। पृथ्वी काँपी और एक भूचाल सा आया और उस मीनार में से जहाँ साहबज़ादे चिनाये गये थे एक बड़ी भयानक ठाह ठाह की आवाज़ निकली और वह मीनार फट गया और उसकी ईंटों ने दूर दूर तक मार की और वेहोश साहबज़ादों के शरीर नीचे आगिरे। यह घटना ११ पौष इतवार की है।

इस समय जितने मनुष्य वहाँ मौजूद थे सब काँप उठे। नवाब की आज्ञा से साहबज़ादों को फिर ठण्डे बुर्ज में पहुँचाया और वहाँ उनको होश में लाया गया। उन्हें मुसलमान बनाने का ख़्याल अभी वैसे ही पक्का था इस लिये अब उन्हें और अधिक कष्ट दिये गये। उन्हें एक दूसरे से अलग अलग लेजा कर भी समझाया गया और धोखा देने के लिये उनसे यह भी कहा गया कि तेरा भाई तो अब मान गया है अब तू भी मानजा। पर वह अपने इरादे में बिलकुल दृढ़ रहे और रत्ती भर भी नहीं डोले।

१३ पौष मंगलवार के दिन साहबज़ादों की फिर दर्बार में पेशी हुई। तब वज़ीर ख़ाँ ने उनसे कहा—" बच्चो! मुझे तुम्हारे बालकपन पर तरस आता है। तुम कहा मानो और अब मुसलमान हो जाओ। मुसलमान हो जाओगे तो शहंशाह के दर्बार में तुम्हारी बड़ी इज़्ज़त होगी और तुम्हें वह अपनी बग़ल में बैठायेगा। बड़ी उम्दा उम्दा पोशाकें और

जवाहिरात तुम्हारे बदन पर होंगे। हाथी, घोड़े और सैंकड़ों गुलाम हर वक्त तुम्हारी ताबेदारी में रहेंगे। चाहे जितनी ख़ूबसूरत लड़कियों से तुम शादी कर सकोगे। अब विचार कर बताओ, क्या इतनी मौज का सामान पाकर भी तुम मुसल्मान होना नहीं चाहते?"

जुझारसिंह—हमारे गुरु का यह उपदेश है कि धर्म को छोड़ कर अगर स्वर्ग भी मिलता हो तो उसे नरक के बराबर समझना। इस लिये तुम्हारी बताई इस सब मौज को मैं नरक के बराबर समझता हूँ।

वज़ीर ख़ाँ—मान जाओ, अभी वक्त है। नहीं तो बड़ी भयानक मौत का सामना करना होगा। तुम्हारे लिये अब जल्लाद तैयार हैं।

जुझारसिंह—हम एकबार नहीं हज़ार बार कह चुके हैं कि हमें दीन इस्लाम मंजूर नहीं है। हम गुरु गोविन्दसिंह के बेटे हैं। हम खुशी खुशी मौत का सामना कर लेंगे पर हम अपना धर्म कभी नहीं छोड़ सकते—

सामना मौत का बे खौफ़ो ख़तर कर लैंगे,
हुक्म जल्लाद पै हम आगे को सर कर लैंगे।
मुँह से उफ़ तक न निकालैंगे परेशाँ होकर,
तीरे ग़म खायेंगे सीनाए सिपर कर लैंगे॥
फोड़ डालेंगे आँखों को जो निकला आंसु,
सीना फ़ौलाद का पत्थर का जिगर कर लगे।
न जवानी की तमन्ना न हवस पीरी की,
हमतो तिफ़ली में ही दुनियाँ से सफ़र कर लैंगे॥

क्या बिगाड़ेगा हमारा तू सितमगर बन कर,
क्या हमारा यह तेरे तीरों तबर कर लेंगे।
दूध बख्शेगी न माता हमें मरते दम तक,
शिकवाए जुल्म कभी मुँह से अगर कर लेंगे॥
सर उड़ाने का हमें खौफ़ दिलाता क्या है,
तू जो सर लेगा तो हम मौत को सर कर लेंगे।
हाँ क़लम करदे ज़ुबाँ शौक़ से खामोश हैं हम,
वर्नः नाले दिले क़ातिल में असर कर लेंगे॥
राहिते सारे ज़माने की मुबारिक हों तुझे,
ज़िन्दगी हम तो मुसीबत में बसर कर लेंगे।
सरपै तलवार चला धर्म के मैदान में तू,
हार जायेंगे जो हम आँखों को तर कर लेंगे॥
अलमें फ़ानी से हमें तू मिटा दे ज़ालिम,
नर्क को छोड़ के हम स्वर्ग को घर कर लेंगे।
मशअल नूरे सदाक़त को करेंगे रोशन,
ज़ुल्मते हिन्द को भी हम नूरे सहर कर लेंगे॥

वज़ीर खाँ—अरे लड़के! तू क्या पागल हो गया है जो बहकी बहकी बातें करता है? मुझे तुम दोनों पर बड़ा तरस आता है। क्यों नाहक मरते हो?

जुझार सिंह—नाहक तो तेरे ऐसे अधर्मी मरेंगे। हम तो अपने धर्म के लिये मरते हैं। यह नाहक नहीं। ऐसे ही मरने के लिये हमें गुरु का उपदेश है। क्या तुझे मालुम नहीं कि हम उस गुरु अर्जुन, देव की सन्तान हैं जिन्होंने कि धर्म पालन के लिये लोहे के गरम अङ्गार तवों पर बैठ अपने

कोमल शरीर पर जलती हुई रेत डलवाई थी और जिन्हों ने कि भड़क रही अग्नि पर रक्खे हुए देगचे में अपने शरीर को उबलवाया था ?

सुच्चानन्द—हुज़ूर ! आपको तो इन पर बड़ा तरस आता है, पर यह बालक छोड़े जाने लायक नहीं। देखिये अभी छोटे से ही हैं और हुजूर के सामने कैसी कलाम करते हैं।

नवाब वज़ीर खाँ पहले ही जल भुनकर ख़ाक हुआ बैठा था। सुच्चानन्द का यह कहना था कि वह एक दम गुस्से में बोल उठा--"है कोई ! जो इन मूज़ियों की अभी गरदन उड़ा दे।" भरे दर्बार में सब की गर्दनें नीची हो गईं। जब किसी ने कोई उत्तर न दिया तो शाशल बेग और बाशल बेग दो जल्लादों ने, जो किसी क़सूर के बदले नौकरी से हटा दिये गये थे, आगे होकर कहा कि अगर हमारे क़सूर मुआफ किये जायें तो हम तैयार हैं। वजीर खाँ ने यह बात मान ली। बस फिर क्या देर थी—

पापी निर्दयालु मत मन्द। गह खैंची शमशेर बिलन्द ॥
धीरज धरे गुरु सुत खरे। नहिं दीन मन कैसिहु करे ॥
प्रथम तबै तरवार चलाई। सिर जुझारसिंह दयो गिराई ॥
बहुरि दूसरो वार प्रहारा। फ़तेसिंह को सीस उतारा ॥
हा हा कार जगत महिं भयो। जै जै शब्द सुरन महिं थियो ॥
धन्य गुरु सुत धीरज धारी। धर्म हेत सिर दये उतारी ॥

धन्य ! धन्य !! ऐसी वीर आत्माओं को। सौ सौ बार धन्य उस आदर्श शिक्षा को जो यह वीर बालक अपनी जानें

कुर्बान करके हम लोगों के लिये स्थापित कर गए हैं। धिक्कार है ऐसे नराधम और हृदय शून्य नरःपिशाचों को जिन्होंने निस्सहाय बच्चों को यों मारा। इस समय फिर बड़े ज़ोर की आँधी आई, सूर्य्य को बादलों ने आ घेरा और यह दर्दनाक समाचार सारे सरहिन्द में हाहाकार के शब्दों द्वारा फैल गया। सब लोग नवाब वज़ीर खाँ को और दीवान सुच्चानन्द को कोसने लगे और बालकों की वीरता की तारीफ करने लगे।

धन्य धन्य गुरु देव सुत, तन को लोभ न कीन।
धर्म राख बल मों गए, दादे सों जस लीन॥
फ़तेसिंह जुझारसिंह, इह विधि तजे परान।
प्रगट भए तिह लोक में, जानत सकल जहान॥

नवाब वज़ीर खाँ जब उदास हो पागल सा बना महल में पहुँचा तो उसकी बेगम ज़ेबुन्निसा जिसको इस अत्याचार का पता चल चुका था बड़ा रुदन कर रही थी और नवाब से बोली—"आख़िर नहीं माने! मुझसे वायदा करके भी फिर अपनी ज़बान पर क़ायम न रहे और बालकों को क़त्ल करवा ही डाला। हाय! वह तो अल्लाह के बालक थे। तुमनें उनको दीवार में चिनवाकर बड़ा ही जब्र किया। अब अल्लाह का क़हर हमारे ऊपर ज़रूर बरपा होगा। हाय! तुमनें यह क्या किया। तुमनें मेरी एक भी न मानी। और अपने पाँव अपने हाथ ही कुल्हाड़ा मार लिया। अभी तो भूचाल आ रहा है, और यह आँधी चल रही है। अभी थोड़े समय में ही कोई ग़ज़ब का फ़रिश्ता उतरेगा "और हमारे इस देश की जड़ें उखाड़ डालेगा। हमें वह फिर यहाँ काहे को रहने देगा। न यह

महल रहेगा। न यह शहर। इस भूल में मत रहना कि सिक्खों की फ़ौज थोड़ी है। उन की आँच की चिनगारी अब ऐसी भड़केगी कि इस हमारे राज्य को जल्दी ही भस्म कर देगी।* मुझे ठीक यक़ीन है कि अब ऐसा ही होगा। हाय! मैं वह समा कैसे देख सकूँगी। हे अल्लाह! मैं अब यहाँ रह कर क्या करूँगी। मैं तो अब तेरे पास ही आती हूँ।" इस तरह विलाप करती हुई बेगम अपने पेट में कटार मारकर तड़फती मर गई।

दुखिया वृद्ध माता के पास जब यह दर्द भरी ख़बर पहुँची तब उसके दिल को तीर के समान छेदन कर गई। प्यारे पाठक! ज़रा सोचो, जिस धर्मात्मा स्त्री ने सारी उम्र सुखो-में व्यतीत की हो उस पर कष्ट पर कष्ट पड़ें और प्यारे लाडले पुत्र हाथों से छीन कर मारे जायँ, पास में कोई भी

---

*जो कुछ बेगम ने कहा वह अपने समय पर सब वैसे ही हुआ। सिक्खों ने बारह कोस में बसे हुए आलीशान सरहिन्द को ईंट ईंट बजा कर ऐसा उजाड़ा कि वहा आज एक छोटा सा ग्राम ही रह गया है। नवाब वज़ीर खाँ का सर गुरबख्शसिंह बन्दा बहादुर ने युद्ध में अपने हाथों से खुद काटा और क़ाज़ी मुसाहिबों को योग्य दण्ड दिया। सुच्चानन्द की नाक में नकेल डालकर उसको बाज़ारों में घुमाया गया और सबने उसकी चाँद में जूते मारे यहाँ तक कि वह मर गया।

शेर मुहम्मद खाँ मलेर कोटला के नवाब का राज्य बराबर जारी रहा और उसी खानदान के आदमी आज तक उस रियासत में राज्य करते हैं।

सहारा न हो, वैरियों के बुर्ज में इकेली बैठी उसकी क्या दशा होगी। उसका कोमल हृदय इतने कष्ट कहाँ झेल सकता था। इस भयानक खबर के सुनते ही आँखों के सामने अँधेरा आ गया। सरको चक्कर सा आया और वह मूर्छित हो धड़ाम से गिर पड़ी। गिरते ही जगत के उपकारों की ख़ातिर शरीर की दुखी आत्मा रिहा होकर "सच खण्ड" में प्रवेश कर गई और अपने पौत्रों से जा मिली।

टोडरमल नामक एक गुरु का सिक्ख वहाँ से कुछ दूरी पर रहता था। उसने जब यह दुर्घटना सुनी तो दौड़ा दौड़ा सरहिन्द आया, पर यहाँ तो सब काम तमाम हो चुका था। तब उसने माता जी और साहबज़ादों के शरीरों का चन्दन की चिता बनाकर संस्कार किया।

उधर रसोइया गंगाराम ब्राह्मण पर तुर्कों को धन का शक हो गया सो वह भी चंडालों के हाथों बुरी तरह सताया गया। ऐसे कष्टों में ही वह मर गया और धन भी पीछे से तुर्कों ने निकाल लिया। सच है—

"पापी के मारने को पाप महा बली है।"

२१–विजय ।

मकौर की हवेली से निकल दुश्मनों में खलबली मचा कर श्री गुरु गोविन्द सिंह जी और उनके साथी तीनों सिक्ख उस वैरियों के समुद्र में से साफ़ बचकर निकले जा रहे हैं। इस गड़बड़ में गुरु जी किसी और तरफ़ निकल गये और वे तीनों सिक्ख किसी दुसरी ओर बिछुड़ गये और अब आप अकेले ही चले जा रहे हैं। कोई दो कोस की दुरी पर आ आप एक स्थान पर बैठ गये। अब चाँद की चाँदनी फिर चमक निकली थी कि इतने में दो गूजर उधर से आ निकले और उन्होंने गुरुजी को पहिचान लिया। हैरान होकर कहा कि "आप तो घेरे में थे, आप यहाँ कैसे निकल आये?" गुरुजी ने उन्हें चुप रहने को कहा परन्तु उन्होंने कहा कि "नहीं, हम आपको पकड़वा कर इनाम लेंगे।" तब गुरुजी ने अपनी स्वाभाविक फुर्ती के साथ उनपर वार किया और उनको बोलने से असमर्थ कर दिया। आप फिर आगे चल पड़े। कुछ देर चल कर फिर दम लिया। बड़ी कठिनता से नंगे पाँव ही चले जारहे हैं। पैरों में छाले पड़ गये हैं। आज छः रातें और छः दिन बिना कुछ खाये पिये और बिना सोये या आराम किये जागते हुए महा भयानक युद्ध करते हुए बीत चुके हैं। अब शारीरिक शक्ति कुछ जवाब देने लगी परन्तु मन सावधान है। शरीर का उपाय झटपट कर लिया। एक

आक के बूटे का फूल तोड़ कर खा लिया और इसी के अमल से कितनी दूर तक और चले। अब माच्छी वाड़े का इलाक़ा आगया। पैरों में छाले पड़ जाने से यहाँ कुएं के पास एक बाग़ में ओट का स्थान देख वहीं बैठ गये। आलस्य ने और ज़ोर पकड़ा तब एक ईंट को सिरहाने रख उसी तरह लेट गये और जाड़ों की बर्फ़ सी ठंडी रात में सो गये। देखिये! वह महा पुरुष जिसके चलने के लिये मखमली फ़र्श बिछते थे, जिसकी सेवा में देवगण और फ़रिश्ते हाज़िर हैं, जिसका आगमन जगत के बड़े बड़े आदमी करते थे, आज देखिये वह एक ईंट का सिरहाना बनाए नीचे ज़मीन पर पड़ा है। पैरों में छाले पड़े हुए हैं। शरीर थकित है। ऊपर जाड़े से बचने के लिये कोई कम्बल तक भी नहीं है। पास कोई दर्दी प्यारा भी नहीं है। परिवार भी छोड़ आये हैं। अपने जिगर के टुकड़ों को टुकड़े टुकड़े करवा आये हैं। जो तीन सिक्ख साथ लाये थे वह भी गँवा आये हैं और अब अकेले ही विराज रहे हैं—

धन्य धन्य गुरुदेव जू, सुख दुख इनी समान।
हर्ष शोक जाके नहीं, राग न द्वेष महान॥

देखिये इस सिपाही मूर्ति को देखिये। इस महा योद्धा मूर्ति का दर्शन कीजिये। यह वही मूर्ति है जो कवियों के दर्बार लगाकर कविता के कटाक्ष सुनती थी और आप भी कविता कहती थी। यह वही मूर्ति है जो दुखियों के लिये पसीजती थी, यह वही महा रसिया मूर्ति है जिसकी क़दर पा जगत के गुणी आकर ओट लेते थे। हाँ! दर्शन करो इस मूर्ति का। अन्दर का किसको पता है इस महान मन वाले का जो

अपनी आँखों के सामने अपने पुत्रों को जूझते और मैदान में मरदे मैदान की तरह चलते देखकर शाबाश शाबाश कहता है। कौन इस गहरे गम्भीर अथाह दिल को समझे? हाँ! दर्शन करो और कहो "तुम धन्य हो साहब गुरु गोविन्दसिंह! तुम धन्य हो!! तुम धन्य हो!!!"

अब सवेरा हो आया और वे तीनों बिछुड़े हुए सिक्ख भी उसी बग़ीचे में आ पहुँचे। गुरुजी को वहाँ पाकर बहुत प्रसन्न हुए। गुरु जी जब उठे तो वह भी सिक्खों को देखकर बड़े खुश हुए और तीनों को गले लगाया। इस बग़ीचे का मालिक एक गुरु का सिक्ख था। इसको जब पता लगा तब गुरु जी को और सिक्खों को अपने घर ले गया और खूब टहल सेवा की।

उधर तुर्कों ने आस पास दूर दूर तक अपने कई आदमियों को गुरु जी की तलाश में छोड़ा हुआ था। वह ग्राम ग्राम में गुरुजी को खोजते फिरते थे और उनके कुछ आदमी अब माच्छीवाड़े में भी आ पहुँचे थे। इस समय दो घोड़ों के सौदागर ग़नीख़ाँ नबीख़ाँ जो कुछ समय गुरु जी के पास सेवा कर चुके थे वहाँ आये और गुरुजी को सारा हाल कह सुनाया और झट से गुरु जी को और सिक्खों को नीले वस्त्र पहिना गुरुजी को "उच्च का पीर" बनाकर वहाँ से निकाल कर दूर ले गये। गुरु जी पलँग पर बैठे थे और पलँग को आगे से ग़नीख़ाँ नबीख़ाँ और पीछे से, दो सिक्खों ने उठाया हुआ था और तीसरा सिक्ख और दुरा रहा था। इस तरह गुरुजी वहाँ से साफ़ निकल आये। कहीं किसी ने नहीं रोका। उलटा जहाँ

से जाते थे वहीं लोग सिजदा करते थे। जहाँ कहीं कोई पूछ बैठता था तो दोनों भाई ग़नीख़ाँ नबीख़ाँ कह देते थे कि आप उच्च के पीरान पीर हैं। इस तरह जब लाल नामक ग्राम के पास पहुँचे तो वहाँ एक चालाक तुर्क दिलेरख़ाँ ने उनको रोका। ग़नीख़ाँ नबीख़ाँ के कहने पर भी जब उसकी तसल्ली न हुई तब उन दोनों ने दिलेरख़ाँ से कहा कि आप क़ाज़ी पीर मुहम्मद साहब से इनके बारे में पूछ लें, वह इनको ख़ूब अच्छी तरह से जानते हैं। क़ाज़ी साहब को माच्छीवाड़े से बुलाकर पूछा गया तो—

सुन सैयद बिच सभा उचारयो, इह तौ पीरन पीर महान।
मुख ते कहैं सफल हुइ तूरन, करहिं निहाल रिसैं कर हान॥
उर अचर्ज महि इह अटकाए, तुम को खाप न कीन बखान।
कहैं वाक्य तो पृथी उलट दें, अति समर्थ अधिक बलवान॥

क़ाज़ी की गवाही देने पर दिलेरख़ाँ की तसल्ली हुई और वह डरा भी। गुरुजी से आकर माफ़ी माँगी, कुछ नज़र आगे धरी और आदर सहित विदा किया। इस तरह चलते चलते अनेक स्थानों से होते हुए गुरुजी हेहर ग्राम में पहुँचे और वहाँ कृपाल उदासी के स्थान में डेरा किया और ग़नीख़ाँ नबीख़ाँ को प्रेम को बख़्शिश करके विदा किया। यहाँ कुछ समय ठहर कर गुरु जी जगरामा में पहुँचे। यहाँ का चौधरी मुसल्मान राय कल्ला गुरुजी पर बड़ी श्रद्धा रखता था। इस लिये गुरुजी उसके यहाँ जाकर ठहरे। राय कल्ला ने बड़े आदर सहित ख़ातिर और सेवा की। सरहिन्द में छोटे साहबज़ादों के शहीद होने की ख़बर गुरुजी को यहीं मिली। जिस समय

यह ख़बर मिली थी उस समय गुरुजी वहाँ के बग़ीचे में बैठे अपनी कृपाण की नोक के साथ घास में एक खेल सा कर रहे थे। एक घास के बूटे की जड़ उखड़ चुकीथी। साहबज़ादों की ख़बर पाते ही गुरुजी के नयन कुछ देर के लिये बन्द हो गये फिर जो खुले तब ईश्वर का धन्यवाद किया और कहा कि "अब ज़ालिमों के ज़ुल्म का प्याला लबरेज़ हो चुका है और जैसे इस घास की जड़ उखड़ चुकी है वैसे ही इस ज़ुल्म के राज्य की जड़ भी अब उखड़ चुकी है।" गुरुजी के पास बैठे सारे आदमियों के राय कल्ला समेत इस समय आँसू थामे न थमते थे परन्तु गुरुजी ने उन सबको धैर्य दिलाया और कहा—"मेरे पुत्र मरे नहीं। मेरे पुत्र तुम सब ज़िन्दा हो। मैं श्री अकाल का पुत्र हूँ। तुम सब मेरे पुत्र हो। न रोओ उन दो के लिये जो सरहिन्द में साका कर गये हैं। न रोओ उन दो के लिये जो चमकौर में तेगें चमका गये हैं। तुम सारे मेरे अपने पुत्र हो। हज़ारों ही मेरे पुत्र आनन्द पुर की जंग में और आनन्दपुर निकलते समय वाली रात को शहीद हो गये हैं। मत रोओ उन केवल चार के लिये ही परन्तु उन सब के लिये ख़ुशी मनाओ। वह मेरे हज़ारों पुत्र मौत पर विजय पा गये। उन सब विजयी पुत्रों के लिये ख़ुशी मनाओ।"

राय कल्ला से विदा हो गुरुजी दीना पहुँचे। यहाँ एक सिक्ख ने एक सुन्दर घोड़ा ज़ीन समेत अर्पण किया। दीना में कितने समय तक गुरुजी शमीरे लखमीरे के घर ठहरे रहे। यहीं पर गुरुजी के पास औरंगज़ेब का एक और पत्र आया जिसमें कि गुरुजी को शाहंशाह के दर्बार में आने के लिये विनय थी। इस पत्र के उत्तर में गुरुजी ने अपना प्रसिद्ध

"ज़फ़रनामा" (विजय पत्र) लिख कर भेजा। ज़फ़रनामा बड़ी सुन्दर फ़ारसी कविता में है और इसमें औरंगज़ेब और उस के हाकिमों को क़समें तोड़ना और आनन्दपुर और चमकौर के युद्ध का संक्षिप्त वृतान्त दिया है। पत्र का जैसा नाम है वैसा ही लिखा हुआ है। वह वास्तव में एक "विजय पत्र" ही है। नीचे इसका संक्षिप्त रूप में थोड़ा सा अनुवाद दिया जाता है—

"ईश्वर सर्व शक्तिमान है और सब सुखों का देने वाला है, रक्षा करने वाला है, अद्वितीय है, बादशाह है, दुष्टों का नाश करने वाला है। हे औरंगज़ेब ! मैं ऐसे ईश्वर को साक्षी जान कहता हूँ कि मुझे अब तुम्हारी क़सम पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं रहा। तुम्हारी कुरान पर उठाई क़सम का भरोसा करना अपने आपको ख़राब करना है। पर जो हुमा के साये के नीचे हो उसका एक कौआ क्या बिगाड़ सकता है, जिसने एक सिंह की शरण ली हो उसको भला एक भेड़ बकरी या हिरण क्या पकड़ सकता है। ऐ औरंगज़ेब ! तू मत समझ कि तूने लड़ाई में मुझ पर विजय पाई है। नहीं नहीं, भला बता केवल चालीस आदमी और वह भी कई दिन के भूखे, क्या कर सकते हैं जब कि उन पर बेख़बर ही दस लाख का लश्कर आ टूटे। आख़िर मुझे भी लड़ाई में आना पड़ा क्योंकि जहाँ सब उपाय रह जायें वहाँ तलवार हाथ में ले लेना बिलकुल धर्मानुकूल है। * * * (इस बीच के पाठ के लिये देखिये पृष्ठ १६६) * * * ऐ औरंगज़ेब ! तू बड़ा अधर्मी है, तू अल्लाह को नहीं पहचानता है और न तेरा मुहम्मद साहब पर भरोसा है। जो धर्मी पुरुष होते हैं वह अपने

वचन के पक्के होते हैं। पर तुझे तो अपनी कुरान की क़सम की भी कुछ परवाह नहीं। अगर तुझे अपनी क़समों का ज़रा भी ख़्याल होता तो जब तेरे आदमियों ने धोखा दिया था तो तू झट मेरे पास दौड़ा आता और वायदे के मुताबिक़ सब काम ठीक करवाता। जब तूने मुहम्मद साहब को हाज़िर जान कुरान की क़सम उठाई थी तो तेरा यह फ़र्ज़ था कि अपने वचन को पूरा करता। अगर मुहम्मद साहब इस समय यहाँ हों तो मैं इस तेरी दग़ाबाज़ी को ज़रूर उनके सामने प्रकट करूँ।

"ऐ औरंगज़ेब! तू हिन्दुस्तान का बादशाह है पर अजब है तेरा इंसाफ़ और अजब हैं तेरे औसाफ़ और धर्म के ख़्याल। शोक! महा शोक!! सौ बार शोक है तेरी ऐसी बादशाहत पर। देख! योंही किसी का ख़ून करने के लिये तलवार न चला नहीं तो आसमान से एक गैबी तलवार तेरा भी ख़ून कर डालेगी। ग़ाफ़िल न हो और अल्लाह की पहचान। वह बादशाहों का बादशाह है, निडर है, दीनों को रक्षा करने वाला है और अहंकारियों को मारने वाला है। तुझे अक़्ल-मन्दी से काम करना चाहिये। क्या हुआ जो तूने मेरे चार पुत्र मार लिये हैं अभी मेरा पाँचवाँ पुत्र "ख़ालसा" एक बड़ा ज़हरीला साँप ज़िन्दा है। यह क्या बहादुरी है कि चिङ्गारियों को बुझाकर तेज़ आग को भड़काया जाय? कविराज फ़िर्दोसी ने क्या अच्छा कहा है कि जल्दी का काम शैतान का होता है।

"ऐ औरंगज़ेब! बादशाहों के बादशाह!! तू बड़ा भाग्यवान है जो कि तलवार का बहुत अच्छा चलाना जानता

है और घोड़े की सवारी करनी भी बहुत अच्छी आती है। रूप तेरा अति सुन्दर है, मन प्रकाशमान है। देशों का तू मालिक है, अमीरों का स्वामी है, प्रतापवान है और युद्ध में एक पहाड़ की तरह डटने वाला है। ऐ शहंशाह औरंगज़ेब आलमगीर! यह सब कुछ होते हुए भी धर्म तुझसे कोसों दूर है!!

"ऐ औरंगज़ेब! क्या तू ने उस पाक हस्ती (ईश्वर) की ताक़त को नहीं देखा जिसने कि ज़रा देर में एक आदमी से लाखों को क़त्ल करा डाला* ? आख़िर दुश्मन उसका क्या बिगाड़ सकता है जिसकी पीठ पर कि ईश्वर का हाथ हो। ईश्वर में वह ताक़त है कि वह ज़रूरत के समय दुश्मन को अन्धा कर देता है। चाहे एक के ऊपर लाखों ही क्यों न टूट पड़ें पर अगर ईश्वर उसका बचाने वाला है तो लाखों भी उसका एक बाल बाँका नहीं कर सकते। औरंगज़ेब! तुझे घमंड है अपनी सेना का, अपने राज्य का, अपने धन का पर मुझे उस ईश्वर पर गर्व है जिसके सामने यह राज्य, धन, लश्कर कुछ भी चीज़ नहीं हैं। बेवफ़ा काल-चक्र को देख कि किस तरफ़ जा रहा है। भूल में न रहना, यह जिस पर तुझे इतना घमंड है यह तो केवल चार दिन की सराय है और यहाँ चला चली का ही तमाशा है। कहाँ गए वह बादशाह

* उस रात की लड़ाई की ओर इशारा है जिस रात को गुरुजी चमकौर की हवेली से बाहर निकले थे और अपने एक तीर द्वारा ही वैरियों में ऐसी खलबली मचादी कि रात के थोड़े से घण्टों में ही लाखों का लशकर आपस में कट मर कर समाप्त हो गया। देखिये पृष्ठ १८१-१८३

कैखुसरो, और जमशेद ? कहाँ हैं हज़रत आदम और मुहम्मद ? कहाँ हैं फ़रेदूँ, वहमन और अस्फ़न्दयार ? दाराव और दारा जैसे बादशाह जिनकी कोई गिनती ही नहीं है, कहाँ गए वह सब ? सिकन्दर, तैमूर, बाबर, हुमायूँ, अकबर यह सब कहाँ हैं ? इनमें से एक भी अब दिखाई नहीं देता। ऐ औरंगज़ेब ! तुझे भी इसी तरह यहाँ से चला जाना है और इस तेरे राज्य का नामो निशान भी नहीं रहने का।"

यह पत्र गुरु जी ने भाई दयासिंह और धर्म्मसिंह के हाथ औरंगज़ेब को भेजा। औरंगज़ेब इस समय दक्षिण की ओर गया हुआ था और यह पत्र उसे अहमद नगर में मिला। इस पत्र ने उस पर एक जादू का असर किया। वह कार्य्य जो लाखों उपदेशों और नसीहतों से नहीं हो सकता था इस पत्र ने मिन्टों में कर दिया। औरंगज़ेब के हृदय पर एक दम चोट पड़ी और उसमें एक दम परिवर्तन हो गया*। जो हृदय पहले कठोरता से भरा पड़ा था वह अब नर्म और दयामय हो गया। जब शहंशाह के सारे पाप स्पष्ट रूप में उसके सामने आ खड़े हुए तो उसका हृदय काँप उठा और

* लग भग सब इतिहासकारों ने औरंगज़ेब के हृदय में अन्तिम समय में परिवर्तन होना लिखा है। पर किसी एक ने भी यह बताने की कोशिश नहीं की कि ऐसे कठोर दिल में इतना परिवर्तन ऐसी शीघ्रता से कैसे हो गया। वास्तविक बात यह है कि यह गुरुजी के "जफ़रनामे" का असर था जिसने कि औरंगज़ेब के हृदय में और उसके राज्य प्रवन्ध में अन्तिम समय में ऐसा भारी परिवर्तन किया। देखिये "रुक्केमाते आलमगीरी" फ़रमान नं० ७२ और ७३

उसी समय उसने कई शाही फ़र्मान जारी किये कि आगे के लिये कोई पुरुष भी बलात् मुसलमान न बनाया जाय और हिन्दुओं पर किसी प्रकार का अत्याचार न किया जाय। पंजाब के सारे हाकिमों के नाम भी शाही फ़र्मान जारी किये कि आगे को गुरु गोविन्दसिंह पर कोई आक्रमण न करे और वह जहाँ जैसे रहना चाहें रहने दिया जाय। भाई दयासिंह और धर्म्मसिंह को जो कि ज़फ़रनामा औरंगज़ेब के पास लाये थे उन्हें भी एक परवाना दिया कि वह बिला रोक टोक और बिला किसी प्रकार की हानि के सही सलामत् वापस लौट सकें † ।

औरंगज़ेब ने ज़फ़रनामा कई बार पढ़ा। पढ़ते पढ़ते उसके पेट में बड़ी सख़्त पीड़ा पैदा होगई, बड़े ज़ोर से बुख़ार चढ़ आया और ज़फ़रनामा पढ़ते पढ़ते ही वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

† मैकौलिफ़।

२२—"टूटी गाँठन-हार गोपाल।"

धर जब सरहिन्द के नवाब को पता लगा कि गुरुजी शमीरे के पास ठहरे हुए हैं तब उसने एक पत्र शमीरे के पास भेजा कि गुरुजी को फ़ौरन पकड़ कर सरहिन्द भेजदो परन्तु शमीरे ने उत्तर दे भेजा कि "मेरे पास तो मेरे दीन के हादी टिके हुए हैं। दीन के हादियों की इज़्ज़त वैसे ही है जैसे आप अपने पीर की करते हैं। मेरे गुरु किसी के द्रोही नहीं। वह सबसे समान प्यार करते हैं। इस लिये मैं मजबूर हूँ। क्षमा कीजिये।"

इधर गुरुजी ने यह सोचकर कि यदि यहीं युद्ध छिड़ पड़ा तो ग्राम के लोग बड़े तंग होंगे, आगे बनों की ओर कूच कर दिया। रास्ते में कई स्थानों से सूरमा और लड़ाई का सामान इकट्ठा करते हुए ढिलवाँ ग्राम में पहुँचे। यहाँ एक सिक्ख बड़े आदर से एक सफेद पोशाक गुरुजी के लिये लाया और उनसे विनय की कि "अब आपको यह नीले वस्त्र पहने रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, इन्हें त्यागकर अब आप यह सफ़ेद पोशाक धारण कीजिये।" गुरुजी ने तब वह श्वेत पोशाक पहनली और नीले वस्त्र उतार फाड़ फाड़ कर यह कहते हुए आँच में जलाने लगे—

"नील वस्त्र ले कपड़े फ़ाड़े, तुर्क पठानी अमल गया।"

फाड़ फाड़ कर नीले कपड़ों का जलाना क्या था कि मानों

गुरुजी ने मुग़ल राज्य को खण्ड खण्ड कर भस्म कर डाला। यहाँ से चल गुरुजी खिदराने पहुँचे। यहाँ एक सिक्ख ने आकर ख़बर दी कि वज़ीरख़ाँ इधर फ़ौज लिये चला आरहा है।

उधर पंजाब में आनन्दपुर, चमकौर और सरहिन्द के साके मशहूर हो चुके थे। घर घर और ग्राम ग्राम सिक्खों में इनकी चर्चा और पीड़ा फैल रही थी। वह सिक्ख जो आनन्दपुर में गुरुजी को पीठ दिखाकर वहाँ से निकले थे उन में से बहुत सारे तो वहीं मारे गये थे। जो कुछ बच कर अपने घर तक पहुँचे उनके घर वालों ने किसी ने उनको मुँह न लगाया। सबने उनको बड़ा धिक्कारा। किसी ने कहा—"जिस गुरु ने तुम्हें पशु से मनुष्य बनाया, पतित से वीर बनाया, उसका साथ ऐसे समय छोड़ आना! धिक्कार है तुम्हें!! जब तन, मन, धन अर्पण कर मन वच कर्म्म से गुरु के हो चुके तो फिर उनका साथ छोड़ देना और वह भी ऐसे संकट समय, यह तो नराधमों का काम है। जाओ जिधर से आये हो उधर ही चले जाओ और हमारे मुँह न लगो।" किसी ने कहा—"जाओ! हम तुम्हारे ऐसो नराधमों का मुँह देखना नहीं चाहते। गुरु गोविन्दसिंह जिसने कि अपना सर्वस्व केवल हम लोगों के उद्धार के लिये ही लगाया है, और जिसने सारे सुखों को केवल हमारे धर्म्म की रक्षा के लिये ही लात मारी है, उसे ऐसे टेढ़े समय छोड़ कर चले आना, यह तुमने महा पाप किया है।" बात क्या, जहाँ भी यह लोग जाते थे और जिस मित्र और रिश्तेदार से मिलते थे वही इनको बुरा कहता था। और जैसे जैसे लोगों को इनकी करतूत का पता लगा तो सब के सब ही चारों ओर

से इन पर फटकारों की बौछार डालने लगे । अब तो इन लोगों का यहाँ ठहरना दूभर हो गया, इससे सबने मिलकर आपस में विचार किया कि "हम से उतावली में बड़ा अन्याय हुआ है । ईश्वर-सदृश अपने गुरु देव का साथ छोड़कर हमने उनसे बड़ा अनुचित व्यवहार किया है । जिस तरह भी हो हमें यह कलंक का टीका मिटाना चाहिये और गुरुजी से चल कर माफ़ी माँगनी चाहिये । वह बड़े दयालु हैं और ज़रूर माफ़ करेंगे ।" यही सलाह पका कर यह सारे सिक्ख और कई सैकड़े और इकट्ठे हो गुरुजी की ओर चल दिये और गुरुजी से रमग्राणे और खिद्राने के बीच में मिले । इन सब सिक्खों ने मिलकर गुरुजी को सुलह कर लेने के लिये ज़ोर दिया, बड़ी दलीलें पेश कीं और कहा कि आप अब युद्ध न करें और औरंगज़ेब से सुलह करलें । गुरुजी ने सब बातें सुनकर उत्तर दिया कि "यदि तुम मेरे सिक्ख हो तो तुमको जैसा मैं कहूँ वैसा करना चाहिये न कि उल्टा मुझको ही शिक्षा देनी चाहिये । मुझे तुम्हारी किसी की ज़रूरत नहीं । तुम तो आनन्दपुर में मुझसे अलग होकर चले गये थे, अब तुम को किसने बुलाया है ? मुझे तो जैसे अकाल पुरुष की आज्ञा हो रही है मैं वैसे कर रहा हूँ । तुम्हारी जैसी मर्ज़ी हो तुम वैसा करो ।" यह कह कर गुरुजी अपनी नई छोटी सी सेना के साथ आगे को चल दिये और उन लोगों को वहीं छोड़ दिया ।

जब गुरुजी चले गये तब उन सारे सिक्खों में फिर आपस में विचार हुआ । भाई महाँसिंहजी बोले—

हम तो गुरु हित दै हैं प्रान। विच सँग्राम करहिं अरि हान ॥
तुर्क हजारहु गुरु के गिर्द। को इस समय तजहि हुइ मर्द ॥
एती भीर गुरू पर परी। है सद हैफ तजहिं इस घरी ॥
जीवन पाइ करहिंगे कहाँ। जो प्रभु काज न आई हैं इहाँ ॥

सारे सिक्खों में खूब जोश भर आया और सब इकट्ठे हो महाँसिंह की जत्थेदारी में जिधर को गुरुजी आगे निकल गये थे उधर को हो लिये। जब खिद्राने पहुँचे तो तालाब सूखा पाया। गुरुजी जब यहाँ पहुँचे थे तो तालाब को सूखा देख आगे कूच कर दिया था।

महाँसिंहजी ने खिद्राने का तालाब खुश्क पाकर अपने दल को वहीं रोक लिया और कहा कि पीछे जो वज़ीर खाँ की सेना चली आरही है उसके साथ यहीं युद्ध मचादेना चाहिये। इस तरह से गुरुजी को आगे सहीसलामत् निकल जाने का समय मिल जायेगा। यहाँ बेरियों का बड़ा भारी जंगल था। बड़ी बड़ी चद्दरें सिक्खों ने यहाँ इस तरह से डालदीं कि दूर से तम्बू दिखलाई पड़ने लगे। इनको देख वज़ीरखाँ ने समझा कि गुरुजी ने यहीं डेरा किया हुआ है सो एक दम हमला कर दिया। इधर सिक्ख भी तैयार थे और खूब जान तोड़ कर ऐसी बहादुरी से लड़े कि उस हमले को अच्छी तरह से रोका।

गुरुजी अपने थोड़े सिक्खों समेत आगे निकल गये थे। जब युद्ध होता देखा तो वहीं रुक गये और एक टीले पर जा चढ़े। उधर सिक्ख खिद्राने में दुश्मन के साथ बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे, इधर गुरुजी ने दुश्मन पर अपने अव्यर्थ संधान से

बाणों की वर्षा शुरू करदी । खिद्राने में लड़ रहे सिक्ख क्योंकि पहले गुरुजी को पीठ दिखा चुके थे इस लिये इस समय इतनी बहादुरी से युद्ध कर रहे थे कि उनके जोश का और वीरता का अन्दाज़ा लगाना कठिन है। इस तरह कई घण्टे युद्ध होता रहा और उन सैंकड़े सिक्खों में से मारते मरते केवल तेरह सिक्ख बाक़ी रह गये। गोला बारूद और तीर सब ख़तम हो चुके थे इस लिये यह तेरह इकट्ठे ही तलवारें सूँतकर दुश्मन दल पर जा टूटे।

चले वीर सोऊ बड़े उत्साहे। धरे शस्त्र सारे महाँ जंग माहे ॥
कढे म्यान तेगे गहं हाथ डाले। चलाकी करन्ते मुक्काले उक्काले ॥
झटा पट जुट्टे लटा पट्ट होए। सटापट्ट लुट्टे कटा कट्ट जोए ॥
फटा फूट फूटे चटा पट्ट मारे। खटा पट्ट खोटे हटा ठट्ट हारे ॥

इस तरह युद्ध करते हुए यह सब भी अपने शरीरों के टुकड़े टुकड़े करा अपने प्यारे सतगुरु पर और अपने देश पर से न्योछावर हो गये। तुर्कों का इतना नुक़सान हुआ कि कुछ हिसाब ही न था। पाँच हज़ार सेना में से केवल दो हज़ार ही रह गये थे। अब जब आगे से सिक्खो का कोई आदमी लड़ने के लिये न रहा तब वज़ीरख़ाँ ने समझा हमने फ़तै पाली है और गुरुजी भी यहीं मारे गये होंगे। इस लिये मुर्दा दल में उनकी तलाश होने लगी। जब बहुत खोज करने पर भी गुरुजी का पता न चला तब वज़ीरख़ाँ ने सेना को आगे ले जाने के लिये सोचा। जब आगे बढ़े तो तालाब ख़ुश्क पाया और बड़ा हैरान हुआ कि ये सिक्ख सूखे तालाब पर क्यों अपनी जानें दे गये। वज़ीरख़ाँ की फ़ौज

में इस समय "अल अतश—अल अतश" (प्यास—प्यास) होरही थी। वैसाख का महीना था। चिरमिटों और चर्सों में जो पानी अपने साथ लाये थे वह सब ख़तम हो चुका था। अब वज़ीरख़ाँ ने देखा कि अगर आगे जाते हैं तो पानी तीस कोस से पहले नहीं मिलेगा और अगर पीछे लौट चलें तो दस कोस पर ही मिल जायगा। इस बात को विचार पीछे लौटना ही ठीक समझा और फ़ते का डंका बजा लश्कर को ले पीछे को लौट दिया। पानी की तंगी से मुर्दों को दफ़नाने की भी फ़ुर्सत न मिली।

जब शाही लश्कर लौट गया तब गुरुजी टीले पर से नीचे उतर खिदराने आये और अपने कटे पड़े टुकड़े हुए हुए सिक्खों के पास गये। ख़ालसे का पिता अपने पुत्रों का दर्शन कर रहा है! यह वे लाड़ले पुत्र हैं जो गुस्ताख़ हो गये थे, वे अदब हो गये थे। बारी बारी से हर एक सीस के पास गुरुजी जाते हैं और उसे प्यार करते हैं और कहते हैं— "ओह वीर तुम धन्य हो। तुमने यों अपना खून बहाकर अपने अपराध को धो डाला है। तुम वास्तव में मुक्त जीव हो और तुम्हें अनन्त स्वर्ग प्राप्त होगा।" एक लाश सिसकती हुई दिखाई पड़ी, उस पर दृष्टि पड़ते ही गुरुजी दौड़कर उसके पास गए और पहचाना कि यह वही मेरा जत्थेदार महाँसिंह है। सीस को झट गोद में ले लिया। मुँह में पानी डाला। थोड़ी देर में महाँसिंह की आँखे खुलीं। अपने आपको सतगुरु की गोदी में देख पुकार उठा—"धन्य हो! धन्य!! यह कृपा!!! मेरा आना सफल हो गया।"

गुरुजी—बच्चा ! कुछ माँग लो जो इच्छा हो, समय थोड़ा है।

महाँसिंह—(आसू बहाते हुए) टूटी गाँठ लीजिये। वह बेदावे का काग़ज़ जो हम आपको आनन्दपुर में लिख कर दे आये थे, वह कम्बख्त काग़ज़ फाड़ दीजिये और टूटी गाँठ लीजिये।

गुरुजी बेदावे के काग़ज़ को अपने पास बड़ी सँभाल से रखते थे क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि मेरे पुत्र जो इस समय भूख-प्यास से आतुर हो मुझ से अलग हो रहे हैं, अवश्य एक दिन वापिस लौटेंगे। गुरुजी ने वह काग़ज़ अब जेब में से निकाला, महाँसिंह को दिखाया, उसने अपने हस्ताक्षर पहचाने। तब गुरुजी ने काग़ज़ को फाड़ टुकड़े टुकड़े कर हवा में उड़ा दिया और कहा—"लो ! बेटा महाँसिंह ! टूटी गाँठी गई।" महाँसिंह ने देख लिया कि काग़ज़ फाड़ दिया गया है। तब फिर श्री मुख से वाक्य हुआ—

जाहु महाँसिंह जहिं मम लोक। बसहु सदा कब नहिं तहि शोक॥
देकर प्रान कीन उपकार। तिस को फल इह भयो अपार॥

अब महाँसिह ने एक लम्बा सुख का साँस लिया और उसके नैन सदा के लिये मुँद गये।

मृतक शरीरों में एक माई का शरीर भी था। इसने भी लड़ाई में ढेर तुर्कों को मारा था और अब घायल हुई बेहोश पड़ी थी। गुरुजी इसको भी होश में लाये। इसने युद्ध का सारा वृत्तान्त गुरुजी को आप सुनाया। इसके

शरीर पर घाव बहुत मामूली थे इस लिये मरहम पट्टी करने पर वह जल्दी ही ठीक होगई। इसके बाद सारे सिक्खों की लोथें खोज कर गुरुजी ने एक जगह इकट्ठा करवा एक अँगीठा तैयार किया और अपना आशीर्वाद देकर अपने प्यारों के शरीर सफल किये।

जब चिता जल रही थी तो गुरुजी ने इन सारे शहीद हुए सिक्खों की बड़ी प्रशंसा की और इन्हें "मुक्ते" और "मुक्त वीरों" की पदवी प्रदान की और आज्ञा दी कि "यह तालाब अब खिदराना नहीं। आज से इन मुक्तों की याद में यह मुक्तसर कहलायेगा।" यह स्थान अब मुक्तसर के नाम से विख्यात है और यहाँ हर साल माघ संक्रान्ति को इन "मुक्तों" के स्मरणार्थ एक मेला लगता है।

२३—जंगल में मंगल ।
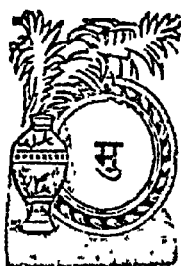
कों का अन्तिम संस्कार करके गुरुजी आगे को चल दिये । रास्ते में अमृत प्रचार और उपदेश द्वारा लोगों को कृतार्थ करते गये। जब छतिगाना ग्राम से आगे निकले तो वहाँ बैराड़ के लोगों ने आ घेरा और कहने लगे कि "अब के बारिश बिलकुल नहीं हुई। बड़ा बुरा हाल है। मेहर कीजिये।" गुरुजी इस समय घोड़े पर सवार थे। इन लोगों की बातें सुन आपके नैन आसमान की ओर हो गये और पवित्र और बली हाथ तीर कमान की ओर चले गये। एक तीर चिल्ले पर चढ़ाया और आसमान की ओर छोड़ दिया । झट आसमान गहरा होगया। बादल घिर आये। बूँदें पड़नी शुरू होगईं और बड़ी मूसलाधार वर्षा हुई ।

बरखा लागी परन घनेरी। गए सकल नर घर तिस बेरी ॥
गुरू सुजस को जात बखनाहि । मूढ़ मुनर जो इनहु न मानहि ॥
सकल देस महि भयो सुकाला । हर खेत पिख भए निहाला ॥
अन्न अनेक भाँत के होइ। जहिं कहिं गुरु प्रताप को जोइ ॥

यहाँ से आगे चल गुरुजी लक्खी जंगल में पहुँच गये और यहीं डेरा कर लिया । जंगल में मंगल होने लग गया। दूर दूर से प्रेमीजन गुरुजी के दर्शन के लिये आते थे। कथा कीर्त्तन उपदेश होने और कवियों के समाज भी फिर उसी तरह लगने शुरू हो गये ।

इस स्थान के पास ही एक सैयद फ़कीर की कुटिया थी।

यह बाहमी सैयद के नाम से प्रसिद्ध था और इसका असल नाम इब्राहीम सैयद था। इस फ़कीर के सहस्रों ही चेले थे और आप भी बड़ा तपस्वी था परन्तु उसके दिल की प्यास अभी बुझी नहीं थी और किसी कामिल मुरशिद की तलाश में था। गुरु जी के बहुत प्रसंग उसके कानों तक पहुँच चुके थे और अब जब उसे पता लगा कि गुरुजी लक्खी जङ्गल में ही हैं तब यहाँ गुरुजी के दर्बार में एक दिन पहुँचा। गुरुजी का दर्शन पाते ही इसका दिल शांत होगया और उसी समय अमृत पान करके ब्रह्म सैयद से अजमेरसिंह बन गया। इसकी चर्चा दूर दूर तक फैल गई और इतने बड़े भारी पीर के सिक्ख बन जाने से मुसलमानों में बड़ी हैरानी फैल गई।

यहाँ से आगे चल गुरुजी तलवंडी के नज़दीक आ पहुँचे। यहाँ कुछ जङ्गल सा था और ज़मीन बड़ी ऊँची नीची थी। इसको साफ़ करा कर गुरुजी ने यहाँ डेरे जमा लिये। इस स्थान से गुरु जी बड़े ख़ुश हुए और कहा कि—"यह आनन्दपुर का दमदमा है।" उसी समय से इस स्थान का नाम दमदमा साहब प्रसिद्ध है। यहाँ भी वही आनन्दपुर वाला साज सामान और ख़ालसई प्रचार आरम्भ हो गया। वही जगत रक्षा का काम और ख़ालसा आदर्श का प्रचार छिड़ पड़ा मानों आनन्दपुर ही मालवे में आगया।

गुरु जी के यहाँ रहने की ख़बर दूर दूर तक फैल गई। उधर से देहली में माता सुन्दरी जी और ब्रह्मज्ञानी माता साहिब-देवाँ जी को भी पता लगा तब उन्हों ने देहली से यहाँ के लिये कूच कर दिया। गुरु जी दर्बार में बैठे हुए थे जब कि यह दोनों मातायें वहीं पहुँचीं। चरण परसकर नैन भर आये

और इधर उधर दृष्टि दौड़ा सुन्दरी जी के मुँह से निकला—"हे जगत प्राण दाता ! मेरे चारों लाल…।" यह कहते गला रुक गया और सारी संगत पर ऐसा वैराग्य छाया कि सबके नैनों से जल धारा वह निकली। चुप चाप, सन्नाटा छा गया। कितने समय तक कोई भी नहीं बोला। गुरुजी के नैन मुँद गये। जब खुले तब सारी बैठी हुई संगत की ओर हाथ करके गुरु जी ने अपने पवित्र मुखारविन्द से उचारा —

इन पुत्रन के सीस पै, वार दिये सुत चार।
चार गये तो क्या हुआ, यह जीवत कई हजार॥

ठंड पड़ गई। पुत्र वियोग, दैवी पुत्र वियोग, एक नहीं चार पुत्र वियोग, इतने जुल्म कष्ट बेरहमी और दुःखों के मुँह पुत्र वियोग का कष्ट माँ के हृदय से गुरु जी की इस मेहर द्वारा शुक्र में पलट गया और एक ठंड सी पड़ गई। फिर गुरु जी हँसकर बोले—"ख़ालसा जी! शेर हो जाओ। तुम सब मेरे पुत्र हो। उन पुत्रों के ख़ून से पैदा हुए हो। तुम जगत में अमर पुत्र हो। ख़ालसा सदैव जीता रहेगा। तुम वह पुत्र हो जो जगत माता को सुख पहुँचाओगे।"

यहाँ अनेकों ही कौतुक होते रहे। एक दिन अमृतसर के पास की एक माई सुलक्षिणी पुत्र माँगने की इच्छा से यहाँ आ पहुँची। गुरु जी शिकार खेलने गये हुए थे। माई भी उधर होली और गुरु जी जिधर को जारहे थे उधर आगे हो रास्ता रोक खड़ी होगई और गुरुजी से एक पुत्र के लिये विनती करने लगी। गुरु-जी ने कहा—"तेरे कर्म में पुत्र नहीं लिखा है।" माई बोली—"वहाँ यहाँ कर्म लिखने वाले आप ही तो हो। अगर वहाँ नहीं लिखा था तो अब यहाँ लिख दीजिये।"

गुरु जी हँस कर बोले—"अच्छा, लाओ क़लम।" किसी ने दवात क़लम आगे की और गुरु जी हँसते हँसते माई के माथे पर एक का अक्षर लिखने लगे कि इतने में घोड़ा हिल गया और एक की जगह सात का अक्षर लिख गया। फिर तो कौतुकी गुरुजी बड़े हँसे और कहने लगे—"अच्छा! सातों ही सही।" बाद में माई सुलक्षिणी के गृह सात पुत्र जन्मे।

एक दिन यहाँ पास के तलवंडी नगर का डल्ला नामक सरकरदा गुरु जी के दरबार में आया। डल्ला अपने इलाक़े का एक तरह से राजा सा था। राजा तो नहीं पर राजाओं से कम भी नहीं था। आस पास के नगर वासी सारे ही योद्धा इसकी आज्ञा का पालन करते थे। तलवंडी में डल्ले का छोटा सा क़िला भी था। ठाट बाट भी अमीरों का सा और वह स्वयं आप सिपाही और जत्थेदार भी पूरा था। गुरुजी पर श्रद्धा रखता था और गुरु जी को वहाँ आये सुन हर एक तरह का प्रबन्ध उसने अपनी ओर से करा दिया। दरबार में पहुँच कर गुरु जी से साहबज़ादों की शहादत और आनन्दपुर के साकों पर बड़ी हमदर्दी प्रकट की और कहा—"हे सच्चे पिता! जो कभी आप मुझे भी इस युद्ध में याद करते तो मैं भी आपके साथ आ मिलता। श्रीजी के सूरमाओं ने तुर्कों के अच्छे दाँत खट्टे किये पर जो मेरे योद्धा भी साथ में होते तो तुर्कों को दलही डालते।"

गुरु जी — (मुस्कराकर) जो बीत गया समय सो बीत गया। अकाल पुरुष की जो इच्छा थी सोई हुआ।

डल्ला — सच है महाराज! परन्तु अरमान जी में ही रह गया। हम यहीं बैठे रहे और इतने इतने कड़ावर जवान

योद्धाओं के होते हुए हमारे प्यारे साहबज़ादे सन्मुख जूझते तीरों के आगे छलनी हुए। धिक्कार है हमारे जीने को!

गुरु जी — (मुस्कराकर) डल्ला! वे ज़िन्दा हैं। मरे नहीं। तुम्हारे सारे योद्धा देखने में तो बड़े बड़े कद वाले हैं परन्तु उनके दिल से अभी कायरता मरी नहीं। असल वीरता कुछ और चीज़ है। वह तुम्हारे योद्धाओं को प्राप्त नहीं।

डल्ला — महाराज! हम सब आपके चरणों के दास हैं। परन्तु बहादुरी तो शरीर के क़द और ताक़त से सम्बन्ध रखता है। मेरे योद्धा बड़े ही वीर हैं और ये एक एक अवश्य ही सौ सौ तुर्कों पर भारू होते।

यह बातें हो ही रही थीं कि लाहौर का एक सिक्ख कारीगर आया और सीस नवाकर एक अपनी बनाई हुई नई तरह की बन्दूक भेंट की। गुरुजी ने बन्दूक को उठाया। बड़े खुश हुए और डल्ले से कहा—"जाओ, अपने योद्धाओं में से दो आदमी ले आओ और पचास पचास क़दम की दूरी पर दक्षिण की ओर उस वृक्ष के आगे खड़े करदो। हम यह बन्दूक चला कर निशाना लगाकर देखेंगे कि इस सिक्ख की कारीगरी कहाँ तक पहुँची है।"

यह कह कर गुरुजी तो बन्दूक तैयार करने में लग गये और डल्ले का मुँह पीला पड़ गया। वह सोच में पड़ गया कि युद्ध में लड़कर तो जान दी जा सकती है परन्तु यहाँ केवल बन्दूक की परख के लिये ही अकारथ जानें कौन देगा? फिर भी अपनी सेना में गया और हर एक से कहा कि गुरुजी को दो आदमियों की ज़रूरत है, काम केवल बन्दूक की

परख करता है परन्तु एक भी राज़ी न हुआ और डल्ला अपना सा मुंह लेकर गुरुजी के पास वापिस आगया। तब गुरुजी हँसे और अपने एक सिक्ख सेवादार को जो पास ही था कहा—"देखो! वह दो सिक्ख जो डेरे में दिखाई दे रहे हैं उनको जाकर कहो कि एक सिक्ख बन्दूक के निशाने की परख के लिये चाहिये, जल्दी आओ। नाम किसी का मत लेना।" यह आज्ञा जिस समय दोनों सिक्खों ने सुनी उस समय वह दोनों अपना साफ़ा बाँध रहे थे। सुनते ही दोनों उठ दौड़े और गुरुजी के सामने आ पहुँचे। एकने कहा—"महाराज मेरा हक़ है" दूसरे ने कहा-"नहीं महाराज मेरा हक़ है।" दोनों सिक्ख इसी तरह से आपस में लड़ने लगे तब गुरुजी बोले—"क्यों लड़ते हो? हमने एक सिक्ख बुलाया था। दो क्यों आगये हो।" एकने हाथ जोड़कर कहा-"महाराज! सिक्ख ने नाम किसी का नहीं लिया इस लिये हम दोनों आगये। परन्तु मेरा हक़ पहले है क्योंकि पहले मैंने सुना।" दूसरे ने कहा—"महाराज! यह मेरा भाई मुझसे अधिक उद्योगी है। मैं चाहता हूँ कि इस समय मेरा शरीर ही हुज़ूर के काम आये और इसका शरीर किसी और उत्तम समय के लिये आपके चरणों में रहे।"

यह प्रेम और यह आज्ञापालन देख डल्ला हैरान और परेशान था कि ये आदमी हैं या कौन? गुरुजी ने दोनों सिक्खों को आगे पीछे खड़ाकर दिया और उस नई बन्दूक का निशाना लगाया पर चलाते समय बन्दूक का मुँह ज़रा ऊपर को कर दिया जिससे गोली किसी को नहीं लगी। इस प्रकार गुरुजी ने पल के पल में ही डल्ले की फ़ौज को कायर साबित कर दिखाया। कई तरह के विचार डल्ले के मन में उत्पन्न हुए परन्तु जब न

रहा गया तब गुरुजी के चरणों पर आ गिरा और तत्काल अमृत पान कर सिंह सज गया।

कुछ समय बाद डल्ले के पास सरहिन्द के नवाब का परवाना आया कि गुरुजी को उनके हवाले करे। डल्ले ने उत्तर दे भेजा कि गुरुजी मेरी जान के साथ हैं और इनको तुम्हारे हाथ कभी भी नहीं दे सकता।

यहीं गुरुजी ने कर्तारपुर वाले धीरमल्ल खत्री से श्रीगुरु अर्जुन देवजी की तैयार की हुई ग्रन्थ साहब की बीड़ मंगवा भेजी ताकि उसमें जो पृष्ठ श्रीगुरु तेग़ बहादुर जी की वाणी के लिये ख़ाली छोड़ दिये गये थे उन्हें लिखकर पूरा किया जाय। परन्तु मूर्ख धीरमल्ल ने ग्रन्थ देने से इनकार कर दिया और गुरुजी को कहला भेजा कि "यदि आप सच्चे गुरु हैं तो आप स्वयं और ग्रन्थ क्यों नहीं तैयार कर लेते?" यह उत्तर पा गुरुजी चुप हो रहे और संवत् १७६२ वि० में आश्विन बदी १ से अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा सारा ग्रन्थ ज्यों का त्यों भाई मनीसिंहजी को लिखवाना आरम्भ किया। जिस प्रकार श्रीगुरु अर्जुन देवजी ने यह ग्रन्थ भाई गुरुदास जी को लिखवाया था उसी प्रकार समाधिस्थ हो अब श्रीगुरु गोविन्दसिंह जी अपनी ईश्वरीय शक्ति द्वारा वही ग्रन्थ भाई मनीसिंह जी को लिखवा रहे थे। नौ महीने नौ दिन में ग्रन्थ ज्यों का त्यों अर्थात् जैसा श्रीगुरु अर्जुन देव जी ने लिखवाया था, लिखकर तैयार हो गया। कहीं किसी जगह एक मात्रा का भी हेरफेर नहीं पड़ा केवल एक जगह गुरुजी ने अपने आप "खुलासे" को बदलकर "ख़ालसे" कर दिया था। इसके सिवाय और कहीं कुछ भी फ़र्क न था।

ग्रन्थ के तैय्यार हो जाने पर फिर इसमें गुरुजी ने अपने पिता गुरु तेग़ बहादुरजी की वाणी चढ़ाकर उसे पूरा किया और यह बीड़ "दमदमे वाली बीड़" के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी बीड़ को गुरुजी ने अन्तिम समय गुरुआई की गद्दी दी थी और इस लिये आज कल यह "श्री गुरु ग्रन्थ साहब" के नाम से प्रसिद्ध है।

यहीं अनेकों कौतुक होते रहे। एक दिन भाई दयासिंह का पत्र आया और गुरुजी को संदेश दिया कि औरंगज़ेब को ज़फ़रनामा पढ़कर बड़ा दुःख हुआ और शरम भी खाई है। और सरहन्द के नवाब को लिख भेजा है कि आगे के लिये आपसे कुछ न कहा जाय और किसी तरह का भी युद्ध न किया जाय। यह बात सारे देश में फैल गई और बड़े बड़े नामी बख़्शिश वाले गुरुजी के दर्शनों को उमड़ उमड़ कर आने लगे परन्तु गुरुजी इस समय अपने किसी आशय में दक्षिण की ओर जाने की तैयारी में थे। इस लिये गुरुजी ने परिवार को देहली रवाने कर दिया और आप १७६३ वि० कार्तिक में दक्षिण देश की ओर चल दिये।

२१—बहादुर शाह ।

ब गुरुजी बघौर पहुँचे तब वहाँ आपको पता चला कि औरंगज़ेब मरगया है। औरंगज़ेब के छोटे बेटे आज़म ने बाप की वसीयत के खिलाफ़ अपने आपको बाप का जाँनशीन बना लिया। काँमबख़्श ने आज़म को शाहंशाह परवान कर लिया। सब से बड़ा लड़का मुअज़्ज़म इस समय काबुल में था। इसने काबुल में ही ताज पहन कर अपने आपको पातशाह बनाया और हिन्दुस्तान को कूच कर दिया। फ़ौज और लड़ाई का सामान आज़म के पास बहुत था इस लिये मुअज़्ज़म ने अपने मीर मुंशी भाई नन्दलालजी की सलाह से गुरुजी की सहायता माँगी। भाई नन्दलाल जी मुअज़्ज़म के एक और अहलकार हाकिम राय समेत गुरुजी को यहीं बघौर में मिले और मुअज़्ज़म का सन्देश कह सुनाया। गुरुजी ने कहा—"हाँ हक़ मुअज़्ज़म का ही है इस लिये राज्य उसे दिला देते हैं यदि वह यह वचन दे कि न्याय करेगा, धर्मशील होगा, दीनों का तास्सुब नहीं करेगा, ज़ालिम हाकिमों को दण्ड देगा और हमारे अपराधी अपराध निर्णय कर हमारे हवाले करेगा।"

मुअज़्ज़म ने यह सब बड़ी ख़ुशी से मान लिया। तब गुरुजी ने भाई धर्म सिंहजी की जत्थेदारी में बहुत सारी सेना उसकी मदद के लिये भेजी। आगरे के दक्षिण की ओर आज़म और मुअज़्ज़म का जंग हुआ। तीन दिन के घोर युद्ध के बाद आज़म अपने दोनों पुत्रों समेत मारा गया और मुअज़्ज़म की

जीत हुई। तब आगरे में पहुँचकर उसने अपने आपको शहंशाह 'बहादुरशाह' स्थापन किया।

बहादुरशाह ने गुरुजी को अपनी जीत का मुख्य कारण जान उन्हें आगरे बुला भेजा और अपने पास बड़े सत्कार से ठहराया। अपने कितने बहुमूल्य हीरे जवाहरात और बीस लाख की अशर्फ़ियाँ गुरुजी की भेंट कीं और उनकी सहायता के लिये बड़ा कृतज्ञ हुआ। नित्य प्रति वह गुरुजी के पास कृतज्ञता जतलाता और कहा करता कि "आप ही की बदौलत यह शाहंशाह की पदवी मुझे नसीब हुई है। मेरे लायक़ भी कुछ सेवा हो तो बताइये।" उसके बार बार कहने पर एक दिन गुरुजी ने उससे कहा—"अच्छा, यदि आप मुझे कुछ बदला दिया चाहते हैं तो सरहिन्द के नवाब वज़ीरखाँ को मेरे सुपुर्द कर दीजिये। उसने दो मासूम बच्चों को दीवार में चिनवा कर और हज़ारों बे गुनाहों को मार कर बड़ा ही ज़ुल्म किया है। हम उसे इस सब का योग्य दण्ड दिया चाहते हैं।"

गुरुजी के यह वचन सुन बहादुरशाह बड़े सोच में पड़ गया। उसे यह डर था कि अपने राज्य के एक मुख्य नवाब को इस प्रकार गुरुजी के हवाले कर देने से कहीं मेरे राज्य में ग़दर न मचजाय। इस लिये उसने गुरुजी से कहा—"महाराज! आपका हुक्म मानने में मुझे कुछ उज़्र नहीं है। ख़ाली इतना ख़्याल ज़रूर होता है कि अभी मेरा राज अच्छी तरह से नहीं जमा है और अभी से अपने एक बड़े सूबेदार को आपके हवाले कर देने से हो सकता है कि राज में ग़दर मच जाय। इस लिये मुनासिब यह है कि आप एक साल भर की मुहलत

मुझे दें। इतने वक्त में मेरा सारा इन्तज़ाम ठीक हो जायगा और फिर आप जैसे हुक्म करेंगे वैसे ही किया जायेगा।"

बहादुरशाह के यह चातुरी पूर्ण वचन सुन गुरुजी समझ गये कि यह सब टालमटोल की बात है इस लिये उन्हों ने कहा-"बादशाह सलामत्! यह बादशाही हमेशा नहीं रहती। इसके चले जाने के डर से ईसाफ़ से मुँह मोड़ना सच्चे और धर्मी बादशाहों का काम नहीं है। ख़ैर, कोई हर्ज नहीं, अगर तुमने इस वक्त मेरा मन नहीं रक्खा। वह वक्त अब दूर नहीं है जब कि बिना तुम्हारी किसी तरह की मदद के मेरा एक बन्दा ही अकेला सब ज़ालिमों का नाश करेगा और जिस सूबा सरहिन्द और दूसरे नवाबों से तुम इतना डरते हो उन सबको वह अकेला ही ज़रा देर में पकड़ कर यमलोक पहुँचायेगा।"

यह कह कर गुरुजी बहादुरशाह से विदा हुए और फिर उसी तरफ़ दक्षिण देश की ओर जिधर पहले जा रहे थे चल दिये।

२५—बन्दा बहादुर ।
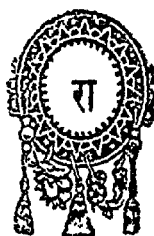
रास्ते में कितने ही कौतुक करते हुए और अपनी अमृत वाणी से सदुपदेश देते हुए गुरुजी १७०७ ई० श्रावण मास में गोदावरी के किनारे नन्देड़ मुकाम पर पहुँचे। इस स्थान को पहले नौनन्द डेरा कहते थे क्योंकि यह पुरातन समय का नौ ऋषियों के रहने का स्थान बताया जाता है। यहाँ एक माधोदास बैरागी का आश्रम बना हुआ था। गुरुजी वहाँ गये और अन्दर के साधुओं से पूछा कि तुम्हारे आचार्य कहाँ हैं। उन्हों ने कहा कि वन में कहीं समाधि लगाकर बैठे होंगे।

गुरुजी—हम आपके आश्रम में आये हैं। भूख सी लग रही है। कुछ भोजन दीजिये।

साधु—भोजन तो तैयार है परन्तु स्वामी जी नहीं आये। वे अचैं तो पाछल किसू को मिले।

गुरुजी—स्वामी जी के मिलने आयों को तो खिला दीजिये।

साधु—ऐसा करना हमारे अधीन नहीं।

गुरुजी—(अपने सिक्खों की ओर देखकर) रामसिंह ! भोजन तैयार करो।

यह कहकर गुरुजी घोड़े पर से उतरे और अन्दर जाकर माधोदास के पलँग पर जा विराजे। उधर सिक्ख भोजन तैयार करने लग गये। कुछ बाहर जाकर फल वग़ैरह ले आये और दो ने एक बकरे का शिकार किया और पल की

पल में ही भोजन तैयार करके पहले गुरुजी को छकाया और फिर आप छका।

आश्रम के साधु देख देख कर बड़े आश्चर्य में हो रहे थे कि वैरागी का आश्रम एक महान वैष्णव स्थान और यहाँ मांस पकाया और खाया गया! और स्वामी जी के पलँग के ऊपर दूसरे का विश्राम !! दो साधु किचकिचाते हुए जंगल में दौड़े गये और माधोदास को खोज सारी व्यथा कह सुनाई। वह सुनकर बड़ा लाल पीला हुआ और कहा—"अच्छा! दिखायें बकरे खाने का स्वाद!!" यह कह कर वह खड़ा होगया और अपने योग बल और अन्य शक्तियों द्वारा उस पलँग को जहाँ गुरुजी विराज रहे थे उलटाने की कोशिश करने लगा।

उधर गुरुजी से एक सिक्ख ने जो इस समय गुरुजी के पैर दबा रहा था कहा—"महाराज! भूचाल तो नहीं आया! पलँग कुछ हिलता सा मालूम देता है।"

गुरुजी—भूचाल नहीं। साधुजी पलँग उलटाने को ज़ोर लगा रहे हैं।

सिक्ख—कैसे?

गुरुजी—यह साधु मन की एकाग्रता का अभ्यासी है और दुनियाँ की अनन्त अच्छी बुरी शक्तियों और व्यक्तियों पर उसे क़ाबू है और अब वह अपनी सारी साधी हुई शक्तियों को इस पलँग के उलटाने में लगा रहा है।

इतने में पलँग फिर हिला और सिक्ख बोला—"जी! यह फिर हिला।"

गुरुजी—चिन्ता मत करो । पलँग गिरेगा नहीं। ईश्वर के नाम में रँगे हुओं पर कोई वार नहीं चल सकता ।

सिक्ख—फिर जी क्या होगा ? पलँग फिर हिलता है।

तब गुरुजी ने एक तीर उठाकर पलँग पर रक्खा और कहा—"अच्छा, अब हिलेगा भी नहीं । हिलाने वाला अपनी सारी शक्ति को लगाकर अपने आप हार जायगा।"

अब गुरुजी विराजे रहे और पलँग फिर नहीं हिला। माधोदास जब अपनी सारी शक्ति लगाने पर भी पलँग उल्टाने में सफल न हुआ तब वह अपने साधुओं समेत दौड़ा हुआ आश्रम की ओर आया । आने पर आगे से आश्रम के सारे साधुओं ने फ़रियाद की। माधोदास ने कहा—"पहले तो कभी कोई नहीं टिका, जो आया सो मुँह की खाकर गया। परन्तु यह कुछ वली मालूम पड़ता है। अच्छा, अभी देखते हैं।" यह कह कर वह जब आगे बढ़ा और कुटिया के दर्वाज़े के पास पहुँचा तो वहाँ का वहीं खड़ा रह गया। शकल बिलकुल पत्थर सी बन गई और धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। इसे गिरा देख सिक्खों ने इसको उठा लिया और मुँह में पानी डाल कर और पँखा आदि करके उसे होश में लाये। अब माधोदास की यह हालत होगई थी जैसे कि एक निचुड़ा हुआ नीबू होता है। बिलकुल दुर्बल और कमज़ोर। एक सिक्ख के कन्धे से सहारा लेकर उठा और गुरुजी के पास पहुँच उनके चरणों में अपने सीस को टिका दिया।

गुरुजी—तुम कौन ?

माधोदास को गुरुजी के चरण छूते ही कुछ बिजली का

सा असर मालूम पड़ा* और उसे अपने अन्दर एक आश्चर्य जनक प्रकाश दीख पड़ा। गुरुजी के पूछने पर वह बड़े नम्र भाव और प्यार से बोला—"जी! मैं? मैं हूँ...जी मैं हूँ...आपका... आपका...बन्दा...बन्दा...आपका बन्दा...।"

माधोदास वास्तव में एक राजपूत घराने का पुत्र था। और इसका पहला नाम लक्ष्मण देव था। इसके बाप का नाम रामदेव था जो कि हिमालय पर्वत की पूंछ रियासत के राजौरी नगर में एक जागीरदार था। लक्ष्मणदेव बचपन से बड़ा चञ्चल और उपद्रवी था और रोज़ मार पीट और उठा-पटक किया करता था।" जब ज़रा बड़ा हुआ तो जंगलों में शिकार खेलने जाया करता और लूट-खसोट

* भाई प्रभुदयाल जी पेशावर में एक वकील थे जो ऐबटाबाद वाले सरदार रोचाराम के सुपुत्र थे। आपने बताया था कि जब वह चित्राल के इलाके में किसी काम से गये थे तो वहाँ उन्हें एक पठान मिला जिसने बताया कि मेरा बाबा महाराजा रणजीतसिंह के पास नौकर था। मेरे बाबा ने अपनी आँखों देखा एक समाचार सुनाया था जो इस प्रकार था—एक दिन महाराजा रणजीतसिंह जी कीर्तन सुनकर उठे तो किसी प्रेम में आज्ञा दी कि कोई ऐसा पुरुष मेरे राज्य में खोजो जिसने श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के आप दर्शन किये हों। आज्ञा होने पर सारे देश में तलाश आरम्भ हो गई। आखिर एक वृद्ध निहंगसिंह मिला जिसकी आयु ११५ वर्ष की थी। इसको पीनस में बिठा कर लाये। जब महाराजा जी ने श्री गुरु गोविन्दसिंहजी के दर्शनों का हाल पूछा तो उसने बताया कि उनका शरीर पतला और लम्बा था पर बलकार अत्यन्त था। आँखों का तेज झेला नहीं जाता था और उनके चरणों में कोई ऐसी शक्ति थी कि

करना इसका रोज़ का कार्य्य बन गया। इसके भय से आस पास का सारा इलाका काँपा करता था। घोड़े की सवारी करना, तीर चलाना, तलवार फिराना, गोली मारना, पटेबाज़ी आदि, इन सब बातों का इसे बेहद शौक़ था और इन सब में इसने बड़ी प्रवीणता हासिल कर ली थी। एक दिन शिकार खेलते हुए इसने अनजान में एक गर्भवती हरिणी को मार डाला और हर प्रकार का यत्न करने पर भी हरिणी के दोनों बच्चे उसकी आँखों के सामने तड़प तड़प कर मर गये। इस घटना से लक्ष्मण देव के दिल को ऐसा सदमा पहुँचा कि उसके कठोर मन में वैराग्य उदय हो आया और वह अपने उद्यमों से उदासीन हो सन्त महातमाओं का संग करने लगा। इसी सत्संग में एक वैरागी साधु जानकी प्रसाद

जब कोई माथा उनपर टिकता अथवा सर चरणों का स्पर्श करता तो एक बिजली की सी लहर उस मनुष्य के अपने शरीर में पैदा हो जाती थी और यह झनझनाहट कोई ऐसी छिड़ती थी जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि जिस शरीर के साथ हम छू रहे हैं वह बिजली का बना हुआ है और किसी पिण्ड का नहीं। निहंगसिंह कहता था कि मेरा और सारे सिंहों का यह नित्य का अपने आप पर परीक्षा किया हुआ अनुभव था। यह कहते हुए निहंगसिंह वैराग्य में जल पूरित हो गया। प्रभुदयाल जी बताते थे कि मेरे साथ बात करता वह पठान भी इसी तरह अदब में नैन भर लाया और कहने लगा—मेरा बाबा जब यह बात सुनाया करता था तो उसका भी यही हाल हो जाया करता था। प्रिय पाठक! यह आँखों देखी और अपने आप पर परीक्षा की हुई गवाही श्रीगुरुजी के चरण-स्पर्श के प्रभाव की हम तक पहुँची है—"कलपीवर चमत्कार।"

के मिलने पर इसने घर बार त्याग वैरागी का वेश धारण कर लिया और अपना देश छोड़ देशाटन को निकल पड़ा। इसी समय से इसका नाम माधोदास पड़ गया। कई साधु फ़कीर मिले, कई तप साधन किये, अंत में तीरथ यात्रा करता हुआ नासिक पहुँचा और वहाँ अधिक समय तक तप करता रहा। यहाँ कई बरसों बाद एक लूनी नामक योगी से मेल हुआ। इसने माधोदास की तपवृत्ति को देख इसको योग मार्ग के रास्ते में डाला। प्राणायाम, तन्त्र विद्या आदि शिक्षाएँ बताईं। योग मिलने पर माधोदास के मन ने सिद्धियों की ओर पलटा खाया। सिद्धियों के रास्ते कुछ एकाग्रता का असर देख माधोदास वीराराधन में लग गया। इस विद्या के साधन करते हुए माधोदास को कुछ प्राप्ति होगई और वीराराधन आदि सिद्धियों में सम्पूर्ण होकर चल पड़ा और गोदावरी के किनारे किनारे चलता नन्देड़ आ निकला। यहाँ इसकी विभूति का कुछ यश फैल गया और इसने नदी किनारे डेरा जमा लिया। दूर पास से कुछ लोग आकर इसके चेले भी बन गये और इस प्रकार इसकी कुटिया में एक आश्रम बन गया। इसका नाम दूर दूर तक फैल चुका था और इसको भी अपनी शक्ति पर बड़ा अभिमान हो गयाथा परन्तु जब गुरुजी के सामने इसकी शक्तियों ने कुछ काम न किया तब गुरुजी के चरणों पर आपड़ा और—

हाथ जोड़ विनय साथ प्रेम पाथ नाय माथ,
कहेउ मैं तो आपका हूँ बन्दा सुन लीजिये।
कीये अपराध जोऊ पूर्व अगाध मैंने,
साध हैं दुखाये छमो आप सो करीजिये।

लिहे आप रघुनाथ आदे आज तुम्हे नाथ,
　　कीजिये सनाथ हाथ माथ पै धरीजिये ।
देहु उपदेश वेग हारक कलेश शेष,
　　कीजो निज शिक्ख मोहि शिक्षा हु दीजिये ।

तब गुरुजी ने प्रसन्न होकर उस विभूतियों के रंग में अटके हुए योगी को ऊँचा उठाया और केवल ईश्वर के प्यार और रस रंग का रसिया बना दिया । उसको अमृत पान कराया और उसका नाम माधोदास की जगह गुरबख्शसिंह रक्खा । क्योंकि माधोदास ने अपने आपको गुरुजी का बन्दा कहा था और गुरुजी का बन्दा कहलाने में ही उसे बड़ी खुशी होती थी इस लिये तब से बन्दा ही उसका प्रसिद्ध नाम हो गया और आज तक भी बन्दा बहादुर के नाम से ही प्रसिद्ध है ।

बन्दा बहादुर को अब सिक्खों में रह कर पंजाब के सारे हाल मालूम हुये । गुरुजी के कारनामों का पता चला । साहबजादों की अकह घटनाएँ और पन्थ के क़त्ल किये जाने के दुखड़े सुने । यह बातायें सुनते सुनते—उसके दिल में भी जोश आया और चाहा कि इस महान् दाता गुरु की कोई सेवा करूँ जिसने मुझे नाटकों चेटकों से निकाल ब्रह्म साक्षात्कार किया है और वह मार्ग बताया है जिसमें सहज ही योगी होकर राजयोग कमा सकते हैं । इस चाह से प्रेरित हो बन्दे ने एक दिन गुरुजी से कहा—"मैं बन्दा आपका, मुझे कोई सेवा सौंपिये ।"

गुरुजी—बन्दा ! हमने तुमको बुलन्द किया है । तुम बन्दा नहीं, बुलन्दा हो । क्या तुम युद्ध करने को तैय्यार हो ?

बन्दा—जो आज्ञा हो। मैं आपका बन्दा हूँ। जो आज्ञा होगी सो बजा लाऊँगा।

तब सतगुरुजी पसीजे और बन्दे के सिर पर प्यार दिया। अपना धनुष उसके कन्धे पर पहना दिया और पाँच तीर दिये और कहा—"देखो! यह तुम्हारी शक्ति है जो तुमको बख़्शी है। यह ओट है जो समय पड़ने पर काम आयेगी। तुम अब मद्र देश की ओर जाओ। ख़ालसा को जत्थे बन्द करके ज़ुल्म का नाश करो। और बन्दा बुलन्दा यह बातें ध्यान में रखना कि जो कार्य करो पाँच सिक्खों की सलाह से करो। उनकी सलाह के विरुद्ध कुछ नहीं करना और हमने तुम्हें राजनैतिक जत्थेदार बनाया है, गुरु नहीं, इसलिये पन्थ ख़ालसे का गुरु बनकर मत बैठना और न ही अपना पन्थ किसी और नाम से चलाना। सच का त्याग मत करना और जती रहना। विवाह नहीं करना। जो इन आज्ञाओं का दृढ़ता से पालन करोगे तो तुम्हारा तेज बढ़ेगा और जीत तुम्हारे पीछे पीछे फिरेगी। जब कोई समय आ बने और कोई पेश न जाय तब इन तीरों में से एक को चलाना, तुम्हारी जीत होगी। यदि इन आज्ञाओं का पालन नहीं करोगे तो दुश्मन तुम पर फ़ते पायेगा और तुम महान् दुःख और कष्ट के पिंजरे में पड़ जाओगे।"

इस प्रकार बन्दा बहादुर को फ़ौजी जत्थेदार स्थापन कर उसको पंजाब रवाना कर दिया। उधर वहाँ पहुँच बन्दे ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया और इधर गुरुजी नन्देड़ में ही ठहरे रहे और अपने ईश्वरीय कौतुकों में लगे रहे।

२६—अन्तिम कौतुक।

बन्दा बहादुर को पंजाब की ओर भेज गुरु जी ने वहीं नन्देड़ में निवास कर लिया। थोड़े समय में ही यहाँ पर एक नगर सा बस गया जिसका नाम गुरुजी ने अविचल नगर रक्खा। यहाँ फिर वही आनन्दपुर के कौतुक ज्यों के त्यों होने आरम्भ हो गये, वही अमृत समर के शान्तरस के दीवान, वही लंगर, वही शिकार, वही कथा, कीर्त्तन, उपदेश आदि, मानों आनन्दपुर अब सतलज नदी के किनारे से उठकर यहाँ गोदावरी नदी के तीर आ पहुँचा हैं। यहीं आस पास गुरुजी के अनेक कौतुकों के स्मारक में अनेक स्थान "हीराघाट," "शिकार घाट" आदि अब तक प्रसिद्ध हैं।

एक दिन गुरुजी अपने कुछ सिक्खों समेत एक नाव पर बैठ नदी के पार गये। गुरुजी उस नाव-वाले को जब उसकी मज़दूरी देने लगे तब वह दोनों हाथ जोड़ बड़ा नम्र हो बोला—

थारी औ हमारी कछु जात न निआरी नाथ,
खेवटी को काम जरा नीके कै विचारिये।
भव सिन्ध तारवे को खेवट कहाएँ आप,
नदी पार तारवे को दास यह निहारिये॥
खेवट ही आप हो औ खेवट ही जानो मोहि,
दैके मजूरी नाथ मोहि न लजारिये।
मोरे घाट आये तो है पार ही हौं कीयो नाथ,
थारे घाट आऊँ मोहे पार वा उतारिये॥

गुरुजी यह प्रेम और श्रद्धा देख बड़े प्रसन्न हुए और उसे "सचखण्ड" निवास का वरदान दिया।

यहीं अविचल नगर में बहादुरशाह भी दक्षिण देश का दौरा करता हुआ गुरुजी के दर्शन को आया और बहुत कुछ भेंट पूजा चढ़ा एक बहुमूल्य हीरा भी अर्पण किया और कई दिन तक गुरुजी के पास ठहरा रहा।

सरहिन्द के नवाब वज़ीरख़ाँ को बहादुरशाह और गुरुजी दोनों की आपस में मित्रता बड़ी खटकती थी। उन दिनों का यह रिवाज था कि जिसका जो दोषी होता था वह उसके या उसके परिवार के हवाले कर दिया जाता था ताकि वह उससे अपना मनमाना बदला निकाल ले। जिस समय वज़ीरख़ाँ ने गुरुजी के छोटे साहबज़ादों को क़त्ल करवाया था उस समय शहंशाह औरंगज़ेब था। पर इस समय शहंशाह बहादुरशाह था और वह गुरुजी का मित्र होने के कारण वज़ीरख़ाँ को हरदम यह डर सवार रहने लगा कि कहीं बहादुरशाह मुझे गुरुजी के हवाले न करदे, उसने अगर ऐसा कर दिया तो गुरुजी जिनके बच्चोंको मैंने बड़ी बेरहमी से मारा है, न मालूम मेरा क्या हाल करेंगे। इसी बीच में उसे यह भी पता चल गया कि गुरुजी ने बहादुर शाह से मुझको अपने हवाले करने के लिये कहा था और बहादुर शाह ने एक साल के बाद मुझे उनके हवाले कर देने का उन्हें वचन दिया है*। अब तो वज़ीरख़ाँ को खाना पीना सब भूल गया। उसने एक पठान को बहुत सारा धन आदि देकर इस बात के लिये तैयार किया कि वह नन्देड़ जाये और गुरुजी को इस साल-

* देखिये पृष्ठ २३०

भर के समय से पहले ही इस प्रकार होशयारी से क़त्ल कर डाले कि किसी को यह पता न चले कि किसने ऐसा किया और क्यों।

यह दुष्ट पठान देहली होता हुआ नन्देड़ पहुँचा। वहाँ पहुँच अबिचल नगर में गुरुजी के दर्बार में आया और—

घरी दोइ के तीन कै दैन मीठे। नहीं घात लागी घने लोग डीठे॥
बिदा होइ कै धाम को बेग धायो। गये दिवस दो तीन सो फेरि आयो॥
घरी तीन कै चार कै बैठ ऐसे। नहीं घात लागी चला अन्त तैसे॥
इसी भाँत सों दइत केतान आयो। नहीं घात लागी नहीं दाव पायो॥
घनी बार आया लीठ भेद सारा। समा स्याम का काम को यों बिचारा॥
दिनं एक स्यामं समय दुष्ट आयो। सुनी साहिबं अन्त तोंको बुलायो॥
ढिगं जाइ बैठा कि प्रसाद दीना। गही मुष्टि लै दुष्ट मुख माहिं दीना॥
नहीं सिंह कोई तहाँ पास औरे। रहे एक ही ऊंघ सोई गयोरे॥
इते मैं प्रभू आप बिसराम लीना। गही दुष्ट जमधार उर वार कीना॥
कियो वार ऐसा कि दूजा लगायो। लगे और के आपना वार लायो॥
कियो वार एकै नहीं और कीना। लिया मारि कै दुष्ट जाने न दीना॥
करी आप आवाज है अन्त कोई। चहूँ ओर ते आइ देखन्त सोई॥
भजे ताहि साथी घने सिंह धाए। लिये मारि दोनों नहीं जान पाए॥
भयो शोर आपार तिह ठौर ऐसे। प्रलै काल की घोर सुनियन्त जैसे॥
किनी ना निहारा प्रभू घाव लागे। रहे झूम कै जु आन दीने न आगे॥
तबै आन सिंहान उर हाथ लाए। लगे घाव कारी तबै दृष्ट आए॥
कियो शोक सिंहान दुइ हाथ मारे। कहा खेल कीनी कहो करन हारे॥
तबं साहिबं बैन इह भाँत कीने। करी मोहि रक्षा श्री अकाल जी ने॥

— कवि "सेनापति"

यह वारदात संवत् १७६५ वि० में भादों वदी ४ की रात को हुई। तुरन्त ही जर्राह बुलाया गया और गुरुजी का ज़ख्म सी कर मरहमपट्टी की गई। बहादुरशाह को जब इस दुर्घटना की सूचना मिली तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने उसी समय एक होश्यार अँगरेज़ जर्राह गुरुजी की सेवा के लिये भेजा और पीछे से आप भी हाल पूछने को आया। ज़ख्म दिन पर दिन अच्छा होने लगा और पन्द्रह सोलह दिन में बिलकुल ठीक हो गया।

जब इन दो सप्ताह के बाद गुरुजी ने फिर दर्बार में दर्शन दिया तो सिक्खों की ख़ुशी की कोई सीमा न रही। वह गुरुजी का दर्शन कर बड़े प्रसन्न हुए और उस दिन बड़े आनन्दचित अपने घरों को वापिस गये। पर अब गुरुजी को कोई अधिक समय तक यहाँ इस मर्त्यलोक में ठहरने की आज्ञा न थी। जिस श्री अकाल-पुरुष परम पिता ने गुरुजी को अपना पुत्र बना इस मर्त्यलोक में धर्म-रक्षा के लिये और ख़ालसा पन्थ स्थापन करने के लिये भेजा था उसी परम पिता का अब अपने पुत्र के लिये अनिवार्य बुलावा आगया। इस लिये कार्तिक सुदी ५ को गुरुजी ने स्नान कर नवीन वस्त्र धारण किये और अपने शरीर को सारे शस्त्रों से सुसज्जित किया—

पोशास सभ नवीन मनवाई। शुभ्क काछ कटि कछी सुहाई॥
मुकुर महान दिखाइ अगारी। बहु विधि ते दस्तार सवारी॥
पुन खजानची जिगा दिखाई। बहुत मोल की रुचिरि बनई॥
पाग भाल पर बन्ध सजाई। पंक्ति हीरन की दमकाई॥
जबर जवाहार जाहर जोति। जग मग जग मग सोभ उदोति॥
मुकता गुच्छन सुभत उजाला। सुन्दर कलगी बनी विसाला॥

नाना रंग जवाहर लागे। घड़ति अनूठी जे बहु जागे॥
लेकर संग उतंग सजाई। हाले सिर झूलत दमकाई॥
सूखम ते सूखम वर चीर। जामा पहिर्यो दिपै सरीर॥
बहु पाल्ज़ को सज्यो विसाला। वन्द वन्द लरकाँइस ढाला॥
तीखन धारा खड़ग कराले। कंचन मुष्टि जड़त नग जाले॥
भर्यो निखंग खतंगन खरनि। कंचन लगे भए सुभ बरन॥
ले दुकूल बहु मोला हाथ। कमर कसी दृढ़ बल के साथ॥
विछुआ खंजर बाँक कटार। पेश क़ब्ज़ इह धरे सुधार॥
कमर कसा आछी विध कर्यो। जथा जोग आयुध गन कर्यो॥
उज्जल मुक्ताहल की माला। मनहु व्यालका सुभत विसाला॥
कर महिं धनख इन्द्र धन सोभा। सिक्खी सिक्ख मन आनन्द गोभा॥
बदन अदीन सुनैन प्रफूले। जिगा दमकती कलघी झूले॥
दिपति तेज को पिख पिख सारे। सम सूरज के गुरू विचारे॥

इस प्रकार अपनी पूरी फ़ौजी पोशाक में सज कर गुरुजी दर्बार में आए। सारी संगत अदब में खड़ी हो गई, फिर सब ने सीस नवाया और जब श्री गुरुजी अपने सिंहासन पर विराजमान होगए तो सब संगत फिर अपनी जगह बैठ गई। गुरुजी की उग्र मूर्ति का तेज इस समय सारी सभा पर इस प्रकार झलक दे रहा था जैसे कि बादल फटने पर सूर्य्य की किरणें दमकती हैं।

कीर्त्तन समाप्त हुआ तब गुरु जी ने सारी सँगत से कहा—"मैं आज तैयार होकर आया हूँ उस अपने परम पिता श्री अकाल-पुरुष के पास जाने को जिसने मुझे यहाँ आप लोगों के लिये भेजा था। मेरे पीछे किसी प्रकार का शोक न करना

किन्तु खुशी मनाना कि जिस परम आनन्दमय स्थान को छोड़ मैं यहाँ इस मर्त्यलोक में आना नहीं चाहता था, मैं आज फिर वहीं वापस चला गया हूँ। मेरे पीछे आपके गुरु यह ग्रन्थ साहब होंगे। आप जो ख़ालसा हैं, आपको मैं गुरु ग्रन्थ साहब के आधीन करता हूँ और आज से गुरु ग्रन्थ साहब के आधीन ख़ालसा गुरु होगा! दसों गुरुओं की ज्योति को अब मैं ख़ालसे में प्रवेश करता हूँ और ख़ालसे को मार्ग श्री गुरु ग्रन्थ साहब की ईश्वरीय वाणी बतलावेगी। गुरु ग्रन्थ साहब के शब्द मानों मेरा हृदय हैं और उनके उपदेशानुसार चलने से यहाँ और आगे हर प्रकार से सुख प्राप्त होगा—

निश्चै शब्द रिदा है मेरो। तिह सों मिलियहि संझ सवेरो॥
हरि गुर गुन महि मनहि परोवहु। तिहसों मिल न्यारे नहिं होवहु॥
सदा रहहु प्रभु चरनन सरनी। अपरन की आसा नहिं करनी॥
लोक सुखी परलोक सन्तोषा। नित प्रति राखहु गुरू भरोसा॥
पढ़ियहि सरव गुरन की वानी। रखियहि रहित जु हमहु बखानी॥
पायहु मात काल का गोद। पन्थ खालसा लहै प्रमोद॥
सिंह सुरहित पंच जहिं मिले। मम सरूप सो देखो भले॥
भोजन छादन जो तिन देई। मोकहु पहुँचावत सिक्ख सेई॥
मनहु कामना तिन ते प्रापत। सरधा धरे चिन्त दुख खापत॥
सिक्ख पंचन मैं मेरो वासा। पूरत करों धरहि जे आसा॥
आयुध विद्या को अभ्यासहु। बनहु बीर अरि समुख विनासहु॥
जगत पदारथ सगरे पावहु। भोगहु आप भि अपर भोगावहु॥
मरहु जुद्ध महि सुरग सिधारहु। सहिकामी सुख सकल बिहारहु॥
निहकामी हुइ मुक्त सों मेल। परहि न जनम मरन की गैल॥
कर स्नान नाम अर दान। प्रेम समेत लहु कल्यान॥

विद्त खालसा पन्थ भविख्य। अवनी राज करहि मिल सिक्ख॥
दिन प्रति तुर्क नास को प्रापति। बचहि जि रंक होहि लहि आपति॥
कीने गन अपराध विसाला। तिन का फल है है इन काला॥
अंग संग मुझ को नित जानहु। सदा सहायक अ नौ मानहु॥
नित प्रति गुरवानी अभ्यासहु। कै शत्रनि सन शत्रु विनासहु॥
दसहु गुरू चिम करे विलासा। सुनहु प्रेम धर सभ इतिहासा॥
अभिमत देत सहित कल्यान। सुख प्राप्ति पाठन स्रोतान॥
गुरू खालसा खालस गुरू। अबते हुइ ऐसी विधि शुरू॥
अपनी जोति खालसे विखै। हमने धरी सकल जग पिखै॥

इस प्रकार उपदेश कर गुरुजी ने पाँच पैसे और एक नारियल ले प्राचीन प्रथा अनुसार गुरु ग्रन्थ साहब के सामने भेंट रक्खे और फिर एक ऊँची ध्वनि में अपने श्री मुख से यह वाणी उच्चारण की—

आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पन्थ।
सभ सिक्खन को हुकुम है, गुरू मानियहु ग्रन्थ॥
गुरू ग्रन्थ जी मानियहु, प्रगट गुराँ की देह।
जाका हिरदा शुद्ध है, खोज शब्द में लेह॥

यह कहते ही गुरुजी झट अपने कुम्मैत घोड़े पर सवार हुए और समाधि लगाकर सूर्य्य की धूप में धूप बन कर अन्तर्द्धान हो गए—

तब समाधि सतिगुरू लगाई। जग मग जोति तहाँ दर्शाई।
अनहदि शब्द उठे झुँणकारा। श्री सतगुरु का खेल अपारा॥
सुन्न समाधि अनहदि लिव लाई। जोग अगन तूरन उपजाई॥
चढ़ अकाश के पन्थ पधारे। हाइ! हाइ!! नर खरे पुकारे॥

जै जै शब्द गगन महि होवा। सुन्यो सौन कछु नैन न जोवा॥
परी गुंज इक वार बिसाला। जन गाजत मधुरी घन माला॥
भयो प्रकाश प्रकाश महाना। लाल वरण सभ के दृष्टाना॥
गीरवाण पहुँचे समदाए। जै जै धुनि ते रौर उठाए॥

उधर सुरलोक में तो इस प्रकार खुशी के मारे कौलाहल होने लग गया पर इधर सारे सिक्ख गुरुजी के इस अद्भुत कौतुक को देख हैरान परेशान थे। और लगभग सारे के सारे ही विलख विलख कर रोने लगे। यह सब कार्य्य गुरुजी ने ऐसी शीघ्रता से किया था कि सिक्खों को इतना समय भी न दिया कि आपसे कोई बात पूछ सकें —

पिख सदेस विसमे भए, प्रति भयान मन होइ।
मन की मन ही मैं रही, पूछी बात न कोइ॥

सिक्खों की हालत इस समय ठीक ऐसी ही हो गई थी जैसी कि किसी सेना की अपने सेनापति के बिना —

सैन दीन जिम महिपति हीना। चन्द बिना जिम रात मलीना॥
जिम मथरा महि स्याम सिधायो। पाछे गोपी गन विकलायो॥
जथा राम बन विखै सिधारे। औधपुरी के नर दुखियारे॥
तिम सतगुरु बिन सिंह रहे हैं। रिंदे बिखाद बिसाल लहे हैं॥

श्री अबिचल नगर में गोदावरी नदी के तीर गुरुजी के इस अन्तिम कौतुक के स्मारक में अब एक आलीशान गुरुद्वारा (सिक्ख मन्दिर) बना हुआ है जिसके दर्शनार्थ दूर दूर से सिक्ख लोग आते हैं। यह स्थान देखने योग्य ही है। यहाँ

पहुँच हृदय को अद्भुत शान्ति प्राप्त होती है। यहाँ गुरुजी के शस्त्रों के भी दर्शन कराए जाते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी मनोरथ से इस स्थान के दर्शन करने जाता है तो उसकी मनो कामना भी अवश्य पूरी होती है—

सुन्दर गुदावरी विहीन मल चलै जल,
सलता सतुल गंग कूल छब पावई।
खरे खरे तर खरे हरे हरे पात जरे,
पाँत पाँत करे छाइ संघनी को छावई॥
बोलत विहंग रंग रंग के उतंग थानि,
श्री गोविन्दसिंह को सिंहासन सुहावई।
जाइ दरसावई मनोरथ उठावई,
सुकामना को पावई "सन्तोखसिंह" गावई॥
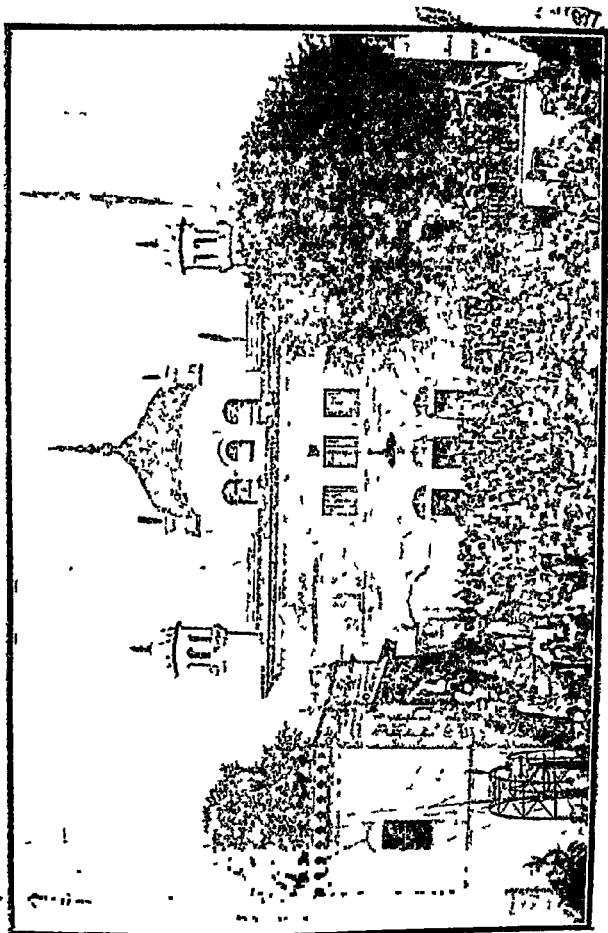
गुरुद्वारा श्री हजूर साहिब, नन्देड़ ।

इत ही सों गोविन्द गुरु, स्वर्गारोहण कीन ।
धवल कुन्द सम लसत है, करत मनहिं लवलीन ॥

२७—जीवनी की एक मात्र झलक ।

गुरु गोविन्दसिंह जी की मोहन मूर्ति संसार में हर एक के नेत्रों को भाई। पुरातन और नवीन जिस इतिहासकार ने भी उनका ज़िक्र किया किसी न किसी ख़ूबी की महिमा की। जिस दृष्टि-कोण से जिसने देखा मजबूर हुआ कि महिमा करे। हिन्दू, सिक्ख, अंग्रेज सारे इतिहासकारों ने यश गायन किया। सिक्खों के लिखने को यदि इतिहासिक दृष्टि-कोण से रूखापन से अधिक श्रद्धा और प्रेम का कारण समझा जाय लेकिन लाला दौलतराय जैसे आर्य का श्री गुरुजी को राम कृष्ण अवतारों से बड़ा कहना और यह लिखना कि यदि हिन्दू जाति फ़ख कर सकती है तो गुरु गोविन्दसिंह का और फिर कहना कि संसार को फ़ख हो सकता है तो गुरु दशमेश पिता का यह बताता है कि कैसा ज़बरदस्त वजूद गुरुजी का है जो अन्य उपासकों से भी महिमा करवाता है। लाला शिव ब्रत-लाल राधास्वामी भी गुरुजी के गीत गाता है।

ग्रिफ़िन लिखता है कि गुरु गोविन्दसिंह ने "तैयार बर तैयार"* सजा सजाया ख़ालसा अपने दिमाग़ से इस तरह पैदा करके रख दिया जिस तरह बृहस्पत ने देवी मिनर्वा पैदा की थी। कनिंघम का गुरुजी के काम की श्लाघा और जिंदगी के बाद काम पूरा होने में उनकी दानाई और काम करने की

---

* देखो फुट-नोट पृष्ठ ८६ पर।

सुन्दरता की श्लाघा करना बतलाता है कि इतिहास सारा उनकी महिमा करता है।

अवतार।

जो यह कहा जाय कि भगवान् मनुष्य योनिमें पड़कर गुरु गोविंद-सिंह बन गये तो गुरुजी के अपने वाक्यों के विरुद्ध है परन्तु "गुरु नानकन्देव गोविन्द रूप" के वाक्य अनुसार गुरु साहब अवतार थे। अवतार का अर्थ यह है कि जो ईश्वर का प्यारा "सचखंड" से मर्त्यलोक में अवतरे। ऐसे आने वाले का प्रयोजन संसारका कल्याण होता है या कोई ख़ास विपत्ति होती है या ख़ास धर्म की ग्लानि पैदा हो जाती है जिसको दूर करने के लिये कोई पूर्ण पुरुष प्रकट होता है। उसका मुख्य प्रयोजन उस समय के दुःख को दूर करने का होता है। यह ज्योति जो गुरु कहलाई अन्य अवतारों से यह विशेषता रखती थी कि वह केवल संसार का परम अन्धकार दूर करने के लिये ही न आई थी, केवल उस समय की ख़ास कठिनाई दूर करना ही प्रयोजन न था परन्तु मनुष्य मात्र को सदैव के लिये विशेष ज्ञान के गहरे भेद भी बतलाना था। सो इस विशेष कार्य्य के कारण आप गुरु थे परन्तु जो साधारण अवतार का धर्म है कि समय की ख़ास विपता को दूर करे, अधर्म को विध्वंस करे यह सब गुरुजी के अवतार के अधिकार का कार्य था। इस समय ज़ालिमों ने राज्य पाकर प्रजा पर अत्याचार उठाया हुआ था और सदियों से दुखित प्रजा चीख़ पुकार कर रही थी। प्रजा की रक्षा करने के लिये अवतार की आवश्यकता थी। इस लिये श्री गुरुजी ने अवतार धारा और इसी ख़्याल पर इनको आम तौर पर अवतार कहा जाता है। श्री गुरुजी ने अपने

समय में वह सामान पैदा किया कि जिसके कारण समय का क्लेश पूरी तौर पर निवृत्ति हो जाय। ज़ुल्म, पाप, अन्धेर का नाश किया। इस कार्य करने में गुरुजी को दो तरह से कार्य करना पड़ा। इस लिये उनके दो और पद पैदा हो गये। एक सुधार कर्त्ता दूसरा योद्धा।

सुधार कर्त्ता।

जैसे पूर्ण गुरु थे वैसे ही श्रीगुरु जी पूर्ण सुधार कर्त्ता थे। सुधार कर्त्ता उसको कहते हैं जो अपने समय अपने चारों ओर के लोगों में प्रचलित कुरीतियों को दूर करे और सुरीतियों को फैलाये। क्योंकि श्रीगुरु जी गुरु थे और अवतार थे, ऐसा होने के कारण वह निरे प्रेमदाता थे सो आप ऐसा तरीका धारण करके सुधार कर्त्ता बने कि ज़बरदस्ती से किसी को नहीं सुधारा, प्रेम के साथ साफ़ किया है। उनके उपदेश में ऐसी शक्ति थी कि जीवन को पलटा देती थी। उन के दर्शन में वह खेंच थी कि जीव उनका प्रेमी होकर उनके वाक्यों से बाहर चलने का अप्रेम नहीं कर सकता था। वहाँ यह आवश्यकता नहीं होती थी कि अमुक सिक्ख आज्ञा भंग करने वाला है, निकाल दो। नहीं, सिक्खों में ताव न थी कि कहा न मानते। यह उनके प्रेम और उपदेश का प्रभाव था, इसी कारण उनका सुधार गहरे असर वाला और पक्की तासीर वाला था। अपने समय में सुधरे हुए लोगों की गिनती गुरुजी ने आधे करोड़ से अधिक कर दी थी और आम लोग जो तासीर पा गये वह तो अनेक थे। आज तक उनके सुधार का आम असर पंजाब में मौजूद है। चौके की छूत छात का न होना, जाति न होना,

जातियों का आपस में मिलकर व्यवहार करना, विधवा विवाह होना, हिन्दू मुसलमान का एक ही परमेश्वर का नाम लेना, दया-दान आदि, यह सब प्रत्यक्ष रूप से गुरुजी के ही परिश्रम का फल है। सती की रस्म रोकना, लड़कियों का मार डालना बन्द करना, लड़कियों का बेचना मना करना, ये सारे ख़्याल गुरुजी के फैलाये हुए हैं। इस प्रकार धार्मिक, सामाजिक और विद्या सम्बन्धी सुधार गुरुजी ने ऐसे चोटी के किये कि जिसकी नज़ीर नहीं मिल सकती।

योद्धा।

दूसरा अधिकार जो अवतार होने की हैसियत में उस ख़ास समय का संकट निवृत करने का था, जिसके दो साधन थे, सुधार और युद्ध, सो भी गुरुजी करते रहे। पहिले ज़ालिम मज़लूम दोनों को समझाया सिखाया पर जब देखा कि "दुहूँ पन्थ में कपट विद्या चलानी" तब यह आवश्यकता हुई कि "बहुर तीसरा पन्थ कीजै प्रधानो।" गुरुजी ने तलवार पकड़ी। सिक्खों की काया पल्टी और उनमें वीर रस भरा। युद्ध विद्या की वह प्रवीणता गुरुजी में थी कि सदियों की पैरों नीचे दली हुई निर्बल प्रजा आँख झमकने में ही वीर बाँकुरी और योद्धा कर दी। एक अंग्रेज़ जो सिक्खों का इतिहास ज़रा मज़ाक़ के साथ लिखता है गुरुजी की महिमा करने से नहीं रुक सका। वह लिखता है कि "गुरु गोविन्दसिंह की युद्ध विद्या में वह लियाक़त थी कि आपने अपने दिमाग़ में से झटपट 'तैयार बर तैयार' खालसा ऐसे उत्पन्न कर दिया कि जैसे चूसपित्र देवता ने अपने सिर में से नौजवान देवी मिनरवा पैदा की थी।"

कैसे वीररस की रूह फूँककर तुरन्त एक योद्धा कौम बनाली! यह मन्त्र कोई नहीं जानता। गुरुजी की युद्ध की लियाक़त, योद्धा होने की प्रवीणता कहीं छिपी हुई नहीं। जैसे गुरु होकर रुहों को ईश्वर में मिलाया, जैसे अवतार होकर संकट हरे, जैसे सुधार कर्त्ता होकर सदाचार और सुरीति फैलाई, वैसे ही योद्धा होकर ऐसी क़ौम पैदा की जिसकी वीरता की कीर्ति इस समय तक सारे संसार में पसर रही है। गुरुजी का एक फ़क़ीरी की हालत में मुग़लिया राज्य का सामना करने वाली क़ौम और सामान पैदा करना और उनके राज्य में रहकर करना और उनको शिकस्तें देकर उनके राज्य में निर्भयता से रहना बतलाता है कि ऐसा योद्धा संसार ने पैदा नहीं किया। योद्धा होने का काम गुरुजी के लिये बड़ा नाज़ुक था। आप गुरु थे, अवतार थे, सुधार कर्त्ता थे। आप से प्रेम के विरुद्ध, धर्म के विरुद्ध और सदाचार के विरुद्ध कोई काम होना चाहे योद्धा की हैसियत को बढ़ा देता परन्तु गुरु, अवतार और सुधारक होने की पदवी को नीचा कर देता। इसी कारण आपकी वीरता की नदी प्रेम, धर्म और सदाचार की सीमा के अन्दर अन्दर बहती रही। लड़ना ख़ूबी नहीं बतलाया परन्तु दीनों की रक्षा में युद्ध करते मर जाना वीरता बतलाई। दीन दुखियों, स्त्रियों, बच्चों, शरणागतों, पर चाहे वैरी हों तलवार उठाना हराम की, हारे हुए वैरी को सताना मना किया। आपने जब युद्ध किया दीन रक्षा हित, फिर कभी जब्र नहीं किया, क़त्ल आम नहीं की, कभी दुःख नहीं दिया। वैरियों के स्त्री बच्चे भी उनके घर पत सहित पहुँचाये। यह नाज़ुक काम जिस ख़ूबी के साथ गुरुजी ने निभाया कोई

दूसरा धर्म का आगू नहीं निभा सका। प्रेम, धर्म, सदाचार अपना और सिक्खों का क़ायम रहे और फिर तलवार चले यह गुरु गोविन्दसिंहजी की ही लियाक़त का काम था।

यह सच है कि तुर्क, मुग़ल, पठान, गुरखा मात्र वीर हैं। उनकी वीरता के कर्तव्य संसार के इतिहास में लिखे पड़े हैं, परन्तु कमी यह है जो तुर्क इसलिये बहादुर है कि वह तुर्क का पुत्र है, पठान पठान का बेटा और गुरखा गुरखों के वंश में होने के कारण वीर होता है। यह सारा सिलसिला वीर्य्य से सम्बन्ध रखता है। ख़ालसा भी वीर है। जहाँ इस बात से इंकार नहीं हो सकता वहाँ हर एक को यह भी मानना पड़ेगा जो वह कोई वीर्य्य से पैदा हुई नसल नहीं है परन्तु श्रीगुरु जी के नादी पुत्रों की क़ौम है। जहाँ दूसरी वीर जातियाँ वीर्य्य से हुए जन्म के कारण वीर हैं वहाँ ख़ालसा नादी जन्म के कारण बहादुर है। इस्लाम ने तुर्कों, मुग़लों, पठानों को वीरता नहीं दी, उनका वीर होना उनके वंश के वीर्य्य से सम्बन्ध रखता है। हिन्दू धर्म ने राजपूत, मरहठे या गोरखाओं को सूरमा नहीं बनाया। कजुक या रकाब ईसाई होने के कारण वीर नहीं हैं परन्तु सिक्ख तो ख़ालसा होने के कारण वीर है। खण्डे के अमृत ने ही यह जादू किया है जो गिरियों से गिरी और कुचली हुई कायर और डरपोक क़ौमों के मनुष्य गुरुजी के नादी पुत्र बनते ही सवालाख के साथ एक एक लड़ने की शक्ति पा गये। इसकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं। ख़ालसा अपनी जीती जागती गवाही आप ही है।

नीति वेत्ता ।

जो तलवार पकड़ता है उसको नीति की आवश्यकता होती है। यदि गुरुजी नीति वेत्ता न होते तो तलवार उठा कर कामयाब न होते। नीति की कमी तलवार को वैरी के हाथ देकर अपना ही गला कटवा देती है। परन्तु गुरुजी जैसे और बातों में पूर्ण थे वैसे इसमें भी पूर्ण थे। पहिली नीति तो यह थी कि युद्ध का कार्य प्रेम, धर्म, सदाचार में रक्खा। यह सब से कठिन नीति थी। सिक्खों का पहर रात रहती उठना, भजन करना, उपकार करना, वैरागी और विवेकी रहना, ज़रूरत बने तो दीनों की खातिर अपने भुजबल द्वारा रक्षा करना, रक्षा में युद्ध की सारी बुद्धि इस्तैमाल करना, आ बने तो सन्मुख होकर सीस देना और सीस देते हुए रंचक दुःख न मानना, दूसरा वैरियों के साथ रक्षा का बर्ताव सिखाया, दाव, घात समझना बताया। ख़बर वैरी की पूरी रखते थे। नदी पहाड़ का लाभ पूरा उठाते थे। आनन्दपुर की किले बन्दी ऐसी थी कि वैरी का एकदम वहाँ पहुँचना असम्भव था। अपनी फ़ौज को ख़ास क़िस्म की अपनी रची क़वाइद सिखलाई जिस कारण उनका भुजबल बहुत ही लाभ दायक हो गया। गुरुजी नीति, दानाई और पूर्ण प्रवीणता को समझते थे। आजकल के समय अनुसार कपट और फ़रेब का नाम नीति नहीं रखते थे। इसी कारण उनके युद्ध सन्मुख वीरता और हठ के भरे हुए और सख़्त ज़ोरदार होते थे।

राजा ।

नीति और युद्ध के बर्ताव वाले को राज्य करना आवश्यक

होता है। गुरुजी अपनी छोटी सी आनन्दपुरी और इर्द गिर्द की प्रजा का न्याय और पालन ऐसा करते थे कि कोई राजा नहीं कर सकता। यही कारण था कि दूसरे राजाओं की प्रजा गुरुजी के इलाक़े में आकर वास करती थी। इसी लिये दूर दूर के दुःखी यहाँ पनाह लेते और सुख पाते थे। बड़े बड़े कवि, पण्डित, सूफ़ी, फ़क़ीर, यहाँ आकर टिके और रहे। आनन्दपुर के इर्द गिर्द ऐसा नेक प्रबन्ध होता था कि सोना उछालते ले जाइये कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता था। रवालसर के मेले पर गुरुजी का आरोग्यता का प्रबन्ध ऐसा अच्छा था कि लाखों की भीड़ के होते हुए भी कोई बीमारी नहीं फैली। सफ़ाई का बन्दोबस्त पूरा था। ऐसे प्रबन्ध ने लोगों को सुखी रक्खा।

पंडित।

राजा के लिये यह आवश्यक होता है कि विद्या की क़द्र करे। विद्या की क़द्र वही ठीक कर सकता है जो आप पंडित हो। गुरुजी आत्म तत्त्व वेत्ता होने के कारण स्वाभाविक ही ब्रह्मज्ञानी थे और सर्व विद्या के मालिक थे। ब्रह्म विद्या तो गुरुअवतार में कुदरती नज़ारा था परन्तु सांसारिक विद्या में भी गुरुजी प्रवीण थे। फ़ारसी, संस्कृत, अरबी आदि के पक्के माहिर थे। इसी विद्या की क़द्र दानी के पीछे उनके दरबार में बड़े बड़े कवि और पण्डित आ इकट्ठे हुए। कई तो तुर्कों के सताये हुए होने के कारण पनाह लेने के लिये आगये और कई वैसे ही क़द्रदान-समझ कर पहुँचे। विद्या का चर्चा बहुत हो गया। बड़े बड़े संस्कृत और अरबी के पुस्तक ब्रज भाषा में उलथा हो गये। पुस्तकालय पुस्तकों के साथ

भर गये? पुस्तकालय इतना बड़ा था कि सारी पुस्तकें नौ ऊँट भी नहीं उठा सकते थे। गुरुजी हर रोज़ अपना ख़ास समय विद्वानों की सभा के लिये दिया करते थे।

कवि।

पण्डित होने के अलावा गुरुजी कवि भी पूरे थे। आपकी कविता जो शान्त रस की है वह आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी के तुल्य है। जो वीर रस की है वह किसी हिन्दी के कवीश्वर से सर निकालने से नहीं रुकती। वाणी पढ़ते पढ़ते जोश आ जाता है और हाथ कब्जे पर जा टिकते हैं। ऐसी कड़ाकेदार रचना है कि मुर्दों में बल भर देती है। आपकी रचना अलंकार, रूपकों, व्यञ्जनों, ध्वनियों और लक्षणों के साथ ऐसी पूरित है कि जो केवल रचना ही ली जाय तो भी गुरुजी अपने समय के बड़े ऊँचे महान् पुरुष साबित होते हैं। कविता में लावण्यता, रस, मिठास, चटपटापन भरे पड़े हैं। पदों पर ख़ास आज्ञा है, गूँथ में क्रम है, व्याख्या है, ख़ास ज़ोर और सफ़ाई है। जो आपका जी रुलाने को आया है तब करुणा रस के साथ नेत्र भर ही लाते हैं, जो वीरता की ओर क़लम चली है तब तलवार ही खींची गई है। जब शान्ति की ओर आये हैं तब समाधिस्थ कर दिया है। जब रूपक बाँधे हैं तब कालिदास भुला दिया है। जब नीति कही है तब असल। जब रतिभाव के कटाक्ष कहे हैं तब प्यार की नहरें बहादी हैं। जब विरह कहा है तब चीखें निकलवादी हैं। कैसा आश्चर्य है कि जो महा पुरुष आठों पहर शब्द में लवलीन है, जो संसार के संकट हर रहा है, जो सदाचार सिखला रहा है, जो ज़बरदस्त राजाओं और मुग़ल सलतनत का

मुकाबला कररहा है, जो नीति के प्रबन्ध में मग्न है, जो पंडितों का कद्रदान और मुनियों की सभा को शोभा दे रहा है वह आप कविता भी रचता है। कविता के लिए समय निकालता है और हर एक की कविता सम्पूर्ण करता है। गुरुजी की रचना आपको सैकड़ों नये छन्दों का कर्त्ता साबित करती है और वह रचना ख्याली नहीं, इस समय तक हमारे पास है * और हम में गुरुजी के लिये आश्चर्य जनक बड़ाई पैदा कर रही है।

कला कौशल।

गुरुजी के दरबार में चित्रकारों की बड़ी क़दर थी और आप चित्रकारी के शौक़ीन थे। रसों की मूर्तियाँ स्थायी, संचारी भावों के दर्शन, समय भाव अनुभावों के नमूने ख़ास वहस के साथ लिखे जाते थे। इसके अलावा वनस्पति विद्या की ख़ास वाक़फ़ी, घोड़ों की पहचान और अनेक हुनरों में ख़ास प्रवीणता थी। क़िले बनाने की महिमा खण्डरात के देखने पर समझ में आती है। गुरुजी की अपनी ढलवाई तोपों का नमूना दो छोटी छोटी लाहौर अजायब घर में पड़ी हुइयों से पता लगता है। बन्दूकें तलवारें आदि आप स्वयं बनवाते थे।

राग विद्या में गुरुजी गुरु अर्जुन देव की भाँति प्रवीण थे। आदि गुरु नानक देवजी ने रबाब रचा था। पंचम सतगुरुजी ने सरिन्दा बनाया था और जो साज आज कल ताऊस कहलाता है उसको पहिली बनत जिसकी यह नक़ल है गुरु गोविन्दसिंहजी से ही शुरू है। गुरुजी प्रवीण वीणाकार थे

* गुरुजी के काव्य भण्डार में से कुछ रचना पाठकों के पढ़ने के लिये इस पुस्तक के आख़ीर में दी गई है।

और अपने पवित्र गले से ऐसा सुरीला राग अलापते थे कि चलते दरिया ठहरने की कहावत घटती थी।

गृहस्थी।

इसके अलावा गुरुजी गृहस्थी भी पक्के थे। गृहस्थ भी अनुपम था। आप पिताजी के आज्ञाकारी सुपुत्र थे, माताजी का सारी उम्र सन्मान रक्खा। आनन्दपुर के युद्ध में अपनी नीति और प्रवीणता के फ़ैसले को भी माता की आज्ञा पर छोड़ कर आज्ञाकारी सुपुत्र का कार्य पूरा कर दिखाया। जैसे लायक़ पुत्र थे वैसे ही लायक़ पति और अपनी औलाद के पिता थे। स्त्री के साथ सलूक प्रेम और कृपालुता का था। औलाद नेक, आज्ञाकारी और पिता के जौहरों से चमत्कृत थी। बच्चों का धर्म सदाचार ऐसा मज़बूत बनाया कि सात और नौ साल के बच्चों ने दीवार में चिने जाकर मौत चक्खा परन्तु धर्म नहीं हारा। चौदह और अठारह वर्ष के बच्चों ने पुरज़ा पुरज़ा कट कर जानें न्यौछावर कीं परन्तु रणक्षेत्र में पीठ नहीं दिखलाई। गृहस्थाश्रम के पूर्ण निर्वाह में गुरुजी ने गुरुता, अवतारता, सुधार कर्तव्यता, योद्धापन, नीति विद्वता और पण्डिताई आदि को दाग़ नहीं लगने दिया। पक्के गृहस्थी की तरह नेक और लायक़ औलाद बनाई। परिवार में प्रेम और भक्ति रक्खी। जब वियोग हुआ, माता चल बसी, औलाद शहीद होगई तब पूर्ण धैर्य और रज़ा मानने की अलौकिक दशा दिखाई। जब किसी ने कहा आपके लायक़ पुत्र मरगये तब बोले "मेरे पुत्र मेरे सिक्ख हैं जो चार देकर मैंने लाखों की गिन्ती में लिये हैं। यह सदैव जीते हैं।" गृहस्थी होना

परन्तु गृहस्थ के बाणों की चोट न खाना यह "परवान गृहस्थ-उदास" गुरुजी ने आप बरत कर दिखाया।

देश हितैषी।

गुरुजी का देश ब्रह्माण्ड है परन्तु जब इस पृथ्वी पर आये तब भूमण्डल का सुधार प्रयोजन था। उनके लिये सारे जातियों का प्रेम और सारे देशों का हित था। परन्तु भारतवर्ष कुखातुर और परतन्त्र था। इसका हित विशेष आवश्यकता रखता था। गुरुजी जिस देश में हुए उसके बड़े हितैषी हुए। दुःख पीड़ित प्रजा को अपने आप पर भरोसा करना और अपने आचरण के साथ बलवान् होना और स्वतन्त्रता की रूह में जीना गुरुजी ने सिखलाया। देशहित उपकार करना और कष्ट झेलना बतलाया। असल में गुरुजी से पहिले देश हित के ख्याल को भी लोग नहीं समझते थे।

धनुष धारी।

धनुष विद्या की समाप्ति गुरुजी पर हो गई। तीरों की कारीगरी ने अर्जुन के नाम को कायम रक्खा है परन्तु गुरुजी के तीर बहुत ही बढ़िया थे। आनन्दपुर के किले में बैठकर घेरा डाले हुए मुसल्मान जरनैल के पलँग में तीर मारना गुरुजी का ही भुजबल कर सकता था*। दूरी कोई तीन कोस से अधिक की बताई जाती है। गुरुजी के तीर की मुर्सी सोने की पहिचान कर जरनैल ने दंग होकर कहा कि करामात है। यह बहस अभी होरही थी कि दूसरे पाये में एक और तीर लगा जिसके साथ एक पत्र बँधा हुआ था। खोल कर पढ़ा तो लिखा था—"यह करामात नहीं परन्तु कमाल है।" इसने

* देखिये पृष्ठ १२४

उन सब को और हैरान कर दिया। तब वह कहते हैं मान लिया कि तीर मारना तीरन्दाज़ो की विद्या का कमाल है पर हमारी वहस को तीन कोस से अनुभव कर लेना यह निस्सन्देह अन्तर्यामित्व का कमाल है। भाई नन्दनलाल कहते हैं कि "अर्जुन के तीर गुरुजी के आगे मात हैं, गुरु गोविन्दसिंह जैसा धनुषधारी पहले कोई हुआ ही नहीं है।" गुरुजीके तीर अति तीक्ष्ण और ठीक निशाने पर बैठते थे। आनन्दपुर के घेरे में इतना समय निकल जाना यह आपके तीरों की ही बरकत थी। केवल चालीस सिक्खों के साथ चमकौर की कच्ची हवेली में बैठकर लाखों की फ़ौज के साथ मुक़ाबला करना और हवेली फ़ते न होने देना गुरुजी के ही तीरों की बरकत थी। धनुष विद्या में आपका कमाल बहुत ही उच्च था। सवा डेढ़ मनका मामूली धनुष खेंचना कुछ बात नहीं समझते थे। इस विद्या की समाप्ति आपके बाद ऐसी हुई है कि फिर कोई पैदा ही नहीं हुआ जिसको धनुषधारी कहा जासके। इस लिये गुरुजी को आख़िरी धनुष धारी कहना कोई ग़लती नहीं है।

क़ौम कर्त्ता।

गुरुजी इस फ़न में भी कमाल कर गये! आपने टूटी फूटी मरमिटी प्रजा में क़ौमियत की नीव रक्खी और क़ौमियत का माद्दा भर कर लोगों को क़ौम बनना सिखला दिया। मिलवाँ प्यार, मिलवाँ भुजबल, मिलवें नुक़सान के आगे मिलवाँ प्रयत्न, मिलवाँ लाभ पर अपने हक़ और दूसरे के फ़र्ज़ का सत्कार करना कूट कूट कर भर दिया। पंचायती प्यार और प्रबन्ध, पंचायती राज्य और रीति

सिखलादी और अपने अन्तिम समय से पहले अपनी रची क़ौमियत की नीव बहुत ही पक्की करदी।

गुरुजी के अनन्त स्वरूप का दर्शन बहुत बड़ा है। उन्हों ने अपनी केवल चालीस बयालीस वर्ष की छोटी सी आयु में इतने बड़े भारी काम कर जाना और आजतक उन सब का संसार पर असर जारी रहना यह गुरुजी की ऐसी कमाल की करामत है जिसकी मिसाल और कोई दूसरी नहीं मिलती।

२८—गुरुजी और अन्य अवतार।

आज कल के समय में आर्य्यसमाज धर्म सब से अधिक नुकताचीन साबित हुआ है। कोई धर्म और कोई धर्मवेत्ता ऐसा नहीं बच सका जो कि उनकी "तेज़" बुद्धि का शिकार न बना हो। ऐसी हालत में एक आर्य्य का श्री गुरुजी की श्लाघा करना और उनको सारे अवतारों से शिरोमणि मानना एक ख़ास विशेषता रखता है। आइये! अब ज़रा उस आर्य्य भाई की ज़बानी ही सुनिये * कि अन्य अवतारों के मुक़ाबले में श्री गुरुजी में क्या विशेषताएँ थीं—

"एक ही व्यक्ति में सारे कमालात मिलने कठिन हैं पर गुरु गोबिन्दसिंह हर तरफ़ कामिल था। वह कवि था, धार्मिक लीडर था, धार्मिक रीफ़ार्मर था, अधिष्ठाता था, सेना पति था। कवि भी ऐसा था कि कविता में शक्ति, लेख में तेज़ी उत्तम श्रेणी की थी। उत्तम श्रेणी का धार्मिक रीफ़ार्मर और गुरु था। रणक्षेत्र का निडर सेना पति, दूरदर्शी नीतज्ञ, कौम का सच्चा प्रेमी, सच्चा देशभक्त, बे मिसाल शहीदुलमुल्क।

"कृष्ण और रामचन्द्र और शंकर अपनी अपनी जगह बहुत बड़े आदमी हुए हैं उनसे भी अपने अपने समय पर बड़े कार्य्य सिद्ध हुए हैं परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह का क़दम उनसे भी आगे है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इस तरह

* देखिये "सवाने-उम्री गुरु गोविन्दसिंह जी" कृत लाला दौलतराय साहब।

उन सबको क़ौमी कामों में पीछे छोड़ा है जिस तरह खुद बलिहाज़ ज़माना पीछे आया है। कृष्ण राज पुत्रों को रणक्षेत्र में ख्याल बुज़दिली से निकालता है पर गुरु गोविन्दसिंह उन लोगों को उठाता है जो मिट्टी में मिल गए थे, जिनके ख्वाब में भी न था कि रणक्षेत्र में बहादुरी के वह जौहर दिखाएंगे कि अर्जुन के कारनामें भूल जावेंगे।"

"रामचन्द्र के कारनामे बड़ी इज़्ज़त और फ़ख़्र के साथ आज तक याद किये जाते हैं लेकिन उसने जो कुछ किया ऐसे ज़माने में किया कि सारे भारतवर्ष में हिन्दु राजधानियाँ थीं, धर्म या देश किसी तरह ख़तरे में न था। वह स्वयं राजा था और हर प्रकार की लड़ाई का सामान रखता था। चारों ओर के राजे उसके साथ खड़े हो गए थे। इसके अतिरिक्त कोई नहीं कह सकता कि उसका राजा लंका से युद्ध करना देशभक्ति के आधार पर था और न ही देश भक्ति का इसमें कुछ लगाव था। इसमें सन्देह नहीं कि उसने क्षत्री धर्म को पूरा किया और ज़ालिम रावण को जो उनकी बीबी को छीन कर ले गया था उसका दण्ड देने के लिये रणक्षेत्र में मारा, यह भी बड़ा काम था लेकिन गुरु गोविन्दसिंह अपनी क़ौम और देश की लाखों बीबियों के छीन जाने के मातम में दूसरों की भलाई के लिये मैदान में आया और अत्यन्त कठिन समय में इस कठिनाई में हाथ डाला।

"कृष्ण के सारे कारनामे स्पष्ट रूप में निजी बदला लेने के आधार पर थे। कृष्ण की दानाई के सवाल को अलग रख कर मुल्की कारनामों को यदि देखा जाय तो उसके सारे काम

बदला लेने के आधार पर पाए जाते हैं । कंस को इस लिये मारा कि वह इसके कुल का नाश करना चाहता था और खुद कृष्ण की व्यक्ति को मिटाना चाहता था। अपनी स्वरक्षा के लिये उसने तलवार पर हाथ बढ़ाया और खूब किया राजा जरासन्ध से। पाण्डुवों के साथ मेल करके उनकी सहायता से उसको पछाड़ा क्योंकि जरासन्ध ने कृष्ण के यदुवंशियों पर कंस के क़त्ल के बदले में १५ बार आक्रमण किये थे और कृष्ण को जलावतनी पर मजबूर किया था कि जिस जलावतनी का नतीजा कृष्ण का गुजरात देश में द्वारका का आबाद करना और अन्त में वहाँ यदुवंश की राजधानी क़ायम करना था, यह सारे कारनामे वस्तुतः धर्म पालन का पूरा नमूना हैं तो भी उनकी तह में केवल निजी प्रतिकार का प्रतिदान था। माना जरासन्ध बड़ा ज़ालिम था और कंस भी और ज़ालिमों के सुधार के लिये क्षत्री का हथियार उठाना ऐन धर्म था लेकिन उसमें देश भक्ति का सवाल शामिल न था। यद् किसी तरह से कृष्ण के कारनामे देश भक्ति के आधार पर मान भी लिये जायँ तो भी उसके उपायों के विस्तार पर दृष्टि डालिये—वह स्वयं राजा था राजवंश में से था, गुजरात में उसकी जमी हुई पक्की राजधानी थी, कई क्षत्री राजा उसकी सहायता और मदद करने वाले थे, पाण्डुवों का बड़ा राज्य उसका सहायक था। यह सब कुछ होते हुए जो कुछ कृष्ण ने किया वह एक साधारण राजा के कारनामों से बड़ा काम न था क्योंकि देश अपना था, मुल्क क्षत्रियों के राज्य-प्रबन्ध में था, अमन-चैन था। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह का काम उससे ज़्यादा कठिन और ज़्यादा नाज़ुक और ज़्यादा मुश्किल था। देशभक्ति

के सवाल को तै करके गुरु गोविन्दसिंह कृष्ण को पीछे छोड़ गया। यही हाल शंकराचार्य का है. उसके सहायक भी क्षत्री राजे थे। क्षत्री राजाओं के बल के सहारे जो बुद्ध धर्म के राजाओं के मुकाबले में फिर सँभलने लगे थे, शंकर ने विद्या के दल से बुद्ध के पण्डितों को जीतना शुरू किया था। यदि राजे उसके सहायक और मदद करने वाले न होते तो हो सकता था कि शंकर लोगों के विचारों को पल्टा न दे सकता। शंकर विद्या के बल से लोगों को बुद्ध धर्म से हटा कर हिन्दू धर्म की ओर लाता था और हिन्दू राजे उसकी पीठ पर सहायता करते थे। लेकिन गुरु गोविन्दसिंह का न कोई मित्र न साथी और न कोई सहायक ही था। खुद हिन्दु उसके विरोधी थे। अरब के पैगम्बर के सामने क़ौम क़ुरैश के कुछ बिखरे हुए वंश थे लेकिन गुरु गोविन्दसिंह की हालत उन सब से मुख्तलिफ़ और नाज़ुक थी, बहुत ज़्यादा ताक़त की मुहताज थी...... और विचित्र बात यह है कि जिन हिन्दुओं की भलाई के लिये वह यह सारे दुःख उठा रहा था वही उसकी सहायता से न केवल जी चुराते थे किन्तु उसको सताते थे।"

"शिवाजी मरहठा लगभग उसका समान कालवर्ती था। उसको जो सफलता हुई उसके साथ मुक़ाबला करके यह नतीजा निकाला जाता है कि गुरु गोविन्दसिंह को सफलता नहीं हुई। परन्तु यह नतीजा ग़लत है। ऐसा नतीजा क़ायम करने के वक्त सारी घटनाओं को दृष्टि गोचर नहीं किया जाता है। शिवाजी जो काम करता था उसमें क़ौमी भलाई भी एक माने में ज़रूर शामिल थी पर उसका स्वार्थ शक्ति प्राप्त करने के लिये उसको उभारता था लेकिन गुरु गोविन्दसिंह

का उद्देश्य निष्काम था। अपने लिये शक्ति प्राप्त करना और बात थी और इस नीयत से परिश्रम अथवा युद्ध करना कि हिन्दुस्तान, हिन्दू देश और मुल्क के दोषियों और द्रोहियों को बाहर किया जाय और बात थी। शिवाजी अपने लिये काम करता था, गुरु गोविन्दसिंह दूसरों के लिये। शिवाजी का आदर्श अपने लिये पुलिटीकल ताक़त था यद्यपि उसमें क़ौमी भलाई भी दाख़िल थी लेकिन गुरु गोविन्दसिंह का आदर्श धार्मिक और पुलिटीकल दोनों ताक़तें प्राप्त करने के साथ क़ौमियत पैदा करना था। शिवाजी के लिये पुलिटीकल गौरव प्राप्त करने के लिये चालाकी का दर अथवा छल कपट और झूठ इस्तेमाल करने का मैदान ख़ाली था लेकिन गुरु गोविन्दसिंह के लिये धार्मिक गुरु होने के कारण यह मैदान बन्द था। वह अपने भुजबल और पुरातन क्षत्रियों की तरह हाथों हाथ और मुक़ाबले में लड़ाई करके कामयाबी चाहता था। शिवाजी को अनेकों विजय उसके पास आदमी इकट्ठा करती थीं पर गुरु गोविन्दसिंह विजय प्राप्त करने के लिये आदमी बनाता और तैयार करता था। शिवाजी की विरोधता हिन्दुओं की ओर से इतनी नहीं हुई जितनी कि गुरु गोविन्दसिंह की हुई इस लिये गुरु गोविन्दसिंह का उद्देश्य उसकी ज़िन्दगी में फल न लाया जो शिवाजी का मिशन लाया लेकिन शिवाजी की कोशिशों का फल चिरस्थाई न था। मरहटों की पुलिटीकल ताक़त के साथ ही उनका सब कुछ चला गया लेकिन गुरु गोविन्दसिंह के उद्देश्य का फल चिरस्थाई था और उसका फल अनन्त समय तक महसूस होगा।...गुरु गोविन्द सिंह ने अपने उद्देश्य में अत्यन्त सफलता पाई! वह अपना

पवित्र कर्त्तव्य पूरा कर गया। अपने प्रचण्ड हृदय से जिस खेत को तैयार करना चाहता था उसको हरा भरा छोड़ गया। उस खेत में फूल आये, फल आया और अब तक वह खेत हरा भरा चला आता है। और इस अहसान में हिन्दुओं की गर्दनें उसके सामने नीच झुकी जाती हैं।"

"गुरु गोविन्दसिंह की इज़्ज़त कृष्ण और रामचन्द्र के बराबर क्यों नहीं हुई? इस प्रश्न का उत्तर देना ज़रा कठिन है क्योंकि इसमें हिन्दु क़ौम पर अकृतज्ञता के दोष का डर है। जो इज़्ज़त कृष्ण और रामचन्द्र की की जाती है उसका कारण मालूम करना कुछ कठिन नहीं है। कृष्ण और रामचन्द्र ब्राह्मणी धर्म के विरोधी न थे और ब्राह्मणी धर्म के विस्तार में कृष्ण और रामचन्द्र के बहाने से हज़ारों आदमियों की रोटियाँ चलती हैं और इज़्ज़त बनी हुई है। इस लिये अपने स्वार्थ के लिये उन लोगों ने उनकी तारीफ़ में अत्युक्ति करके अपना उल्लू सीधा किया है। कृष्ण और रामचन्द्र को जितना उन लोगों ने बढ़ाया है केवल ऐतिहासिक लेखनी द्वारा वह इतनी शोहरत कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते थे क्योंकि उनके कारनामे ऐतिहासिक दृष्टि से न तो महाराणा प्रताप वालिये मेवाड़ से अधिक अच्छे थे और न गुरु गोविन्दसिंह के कार्यों से उत्तम। गुरु गोविन्दसिंह के उद्योग, उनकी दूरदर्शिता और देश भक्ति की विलक्षणताएँ, देश के कर्त्तव्य पालन की अति प्रभा कृष्ण और रामचन्द्र से कहीं बढ़कर थीं पर चूँकि वह ब्राह्मणी धर्म का भी बहुत कुछ विरोधी था इस लिये उसकी वह शोहरत हिन्दुस्तान के

हिन्दुओं में नहीं हुई जो कृष्ण और रामचन्द्र और शंकर की हुई।......ऐसी चोटी के देश रक्षक, हिन्दु धर्म के हमदर्द, सच्चे देशभक्त की यादगार की इज़्ज़त दिलों में सदैव ताज़ा रखना चाहिये, पर शोक है कि बहुत हिन्दु उनके नाम से भी वाक़िफ़ नहीं हैं। इससे अधिक क़ौम की कृतघ्नता और क्या हो सकती है?"

"किसी ने सच कहा है—

"अगर न होते गुरु गोविन्दसिंह, हिन्दू धरम था दूर हुआ।"

हाँ! चूड़ामणि कवि सन्तोखसिंह जी भी तो यही कहते हैं कि—

छाय जाती एकता अनेकता विलाय जाती,
धाय जाती कुचलता कतेबन कुरान की।
पाप ही परिपक्व जाते धरम धसक जाते,
वरन गरक जाते सहित विधान की॥
देवी देव देहरे "सन्तोखसिंह" दूर होते,
रीति मिट जाती कथा वेदन पुरान की।
श्री गुरु गोविन्दसिंह पावन परम शूर,
मूर्ति न होती जो पै करुणानिधान की॥

२९–गुरुजी की रचनाएँ।
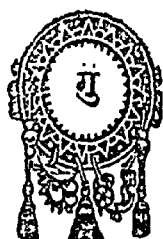
रु जी की सारी रचनाएँ हम तक नहीं पहुँच पाई हैं। बहुत सारे ग्रन्थ तो आनन्दपुर छोड़ते समय वाली रात्रि को सरसा नदी में बह जाने के कारण नष्ट होगए जिसका वृत्तान्त पाठक पहले सुन आए हैं (देखिये पृष्ठ १६५) और बहुत सारे सिक्खों ने अपनी मूर्खता से स्वयं सतलज नदी में इस कारण बहा दिये कि उनके विचार में वह ग्रन्थ इतने "वृद्ध" हो गए थे कि उनका इस प्रकार सँभाल कर रखना उन ग्रन्थों की बेअदबी का कारण हो रहा था! एक ग्रन्थ "विद्यासागर" नाम का जिसका अकेले का बोझ केवल नौमन था आनन्दपुर के युद्ध में नष्ट हो गया। इसके केवल ६२ पृष्ठ कवि सन्तोखसिंह जी को मिले थे जो इस समय उनके अपने "गुरु प्रताप सूर्य्य" नामक ग्रन्थ में समाविष्ट हैं। इतना बड़ा भारी पुस्तक भण्डार नष्ट होजाने पर जो कुछ बाक़ी बचा है और जो अब आज कल मिलता है वह भी इतना विशाल है कि उसको देख यह आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि अपनी छोटी सी आयु में जिसमें युद्ध भी होते रहे और अन्य कार्य भी निभते रहे गुरुजी ने कैसे समय निकाल कर इतना बड़ा भारी काव्य भण्डार भी तैय्यार किया। जो कुछ बची हुई रचनाएँ अब मिलती हैं वह इस प्रकार हैं—

१–"जापजी"—इसमें ईश्वर के कर्म नामों का बड़ा सुन्दर

और विचित्र संग्रह है और इस वाणी का पाठ सिक्ख नित्य प्रातः उठकर किया करते हैं।

२-"अकाल स्तुति"—यह ईश्वर का गुणानुवाद है और इसमें ईश्वर खोजने वाले पुरुषों की भूलों को बड़े प्रभावशाली वाक्यों में दर्शाया है।

३-"विचित्र नाटक"—इस ग्रन्थ में गुरु जी ने अपने पूर्व जन्म से लेकर सारा जीवन चरित्र लिखा है। "यह एक प्रकार का आत्म चरित्र है। इसमें अपनी कुल लड़ाई, आफ़त, विपत्ति, परीक्षा, लड़ाई की तैयारी, कठिनाई जो जो उन्हें झेलनी पड़ी, सबका सविस्तार वर्णन है और अन्त में अपना अनुभव, भावी भारत का कर्त्तव्य बड़ी ओजस्विनी भाषा में वर्णित है।" ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक बहुमूल्य ग्रन्थ है जिसको इतिहासज्ञों ने अभी तक अच्छी तरह से पढ़ने की चेष्टा नहीं की है।

४, ५-"चण्डी चरित्र" और "चंडी की वार"-इनमें राक्षसों के विरुद्ध देवी के भयानक युद्ध के वृत्तान्त हैं। भाषा ऐसी ओजस्विनी है कि पढ़ते पढ़ते एक दम जोश भर आता है। यह ग्रन्थ सिक्खों में जोश भरने के लिये बनाए गए प्रतीत होते हैं।

६-"ज्ञान प्रबोध"—ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार है।

७-"२४ अवतार"-इन ग्रन्थों में २४ अवतारों का वर्णन है। "श्रीरामावतार" ग्रन्थ के सामने तुलसीकृत रामायण मात है और "श्री कृष्णावतार" ग्रन्थ के मुकाबले में हिन्दी साहित्य में कोई दूसरा ग्रन्थ है ही नहीं।

८-"हज़ारे के शब्द"—यह ईश्वर महिमा और भक्ति के अमूल्य रत्न हैं।

९-"३३ सवैये"—इनमें यह बतलाया गया है कि वेद, पुराण और कुरान की शिक्षाओं में कहाँ तक सच्चाई है।

१०-"शस्त्र नाम माला"—इस ग्रन्थ में सब शस्त्रों के नाम और उनकी तारीफ़ दी हुई है।

११-"पख्याने त्रिया चरित्र"—इसमें स्त्रियों के ४०५ चरित्रों का वर्णन है। यह नीति का एक बहुमूल्य ग्रन्थ है।

१२, १३-"ज़फ़रनामा" और "हिकायतें"—यह सब फ़ार्सी कविता में हैं। ज़फ़रनामा का भाषानुवाद पाठक पीछे पढ़ आये हैं। यह एक ऐतिहासिक रत्न है।

१४-"सर्वलोह प्रकाश"—यह ग्रन्थ बड़ा विशाल है और इसी कारण अभी अप्रकाशित है। इसकी केवल पाँच छः हस्तलिखित प्रतियाँ ही मौजूद हैं।

नं० १ से १३ तक के ग्रन्थ एक जगह संग्रह किये हुए हैं और यह बड़ा ग्रन्थ "दशम ग्रन्थ" के नाम से प्रसिद्ध है।

अब आगे दशम ग्रन्थ में से कुछ वाणी दी जाती है। यद्यपि यह अपने आप में कविता का एक चमत्कार है तो भी यह यहाँ इस विचार से नहीं दी जा रही। इसको यहाँ देने का मुख्य मन्तव्य यह है कि पाठक श्रीगुरुजी की वाणी का स्वयं अध्ययन करके उनके उद्देश्य और आदर्श को ठीक ठीक समझ सकें।

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

❁ जापु ❁

छप्पै छन्द—त्वप्रसादि ।

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह ॥
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत ।
त्व सरबनाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत ॥ १ ॥

भुजङ्ग प्रयात छन्द —त्वप्रसादि ।

नमस्त्वं अकाले । नमस्त्वं कृपाले ॥
नमस्त्वं अरूपे । नमस्त्वं अनूपे ॥ २ ॥
नमस्तं अभेखे । नमस्तं अलेखे ॥
नमस्तं अकाए । नमस्तं अजाए ॥ ३ ॥
नमो सर्ब काले । नमो सर्ब दिआले ॥
नमो सर्ब रूपे । नमो सर्ब भूपे ॥ १६ ॥
नमो काल काले । नमस्तस्त दिआले ॥
नमस्तं अबरने । नमस्तं अमरने ॥ २३ ॥
नमो सर्ब सोखं । नमो सर्ब पोखं ॥
नमो सर्ब करता । नमो सर्ब हरता ॥ २७ ॥

चाचरी छन्द—त्वप्रसादि ।

अरूप हैं । अनूप हैं ॥ अजू हैं । अभू हैं ॥ २६ ॥
अलेख हैं । अभेख हैं ॥ अनाम हैं । अकाम हैं ॥ ३० ॥

अधे हैं। अभे हैं॥ अजीत हैं। अभीत हैं॥ ३१॥
त्रिमान हैं। निधान हैं॥ त्रिबर्ग हैं। असर्ग हैं॥ ३२॥
अनील हैं। अनाद् हैं॥ अजेय हैं। अजादि हैं॥ ३३॥
अजन्म हैं। अबर्न हैं॥ अभूत हैं। अभर्न हैं॥ ३४॥
अगंज हैं। अभंज हैं॥ अभूझ हैं। अझंझ हैं॥ ३५॥
अमीक हैं। रफीक हैं॥ अधंध हैं। अबंध हैं॥ ३६॥
नृबूझ हैं। असूझ हैं॥ अकाल हैं। अजाल हैं॥ ३७॥
अलाह हैं। अजाह हैं॥ अनन्त हैं। महन्त हैं॥ ३८॥
अलीक हैं। नृस्रीक हैं॥ नृलम्भ हैं। असम्भ हैं॥ ३९॥
अगम्म हैं। अजम्म हैं॥ अभूत हैं। अछूत हैं॥ ४०॥
अलोक हैं। असोक हैं॥ अकर्म हैं। अभर्म हैं॥ ४१॥
अजीत हैं। अभीत हैं॥ अबाह हैं। अगाह हैं॥ ४२॥
अमान हैं। निधान हैं॥ अनेक हैं। फिरएक हैं॥ ४३॥

चरपट छन्द—त्वप्रसादि।

अम्मृत कर्मे। अम्मृत धर्मे॥
अखल्ल जोगे। अचल्ल भोगे॥ ७४॥
अचल्ल राजे। अटल्ल साजे॥
अखल्ल धर्मं। अलक्ख कर्मं॥ ७५॥
सर्बं दाता। सर्बं ज्ञाता॥
सर्बं भाने। सर्बं माने॥ ७६॥
सर्बं प्राणं। सर्बं त्राणं॥
सर्बं भुगता। सर्बं जुगता॥ ७७॥
सर्बं देवं। सर्बं भेवं॥
सर्बं काले। सर्बं पाले॥ ७८॥

मधुभार छन्द—त्वप्रसादि ।

गुन गन उदार । महिमा अपार ॥
आसन अभंग । उपमा अनंग ॥ ८७ ॥
अनभउ प्रकास । निसदिन अनास ॥
आजान बाहु । साहान साहु ॥ ८८ ॥
मुनि मनि प्रनाम । गुन गन मुदाम ॥
अरवर अगंज । हरि नर प्रभंज ॥ १६० ॥
ओङ्कारि आदि । कथनी अनादि ॥
खल खंड ख्याल । गुर वर अकाल ॥ १६६ ॥

हरिबोलमना छन्द—त्वप्रसादि ।

करणालय हैं । अर घालय हैं ॥
खल खंडन हैं । महि मंडन हैं ॥ १७० ॥
जगतेस्वर हैं । परमेस्वर हैं ॥
कलिकारन हैं । सर्ब उबारन हैं ॥ १७१ ॥
बिस्वंभर हैं । करुणालय हैं ॥
नृप नाइक हैं । सर्ब पाइक हैं ॥ १८० ॥
परमातम हैं । सरबातम हैं ॥
आतम बस हैं । जस के जस हैं ॥ १८३ ॥

एक अच्छरी छन्द ।

अजै । अलै ॥ अभै । अबै ॥ १८८ ॥
अभू । अजू ॥ अनास । अकास ॥ १८६ ॥
अगंज । अभंज ॥ अलक्ख । अभक्ख ॥ १६० ॥
अकाल । दिआल ॥ अलेख । अभेख ॥ १६१ ॥

अनाम । अकाम ॥ अगाह । अढाह ॥ १६२ ॥
अनाथे । प्रमाथे ॥ अजोनी । अमोनी ॥ १६३ ॥
नरागे । नरंगे ॥ नरूपे । नरेखे ॥ १६४ ॥
अकरमं । अभरमं ॥ अगंजे । अलेखे ॥ १६५ ॥

भुजंग प्रयात छन्द ।

नमस्तुल प्रनामे समस्तुल प्रणासे ।
अगंजुल अनामे समस्तुल निवासे ॥
निकामं विभूते समस्तुल सरूपे ।
कुकर्मं प्रणासी सुधर्मं विभूते ॥ १६६ ॥
सदा सच्चदानन्द सत्रं प्रणासी ।
करीमुल कुनिन्दा समस्तुल निवासी ॥
अजाइब विभूते गजाइब गनीमे ।
हरीअं करीअं करीमुल रहीमे ॥ १६७ ॥
चत्र चक्र वर्ती चत्र चक्र भुगते ।
सुयंभव सुभं सर्वदा सर्व जुगते ॥
दुकालं प्रणासी दयालं सरूपे ।
सदा अंग संगे अभंगं विभूते ॥ १६८ ॥

---

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

❋ अकाल स्तुति ❋

त्वप्रसादि—चौपई ।

प्रणवो आदि एकंकारा ।
जल थल महीअल कियो पसारा ॥

आदि पुरख अवगत अविनासी।
लोक चतुर्दस जोति प्रकासी॥ १॥
हस्त कीट के बीच समाना।
राव रंक जिह इक सर जाना॥
अद्वै अलख पुरख अविगामी।
सब घट घट के अन्तरजामी॥ २॥
अलख रूप अछै अनभेखा।
राग रंग जिह रूप न रेखा॥
वर्न चिह्न सभ हूँ ते न्यारा।
आदि पुरख अद्वै अविकारा॥ ३॥
वर्न त्रिह्न जिह जात न पाता।
सत्र मित्र जिह तात न माता॥
सभ ते दूरि सभन ते नेरा।
जल थल महीअल जाहि बसेरा॥ ४॥
अनहद रूप अनाहद बानी।
चरन सरन जिह बसत भवानी॥
ब्रह्मा बिसन अन्तु नहीं पायो।
नेत नेत मुख चार बतायो॥ ५॥
कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए।
ब्रह्मा रुद्र उपाइ खपाए॥
लोक चतुर्दस खेल रचायो।
बहुर आप ही बीच मिलायो॥ ६॥
दानव देव फनिन्द अपारा।
गन्धर्ब जच्छ रचे सुभचारा॥

भूत भविख्य भवान कहानी।
घट घट के पट पट की जानी ॥ ७ ॥

तात मात जिह जात न पाता।
एक रंग काहू नहीं राता ॥
सरब जोत के बीच समाना।
सभहूँ सरब ठौर पहिचाना ॥ ८ ॥

काल रहित अनकाल सरूपा।
अलख पुरख अवगत अवधूता ॥
जात पात जिह चिहू न बरना।
अवगत देव अछै अन भरमा ॥ ६ ॥

सभ को काल सभन को करता।
रोग सोग दोखन को हरता ॥
एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो।
काल फास के बीच न आयो ॥ १० ॥

त्वप्रसादि—कवित्त।

कतहूँ सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ,
कतहूं अचिन्त हुइकै सोवत अचेत हो।
कतहूँ भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख,
कहूँ महा दानि हुइकै माँगिओ धन देत हो ॥
कहूँ महाँराजन को दीजत अनन्त दान,
कहूँ महाँराजन ते छीन छित लेत हो।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो ॥ १ ॥११॥

कहूँ जच्छ गन्धर्व उरग कहूँ विद्याधर,
कहूँ भए किन्नर पिसाच कहूँ प्रेत हो।
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गाइत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाँग देत हो॥
कहूँ कोक काव के पुरान को पढ़त मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ २॥१२॥

कहूँ देवतान के दिवान मैं बिराजमान,
कहूँ दानवान को गुमान मत देत हो।
कहूँ इन्द्र राजा को मिलत इन्द्र पदवी सी,
कहूँ इन्द्र पदवी छिपाइ छीन लेत हो॥
कतहूँ बिचार अबिचार को बिचारत हो,
कहूँ निजनार परनार के निकेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ३॥१३॥

कहूँ शस्त्र धारी कहूँ विद्या के बिचारी,
कहूँ मारत अहारी कहूँ नार के निकेत हो।
कहूँ देव बानी कहूँ सारदा भवानी,
कहूँ मंगला मृड़ानी कहूँ स्याम कहूँ सेत हो॥
कहूँ धर्म धामी कहूँ सर्व ठउर गामी,
कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत कहूँ लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ४॥१४॥

कहूँ जटाधारी कहूँ कंठी धरे ब्रह्मचारी,
कहुँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो।
कहूँ कान फारे कहूँ डंडी हुइ पधारे,
कहूँ फूक फूक पावन को पृथी पै धरत हो॥
कतहूँ सिपाही हुइकै साधत सिलाहन कौ,
कहूँ छत्री हुइकै अर मारत मरत हो।
कहूँ भूम भार कौ उतारत हो महाराज,
कहूँ भव भूतन की भावना भरत हो॥ ५॥१५॥

कहूँ गीतनाद के निदान कौ बतावत हो,
कहूँ नृतकारी चित्रकारी के निधान हो।
कतहूँ पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो,
कतहूँ मयूख ऊख कहूँ मद पान हो॥
कहूँ महासूर हुइकै मारत मवासन कौ,
कहूँ महादेव देवतान के समान हो।
कहूँ महादीन कहूँ द्रव्य के अधीन,
कहूँ विद्या मैं प्रवीन कहूँ भूम कहूँ भान हो॥ ६॥१६॥

कहूँ अकलंक कहूँ मारत मयंक,
कहूँ पूरन प्रजंक कहूँ सुद्धता की सार हो।
कहूँ देव धर्म कहूँ साधना के हर्म,
कहूँ कुत्सत्त कुकर्म कहूँ धर्म के प्रकार हो॥
कहूँ पउनहारी कहूँ विद्या के विचारी,
कहूँ जोगी जती ब्रह्मचारी नर कहूँ नार हो।
कहूँ छत्र धारी कहूँ छाला धरे छैल भारी,
कहूँ छकवारी कहूँ छल के प्रकार हो॥ ७॥१७॥

कहूँ गीत के गवैया कहूँ बेन के बगैया,
कहूँ नृत के नचैया कहूँ नर को अकार हो।
कहूँ बेद बानी कहूँ कोक की कहानी,
कहूँ राजा कहूँ रानी कहूँ नार के प्रकार हो॥
कहूँ बेन के बजैया कहूँ धेन के चरैया,
कहूँ लाखन लवैया कहूँ सुन्दर कुमार हो।
सुद्धता की सान हो कि सन्तन के प्रान हो कि,
दाता महादान हो कि निर्दोखी निरंकार हो॥८॥१८॥

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो,
कि भूपन के भूप हो कि दाता महा दान हो।
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महा मान हो॥
बिद्या के बिचार हो कि अद्वै अवतार हो कि,
सिद्धता की सूरति हो कि सुद्धता का सान हो।
जोबन के जाल हो कि काल हूँ के काल हो कि,
सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो॥ ९॥१९॥

कहूँ ब्रह्मवाद कहूँ बिद्या को बिखाद,
कहूँ नाद को ननाद कहूँ पूरन भगत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ बिद्या की प्रतीत,
कहूँ नीत अउ अनीत कहूँ ज्वाला सी जगत हो॥
पूरन प्रताप कहूँ इकाती को जाप कहूँ,
ताप को अताप कहूँ जोग ते डिगत हो।
कहूँ बर देत कहूँ छल सिउ छिनाइ लेत,
सर्ब काल सर्ब ठउर एक से लगत हो॥ १० ॥२०॥

त्वप्रसादि—सवैये।

स्रावग सुद्ध समूह सिधान के,
देखि फिरिओ घर जोग जती के।
सूर सुरा रद्दन सुद्ध सुधादिक,
सन्त समूह अनेक मती के॥
सारे ही देस को देखि रह्यो,
मत कोऊ न देखियत प्रान पती के।
श्री भगवान की भाइ कृपा हू ते,
एक रती बिनु एक रती के॥ १॥

माते मतंग जरे जर संगि,
अनूप उतंग सुरंग सवारे।
कोट तुरंग कुरंग से कूदत,
पउन के गउन कउ जात निवारे॥
भारी भुजान के भूप भली बिधि,
निआवत सीस न जात बिचारे।
एते भए तो कहा भए भूपत,
अन्त कौ नागे ही पाइ पधारे॥ २॥

जीत फिरै सब देस दिसान को,
बाजत ढोल मृदंग नगारे।
गुंजत गूड़ गजान के सुन्दर,
हंसत ही हय राज हजारे॥
भूत भविख्य भवान के भूपत,
कउन गनै नही जात बिचारे।
श्री पत श्री भगवान भजे बिनु,
अन्त कउ अन्त के धाम सिधारे॥ ३॥

तीरथ नान दया दम दान,
सुसंजम नेम अनेक विसेखै।
बेद पुरान कतेब कुरान,
जिमीन जमान सबान के पेखै॥
पउन अहार जती जत धार,
सबै सुबिचार हजारक देखै।
श्री भगवान भजे बिनु भूपति,
एक रती बिनु एक न लेखै॥ ४॥

सुद्ध सिपाह दुरन्त दुबाह,
सुसाजि सनाह दुर्जान दलैंगे।
भारी गुमान भरे मन मैं,
कर परबत पंख हले न हलैंगे॥
तोर अरीन मरोर मवासन,
माते मतंगन मान मलैंगे।
श्री पत श्री भगवान कृपा बिनु,
त्याग जहानु निदान चलैंगे॥ ५॥

बीर अपार बडे बरिआर,
अबिचारहिं सार की धार भछैया।
तोरत देस मलिन्द मवासन,
माते गजान के मान मलैया॥
गाढ़े गढ़ान के तोड़न हार,
सु बातन ही चक चार लवैया।
साहिब श्री सभ को सिर नाइक,
जाचिक अनेक सु एक दिवैया॥ ६॥

दानव देव फनिन्द निसाचर,
भूत भविष्य भवान जपैंगे।
जीव जिते जल मैं थल मैं,
पल ही पल मैं सम थाप थपैंगे॥
पुन्न प्रतापन बाढ जैत धुन,
पापन के बहु पुञ्ज खपैंगे।
साध समूह प्रसन्न फिरैं जग,
सत्रु सभै अवलोक चपैंगे॥ ७॥

मानव इन्द्र गजिन्द्र नराधप,
जौन त्रिलोक को राजु करैंगे।
कोटि इस्नान गजादिक दान,
अनेक सुअम्बर साज वरैंगे॥
ब्रह्म महेसर बिसन सचीपत,
अन्त फसे जम फास परैंगे।
जे नर श्री पति के प्रस हैं पग,
तै नर फेर न देह धरैंगे॥ ८॥

कहा भयो जो दोऊ लोचन मूँद कै,
बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो।
नात फिर्‌यो लीए सात समुद्रन,
लोक गयो परलोक गवायो॥
बासु कीओ बिखिआन सो बैठ कै,
ऐसे ही ऐस सुबैस बितायो।
साचु कहौं सुन लेहु सभै,
जिन प्रेमु कीओ तिनही प्रभु पायो॥ ६॥

काहूँ लै पाहन पूज धर्‌यो सिर,
काहूँ लै लिंगु गरे लटकायो।
काहूँ लखिओ हरि अवाची दिसा महि,
काहूँ पछाह को सीस निवायो॥
कोऊ बुतान कौ पूजत है पसु,
कोऊ मृतान कौ पूजन धायो।
कूर क्रिया उरझयो सभ ही जगु,
श्री भगवान को भेदु न पायो॥१०॥३०॥

त्वप्रसादि—तोमर छन्द।

हरि जन्म मरन विहीन। दस चार चार प्रवीन॥
अकलंक रूप अपार। अनछिज्ज तेज उदार॥ १ ॥३१॥
अनभिज्ज रूप दुरन्त। सभ जगत भगत महन्त॥
जस तिलक भूभृत भान। दस चार चार निधान॥ २ ॥३२॥
जिह अंड ते ब्रहमण्ड। कीने सुचौदह खण्ड॥
सभ कीन जगत पसार। अव्यक्त रूप उदार॥ ७ ॥३७॥
जिह कोटि इन्द्र नृपार। कई ब्रहा बिसन बिचार॥
कई राम कृसन रसूल। बिनु भगत को न कबूल॥ ८ ॥३८॥
कई सिन्ध बिन्ध नगिन्द्र। कई मच्छ कच्छ फनिन्द्र॥
कई देव आदि कुमार। कई कृसन बिसन अवतार॥ ९ ॥३९॥
कई इन्द्र बार बुहार। कई बेद अउ मुख चार॥
कई रुद्र छुद्र सरूप। कई राम कृसन अनूप॥१०॥४०॥
कई कोक काब भणन्त। कई बेद भेद कहन्त॥
कई सास्त्र सिम्रति बखान। कहूँ कथत ही सु पुरान॥११॥४१॥

कई ब्रह्म बेद रटन्त। कई सेख नाम उचरन्त॥
बैराग कहूँ सन्यास। कहूँ फिरत रूप उदास॥१९॥४९॥
सभ करम फोकट जान। सभ धरम निहफल मान॥
बिन एक नाम अधार। सभ कर्म भर्म बिचार॥२०॥५०॥

त्वप्रसादि – लघुनिराज छन्द।

जले हरी। थले हरी॥ उरे हरी। बने हरी॥ १॥
गिरे हरी। गुफे हरी॥ छिते हरी। नभे हरी॥ २॥
ईहाँ हरी। ऊहाँ हरी॥ जिमीं हरी। जमाँ हरी॥ ३॥
अलेख हरी। अभेख हरी॥ अदोख हरी। अद्वेख हरी॥ ४॥
अकाल हरी। अपाल हरी॥ अछेद हरी। अभेद हरी॥ ५॥
अजंत्र हरी। अमंत्र हरी॥ सुतेज हरी। अतंत्र हरी॥ ६॥
अजात हरी। अपात हरी॥ अमित्र हरी। अमात हरी॥ ७॥
अरोग हरी। असोक हरी॥ अभर्म हरी। अकर्म हरी॥ ८॥
अजै हरी। अभै हरी॥ अभेद हरी। अछेद हरी॥ ९॥
अखंड हरी। अभंड हरी॥ अडंड हरी। प्रचंड हरी॥१०॥
अतेव हरी। अभेव हरी॥ अजेव हरी। अछेव हरी॥११॥
भजो हरी। थपो हरी॥ तपो हरी। जपो हरी॥१२॥
जलस तुही। थलस तुही॥ नदिस तुही। नदस तुही॥१३॥
बृछस तुही। पतस तुही॥ छितस तुही। उर्धस तुही॥१४॥
भजस तुअं। भजस तुअं॥ रटस तुअं। ठटस तुअं॥१५॥
ज़िमी तुही। ज़माँ तुही॥ मकी तुही। मकाँ तुही॥१६॥
अभू तुही। अभै तुही॥ अछू तुही। अछै तुही॥१७॥
जतस तुही। ब्रतस तुही॥ गतस तुही। मतस तुही॥१८॥
तुही तुही। तुही तुही॥ तुही तुही। तुही तुही॥१९॥
तुही तुही। तुही तुही॥ तुही तुही। तुही तुही॥२०॥७०

त्वप्रसादि—कवित्त ।

खूक मलहारी गज गदहा विभूत धारी,
गिद्धुआ मसान वास करिओई करत है।
घुग्घू मटवासी लगे डोलत उदासी,
मृग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है॥
विन्द के सधैया ताहि हीज की वडैया देत,
वन्दरा सदीव पाइ नागेई फिरत है।
अंगना अधीन काम क्रोध मैं प्रवीन,
एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे कै तरत है॥ १ ॥७१॥
भूत वनचारी छित छउना सभै दूधा धारी,
पउन के अहारी सुभुजंग जानियतु है।
तृण के भछैया धन लोभ के तजैया,
तेतो गऊअन के जैया वृख भैया मानियतु है॥
नभ के उडैया ताहि पंछी की वडैया देत,
वगुला विड़ाल वृक ध्यानी ठानियतु है।
जेते वडे ज्ञानी तिनो जानी-पै वखानी नाहि,
ऐसे न प्रपंच मन भूल आनियतु है॥ २ ॥७२॥
भूम के वसैया ताहि भूचरी के जैया कहै,
नभ के उडैया सो चिरैया कै वखानियै।
फल के भछैया ताहि बाँदरी के जैया कहैं,
आदिस फिरैया तेतो भूत कै पछानियै॥
जल के तरैया को गंगेरी सी कहत जग,
आग के भछैया सो चकोर सम मानियै।
सूरज सिवैया ताहि कउल की वडाई देत,
चन्द्रमा सिवैया को कवी कै पहिचानियै॥ ३ ॥७३॥

नाराइण कच्छ मच्छ तिन्दुआ कहत सभ,
कउल नाभ कउल जिह ताल मैं रहतु है।
गोपीनाथ गूजर गुपाल सबै धेनुचारी,
रिखी केस नाम कै महन्त लहियतु है॥
माधव भवर औ अटेरू को कन्हैया नाम,
कंस को वधैया जमदूत कहियतु है।
मूढ़ रूढ़ पीटत न गूढ़ता को भेद पावै,
पूजत न ताहि जाके राखे रहियतु है॥ ४ ॥७४॥

विस्वपाल जगत काल दीन दिआल वैरी साल,
सदा प्रतिपाल जमजाल ते रहत है।
जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रह्मचारी,
ध्यान काज भूख प्यास देह पै सहत है॥
निउली करम जल होम पावक पवन होम,
अधो मुख एक पाइ ठाडे न बहत है।
मानव फनिन्द देव दानव न पावै भेद,
वेद औ कतेब नेत नेत कै कहत है॥ ५ ॥७५॥

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर,
दामनी अनेक भाउ करिओई करत है।
चन्द्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज,
इन्द्र सो न राजा भव भूम को भरत है॥
सिव से तपस्वी आदि ब्रह्मा से न वेद चारी,
सनत कुमार सी तपस्या न अनत है।
ज्ञान के विहीन काल फास के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिराएई फिरत है॥ ६ ॥७६॥

एक शिव भए एक गए एक फेर भए,
रामचन्द्र कृष्न के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रह्मा अरु बिसन केते वेद औ पुरान केते,
सिमृति समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं॥
मौनदी मदार केते असुनी कुमार केते,
अंसा अवितार केते काल बस भए हैं।
पीर औ पिकाँवर केते गने न परत एते,
भूम ही ते हुइ कै फेरि भूमि ही मिलए हैं॥ ७ ॥७७॥

जोगी जती ब्रह्मचारी बडे बडे छत्र धारी,
छत्र ही की छाया कई कोस लौं चलत है।
बडे बडे राजन के दाबति फिरति देस,
बडे बडे राजनि के दर्प को दलत है॥
मान से महीप औ दिलीप कै से छत्र धारी,
बडो अभिमान भुजदण्ड को करत है।
दारा से दिलीसर द्रजोधन से मान धारी,
भोग भोग भूम अन्त भूम मैं मिलत है॥ ८ ॥७८॥

सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस,
पोसती अनेकदा निवावत है सीस कौ।
कहा भयो मल्ल जौ पै काढत अनेक डंड,
सो तौ न डंडौत अष्टाँग अथतीस कौ॥
कहा भयो रोगी जो पै डार्‍यो रह्यो उर्ध मुख,
मन ते न मूँड निहरायो आद ईस कौ।
कामना अधीन सदा दामना प्रबीन,
एक भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस कौ॥९॥७९॥

सीस पटकत जाके कान मैं खजूरा धसै,
मूँड छटकत मित्र पुत्र हूँ के सोक सौं।
आक को चरैया फल फूल को भछैया,
सदा वन को भ्रमैया अउर दूसरो न वोक सौं॥
कहा भयो भेड जो घसत सीस बृछन सौं,
माटी को भछैया बोल पूछ लीजै जोक सौं।
कामना अधीन काम क्रोध मैं प्रवीन,
एक भावना विहीन कैसे भेटै परलोक सौं॥१०॥८०॥

नाचिओई करत मोर दादर करत सोर,
सदा घन घोर घन करिओई करत है।
एक पाइ ठाढे सदा वन मैं रहत बृच्छ,
फूक फूक पाव भूम स्रावग धरत है॥
पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै,
काग अउर चील देस देस विचरत है।
ज्ञान के विहीन महादान मैं न हूजे लीन,
भावना विहीन दीन कैसे कै तरत है॥११॥८१॥

जैसे एक स्वाँगी कहूँ जोगीआ बैरागी बनै,
कबहूँ सन्यास भेस बनकै दिखावई।
कहूँ पउनहारी कहूँ बैठे लाइ तारी,
कहूँ लोभ की खुमारी सौं अनेक गुन गावई॥
कहूँ ब्रह्मचारी कहूँ हाथ पै लगावै बारी,
कहूँ डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई।
कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सौं,
ज्ञान के विहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई॥१२॥८२॥

पञ्च वार गीदर पुकारे परे सीतकाल,
कुञ्चर औ गदहा अनेकदा पुकारही।
कहा भयो जो पै कलवत्र लीओ काँसी बीच,
चीर चीर चोरटा कुठारन सों मार ही॥
कहा भयो फासी डार बूडिओ जड़ गंग धार,
डार डार फास ठग मार मार डारही।
डूबे नर्कधार मूढ़ ज्ञान के विना बिचार,
भावना विहीन कैसे ज्ञान को विचार ही॥१३॥८३॥

ताप के सहे ते जो पै पाइऐ अताप नाथ,
तापना अनेक तन घाइल सहत है।
जाप के किए ते जो पै पायत अजाप देव,
पूदना सदीव तुही तुही उचरत है॥
नभ के उडे ते जो पै नाराइण पाइयत,
अनल अकास पंछी डोलबो करत है।
आग मैं जरे ते गत राँड की परत कर,
पताल के बासी किउँ भुजंग न तरत है॥१४॥८४॥

कोऊ भयो मुँडिया सन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जतियन मानबो।
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो॥
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक ही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत न जानबो॥१५॥८५॥

देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदेव जच्छ गन्धर्ब तुरक हिन्दू;
न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है॥
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान;
खाक बाद आतस औ आब को रलाउ है।
अल्लह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई,
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है॥१६॥८६॥

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
न्यारे न्यारे हुइकै फेरि आग मैं मिलाहिंगे।
जैसे एक धूर तें अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे॥
जैसे एक नद ते तरङ्ग कोट उपजत है,
पान के तरङ्ग सबै पान ही कहाहिंगे।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे॥१७॥८७॥

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
केते अच्छ वच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिंगे।
केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैंगे भच्छ,
केतक प्रतच्छ हुइ पचाइ खाइ जाहिंगे॥
जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा,
काल के बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे।
तेज जिउं अतेज मैं अतेज जैसे तेज लीन,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे॥१८॥८८॥

फूकत फिरत केते रोवत मरत केते,
जल मैं डुबत केते आग मै जरत हैं।
केते गंग वासी केते मदीना मक्का निवासी,
केतक उदासी के भ्रमाएई फिरत हैं॥
करवत सहत केते भूम मैं गडत केते,
सूआ पै चढ़त केते दूख कउ भरत हैं।
गैन मैं उडत केते जल मैं रहत केते,
ज्ञान के बिहीन जक जारेई मरत हैं॥१९॥८९॥
सोध हारे देवता बिरोध हारे दानो वडे,
चोध हारे बोधक प्रबोध हारे जापसी।
घस हारे चन्दन लगाइ हारे चोआ चार,
पूज हारे पाहन चढ़ाइ हारे लापसी॥
गाह हारे गोरन मनाइ हारे मढ़ी मट्ट,
लीप हारे भीतन लगाइ हारे छापसी।
गाइ हारे गंधर्व बजाइ हारे किन्नर सभ,
पच हारे पण्डत तपन्त हारे तापसी॥२०॥९०॥

त्वप्रसादि—भुजंग प्रयात छन्द।

न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।
न मोहं न क्रोहं न द्रोहं न द्वैखं॥
न कर्मं न भर्मं न जन्मं न जातं।
न मित्रं न सत्रं न पित्रं न मातं॥ १ ॥ ९१ ॥
न नेहं न गेहं न कामं न धामं।
न पुत्रं न मित्रं न सत्रं न भामं॥
अलेखं अभेखं अजोनी सरूपं।
सदा सिद्धदा बुद्धदा वृद्ध रूपं॥ २ ॥ ९२ ॥

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं।
कहा वास ताको फिरै कउन भेखं॥
कहा नाम ताको कहा कै कहावै।
कहा कै बखानो कहै मैं न आवै॥ २॥ ९२॥

किते कृष्न से कीट कोटै उपाए।
उसारे गढ़े फेरि मेटे बनाए॥
अगाधे अभै आदि अद्वै अबिनासी।
परेअंपरा परम पूरन प्रकासी॥ ६॥ ९६॥

न रूपं न भूपं न कार्यं न करमं।
न त्रासं न प्रासं न भेदं न भरमं॥
सदैवं सदा सिद्ध बृद्धं सरूपे।
नमो एक रूपे नमो एक रूपे॥ १२॥१०२॥

नृउक्तं प्रभा आदि अनुक्त प्रतापे।
अजुग्तं अछै आदि अविक्त अथापे॥
विभुग्तं अछै आदि अच्छै सरूपे।
नमो एक रूपे नमो एक रूपे॥ १३॥१०३॥

न नेहं न गेहं न सोकं न साकं।
परेअं पवित्रं पुनीतं अताकं॥
न जातं न पातं न मित्रं न मंत्रे।
नमो एक तंत्रे नमो एक तंत्रे॥ १४॥१०४॥

न धर्मं न भर्मं न सर्मं न साके।
न वर्मं न चर्मं न कर्मं न बाके॥
न सत्रं न मित्रं न पुत्रं सरूपे।
नमो आदि रूपे नमो आदि रूपे॥ १५॥१०५॥

कहूँ अच्छरा पच्छरा मच्छरा हो।
कहूँ बीर बिद्या अभूतं प्रभा हो॥
कहूँ छैल छाला धरे छत्र धारी।
कहूँ राज साजं धिराजा धिकारी॥ २६॥११६॥
नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध दाता।
अछेदी अछै आदि अद्वै बिधाता॥
न त्रस्तं न ग्रस्तं समस्तं सरूपे।
नमस्तं नमस्तं तुअस्तं अभूतं॥ ३०॥१२०।

त्वप्रसादि—पाधड़ी छन्द।

अव्यक्त तेज अनभउ प्रकास।
अच्छै सरूप अद्वै अनास॥
प्रकास तेज अनखुट भण्डार।
दाता दुरन्त सरबं प्रकार॥ १॥ १२१॥
कई नेह देह कई गेह बास।
कई भ्रमत देस देसन उदास॥
कई जल निवास कई अगन ताप।
कई जपत उर्ध लटकन्त जाप॥ १८॥१३८॥
कई जपत जोग कलपं प्रजन्त।
नहीं तदप तास पायत न अन्त॥
कई करत कोट बिद्या बिचार।
नही तदप दृष्ट देखे मुरार॥ १६॥१३६॥
बिन भगत सकत नहीं परत पान।
बहु करत होम अर जग्य दान॥
बिन एक नाम इक चित्त लीन।
फोकट सर्ब धर्मा बिहीन॥ २०॥१४०॥

त्वप्रसादि—तोटक छन्द ।

जै जम्पहु जुग्गण जूह जुअं ।
भै कम्पहु मेर पयाल भुअं ॥
तप तापस सर्ब जलेर थलं ।
धन उचरत इन्द्र कुमेर बलं ॥ १ ॥ १४१ ॥

अनखेद सरूप अभेद अभिअं ।
अनखण्ड अभूत अछेद अछिअं ॥
अनकाल अपाल दिआल असुअं ।
जिह ठटीअं मेर अकास भुअं ॥ २ ॥ १४२ ॥

जिह वेद पुरान कतेब जपै ।
सुत सिन्ध अधोमुख ताप तपै ॥
कई कलपन लौं तप ताप करै ।
नहीं नैक कृपानिध पान परै ॥ १८ ॥ १५८ ॥

जिह फोकट धर्म सबै तजि हैं ।
इक चित्त कृपानिध को जप हैं ॥
तेऊ या भव सागर को तर हैं ।
भव भूल न देह पुनर धर हैं ॥ १६ ॥ १५६ ॥

इक नाम विना नहिं कोट ब्रती ।
इम बेद उचारत सारसुती ॥
जेऊ वा रसके चसके रस हैं ।
तेऊ भूल न काल फधा फस हैं ॥ २० ॥ १६० ॥

त्वप्रसादि—नराज छन्द ।

अगंज आदि देव है अभंज भंज जानिऐ ।
अभूत भूत है सदा अगंज गंज मानिऐ ॥
अदेव देव है सदा अभेव भेव नाथ हैं ।
समस्त सिद्ध वृद्धदा सदीव सर्व साथ है ॥ १ ॥१६१॥

न जन्त्र मैं न तन्त्र मैं न मन्त्र वसि आवई ।
पुरान औ कुरान नेत नेत कै बतावई ॥
न कर्म मैं न धर्म मैं न भर्म मैं बताइऐ ।
अगञ्ज आदि देव है कहो सु कैस पाइऐ ॥५॥१६५॥

जिमी जमान के विखै समस्त एक जोत है ।
न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है ॥
न हान है न बान है समान रूप जानिऐ ।
मकीन औ मकान अप्रमान तेज मानिऐ ॥ ६ ॥१६६॥

गजाधपी नराधपी करन्त सेव है सदा ।
सितस्सुती तपस्पती बनस्पती जपस्सदा ॥
अगस्त आदि जे बडे तपस्तपी बिसेखिऐ ।
बिअंत बिअंत बिअंत को करन्त पाठ पेखिऐ ॥१६॥१७६॥

अगाध आद देव की अनाद बात मानिऐ ।
न जात पात मन्त्र मित्र सत्र स्नेह जानिऐ ॥
सदीव सरब लोक के कृपाल खिआल मैं रहै ।
तुरन्तद्रोह देह के अनन्त भाँत सो कहै २०॥ १ ॥८०॥

त्वप्रसादि—सवैये ।

दीनन की प्रतिपाल करै नित,
सन्त उबार गनीमन गारै ।
पच्छ पसू नग नाग नराधिप,
सरब समै सभ को प्रतिपारै ॥
पोखत है जल मैं थल मैं,
पल मैं कल के नहीं करम विचारै ।
दीन दयाल दयानिधि दोखन,
देखत है पर देत न हारै ॥१॥२४३॥
दाहत है दुख दोखन कौ,
दल दुज्जन के पल मैं दल डारै ।
खण्ड अखण्ड प्रचण्ड पहारन,
पूरन प्रेम की प्रीत सँभारै ॥
पार न पाइ सकै पदमापत,
वेद कतेब अभेद उचारै ।
रोज ही राज बिलोकत राजक,
रोख रूहान की रोजी न टारै॥२॥२४४॥
कीट पतंग कुरंग भुजंगम,
भूत भविख्य भवान बनाए ।
देव अदेव खपे अहमेव,
न भेव लख्यो भ्रम सिउँ भरमाए ॥
वेद पुरान कतेब कुरान,
हसेब थके कर हाथ न आए ।
पूरन प्रेम प्रभाउ बिना,
पति सिउँ किन श्री पदमापत पाए ॥३॥२४५॥

आद अनन्त अगाध अद्वैख,
सुभूत भविष्य भवान अभै है।
अन्त विहीन अनातम आप,
अदाग अदोख अछिद्र अछै है॥
लोगन के करता हरता,
जल मैं थल मैं भरता प्रभु वै है।
दीन द्याल दयाकर श्रीपत,
सुन्दर श्री पद्मापति पै है॥४॥२४६॥

काम न क्रोध न लोभ न मोह,
न रोग न सोग न भोग न भै है।
देह बिहीन सनेह सभो तन,
नेह विरक्त अगेह अछै है॥
जान को देत अजान को देत,
जमीन को देत जमान को दै है।
काहे को डोलत है तुमरी सुध,
सुन्दर श्री पद्मापत लै है॥५॥२४७॥

रोगन ते अर सोगन ते,
जल जोगन ते बहु भाँत बचावै।
सत्रु अनेक चलावत घाव,
तऊ तन एक न लागन पावै॥
राखत है अपनो कर दैकर,
पाप सँबूह न भेटन पावै।
और की बात कहा कह तो सौं,
सुपेट ही के पट बीच बचावै॥६॥२४८॥

जच्छ भुजंग सुदानव देव,
अभेव तुम्हें सबही कर ध्यावैं।
भूम अकास पताल रसातल,
जच्छ भुजंग सभै सिर न्यावैं॥
पाइ सकै नहिं पार प्रभा हूँ को,
नेत ही नेतहिं भेद बतावैं।
खोज थके सभ ही खुजीआ,
सुर हार परे हरि हाथ न आवैं॥७॥२४६॥

नारद से चतुरानन से,
रुमना रिखि से सभहूँ मिल गायो।
बेद कतेब न भेद लख्यो,
सब हार परे हरि हाथ न आयो॥
पाइ सकै नहीं पार उमापत,
सिद्ध सनाथ सनन्तन ध्यायो।
ध्यान धरो तिह को मन मैं,
जिह को अमितोज सभै जग छायो॥८॥२५०॥

बेद पुरान कतेब कुरान,
अभेद नृपान सभै पच हारे।
भेद न पाइ सकिओ अनभेद को,
खेदत है अनछेद पुकारे॥
राग न रूप न रेख न रङ्ग न,
साक न सोग न संग तिहारे।
आदि अनादि अगाध अभेख,
अद्वैख जपिओ तिनही कुल तारे॥६॥२५१

तीरथ कोट किये इस्नान,
किये बहु दान महा बृत धारे।
देस फिरिओ करि भेस तपो,
धन केस धरे न मिले हरि प्यारे॥
आसन कोट करे अष्टाँग,
धरे बहु न्यास करे मुख कारे।
दीन दयाल अकाल भजे बिन,
अन्त को अन्त के धाम सिधारे॥१०॥२५२॥

त्वप्रसादि—कवित्त।

छत्र के चलैया छित छत्र के धरैया,
छत्र धारिन छलैया महाँ सत्रन के साल हैं।
दान के दिवैया महा मान के बढैया,
अवसान के दिवैया हैं कटैया जम जाल हैं॥
जुद्ध के जितैया औ बिरुद्ध के मिटैया,
महा बुद्ध के दिवैया महामान हूँ के मान हैं।
ज्ञान हूँ के ज्ञाता महाँ बुद्धता के दाता,
देव काल हूँ के काल महाँ काल हूँ के काल हैं॥१॥२५३॥
पूरबी न पार पावैं हिंगुला हिमालै ध्यावैं,
गोर गरदेजी गुन गावै तेरे नाम हैं।
जोगी जोग साधै पउन साधना कितेक बाँधै,
आरब के आरबी अराधैं तेरे नाम हैं॥
फरा के फिरंगी मानै कंधारी कुरेसी जानैं,
पच्छम के पच्छमी पछानैं निज काम हैं।
मरहटा मघेले तेरी मन सों तपस्या करैं,
द्रवड़ै तिलंगी पहचानै धर्म धाम हैं॥२॥२५४॥

बंग के बंगाली फिरहंग के फिरंगावाली,
दिल्ली के दिलवाली तेरी आज्ञा मैं चलत हैं।
रोह के रुहेले माघ देस के मघेले,
बीर बंग सी बुँदेले पाप पुञ्ज को मलत हैं॥
गोरखा गुन गावैं चीनम चीन के सीस न्यावैं,
तिब्बती धिआइ दोख देह को दलत हैं।
जिनैं तोहि ध्यायो तिनैं पूरन प्रताप पायो,
सरब धन धाम फल फूल सो फलत हैं॥ ३॥२५५॥

देव देवतान कौ सुरेस दान वान कौ,
महेस गंग धान कउ अभेस कहियतु हैं।
रंग मैं रंगीन राग रूप मैं प्रवीन,
और काहू पै न दीन साध अधीन कहियतु हैं॥
पाइयै न पार तेज पुञ्ज मैं अपार,
सर्ब विद्या के उदार हैं अपार कहियतु हैं।
हाथी की पुकार पल पाछे पहुँचत ताहि,
चींटी की चिंघार पहिले ही सुनियतु है॥ ४॥२५६॥

केते इन्द्र द्वार केते ब्रह्मा मुख चार,
केते कृष्ना अवतार केते राम कहियतु हैं।
केते ससि रासी केते सूरज प्रकासी,
केते मुंडिया उदासी जोग द्वार दहियतु हैं॥
केते महाँदीन केते व्यास से प्रवीन,
केते कुमेर कुलीन केते जच्छ कहियतु हैं।
करत विचार पै न पूरन को पावैं पार,
ताही ते अपार निराधार लहियतु हैं॥ ५॥२५७॥

पूरन अवतार निराधार है न पारावार,
पाइयै न पार पै अपार कै बखानियै।
अद्वै अबनासी परम पूरन प्रकासी,
महारूप हूँ के रासी हैं अनासी कै कै मानियै॥
जंत्र हूँ न जात जाकी बाप हूँ न माइ ताकी,
पूरन प्रभा की सुछटा कै अनुमानियै।
तेज हूँ को तंत्र हैं कि राजसी को जंत्र हैं कि,
मोहनी को मंत्र है निजंत्र कै कै जानियै॥ ६॥२५८॥

तेज हूँ को तरु हैं कि राजसी को सरु हैं,
कि सुद्धता को घरु हैं कि सिद्धता की सार हैं।
कामना की खान हैं कि साधना की सान हैं,
बिरकता की बान हैं कि बुद्ध को उदार हैं॥
सुन्दर सरूप हैं कि भूपन को भूप हैं,
कि रूप हूँ को रूप हैं कुमत को प्रहार हैं।
दीनन को दाता हैं गनीमन को गारक हैं,
साधन को रच्छक हैं गुनन को पहार हैं॥ ७॥२५९॥

सिद्ध को सरूप हैं कि बुद्ध को बिभूत हैं,
कि क्रुद्ध को अभूत हैं कि अच्छै अबिनासी हैं।
काम को कुनिन्दा हैं कि खूबी को दहिन्दा हैं,
गनीमन गरिन्दा हैं कि तेज को प्रकासी हैं॥
काल हूँ के काल हैं कि सत्रन के साल हैं,
कि मित्रन को पोखत हैं कि वृद्धता की बासी हैं।
जोग हूँ को जंत्र हैं कि तेज हूँ को तंत्र हैं,
कि मोहनी को मंत्र हैं कि पूरन प्रकासी हैं॥ ८॥२६०॥

रूप को निवास हैं कि बुद्ध को प्रकास हैं,
कि सिद्धता को वास हैं कि बुद्ध हूँ को घरु हैं।
देवन को देव हैं निरंजन अभेव हैं,
अदेवन को देव हैं कि सुद्धता को सरु हैं॥
जान को बचैया हैं इमान को दिवैया,
जमजाल को कटैया हैं कि कामना को करु हैं।
तेज को प्रचण्ड हैं अखण्डण को खण्ड हैं,
महीपन को मण्ड हैं कि स्त्री हैं न नरु हैं॥ ९॥२६१॥

बिस्व को भरन हैं कि अपदा को हरन हैं,
कि सुख को करन हैं कि तेज को प्रकास हैं।
पाइयै न पार पारावार हूँ को पार जाको,
कीजत विचार सुविचार को निवास हैं॥
हिंगला हिमालै गावैं हसब्बी हलब्बी ध्यावैं,
पूरबी न पार पावैं आसा ते अनास हैं।
देवन को देव महा देव हूँ के देव हैं,
निरंजन अभेव नाथ अद्वै अविनासी हैं॥१०॥२६२॥

अंजन विहीन हैं निरंजन प्रवीन हैं,
कि सेवक अधीन हैं कटैया जम जाल के।
देवन के देव महा देव हूँ के देव नाथ,
भूम के भुजैया हैं मुहीया महा बाल के॥
राजन के राजा महा साज हूँ के साजा,
महा जोग हूँ को जोग हैं धरैया द्रुम छाल के।
कामना के कर हैं कि बुद्धता को हर हैं,
कि सिद्धता के साथी हैं कि काल हैं कुचाल के॥११॥२६३॥

छीर कैसी छीरावध छाछ कैसी छत्रानेर,
छपाकर कैसी छब काल इन्द्री के कूल के।
हंसनी सी सीहा रूम हीरा सी हुसैना वाद,
गंगा कैसी धार चली सातों सिंध रूल के॥
पारा सी पलाऊ गढ़ रूपा कैसी रामपुर,
सोरा सी सुरंगाबाद नीके रही भूल के।
चम्पा सी चंदेरी कोट चाँदनी सी चाँदागढ़,
कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के॥१२॥२६४॥

फटक सी कैलास कमाऊगढ़ काँसीपुर,
सीसा सी सुरंगावाद नीकै सोहियतु है।
हिमा सी हिमालै हर हार सी हलब्बानेर,
हंस कैसी हाजीपुर देखे मोहियतु है॥
चंदन सी चम्पावती चन्द्रमा सी चन्द्रागिरि,
चाँदनी सी चाँदा गढ़ जोन जोहियतु है।
गंगा सम गंग धार बकान सी बिलंदावाद,
कीरति तिहारी की उजिआरी सोहियतु है॥१३॥२६५॥

फरासी फिरंगी फरासीस के दुरंगी,
मकरान के मृदंगी तेरे गीत गाइयतु हैं।
भखरी कंधारी गोर गखरी गरदेजा चारी,
पौन के अहारी तेरो नामु ध्याइयतु हैं॥
पूरब पलाऊ काम रूप औ कमाऊ,
सर्ब ठउर मैं बिराजै जहाँ जहाँ जाइयतु हैं।
पूरन प्रतापी जंत्र मंत्र ते अतापी नाथ,
कीरति तिहारी को न पार पाइयतु हैं॥१४॥२६६॥

त्वप्रसादि—पाधड़ी छन्द ।

अद्वै अनास आसन अडोल ।
अद्वै अनन्त उपमा अतोल ॥
अच्छै सरूप अव्यक्त नाथ ।
आजान बाहु सरबा प्रमाथ ॥ १ ॥ २६७ ॥

जहँ तहँ महीप बन तन प्रफुल्ल ।
सोभा बसन्त जहँ तहँ प्रडुल्ल ॥
बन तन दुरन्त खग मृग महान ।
जहँ तहँ प्रफुल्ल सुन्दर सुजान ॥ २ ॥ २६८ ॥

फुलतं प्रफुल्ल लहि लहित मौर ।
सिर ढुरहि जान मन मथहि चौर ॥
कुदरत कमाल राजक रहीम ।
करुणानिधान कामल करीम ॥ ३ ॥ २६९ ॥

जहँ तहँ बिलोक तहँ तहँ प्रसोह ।
आजान बाहु अमितोज मोह ॥
रोसं बिरहत करुणानिधान ।
जहँ तहँ प्रफुल्ल सुन्दर सुजान ॥ ४ ॥ २७० ॥

बन तन महीप जल थल महान ।
जहँ तहँ प्रसोह करुणानिधान ॥
जगमगत तेज पूरन प्रताप ।
अम्बर जमीन जिह जपत जाप ॥ ५ ॥ २७१ ॥
सातों अकास सातों पतार ।
बिथर्यो अदृष्टि जिह करम जारि ॥

१ ओङ्कार सतिगुरु प्रसादि ।

बिचित्र नाटक ।

त्वप्रसादि—त्रिभंगी छन्द ।

खग खण्ड बिहण्डं खल दल खण्डं अतिरण मण्डं वर बण्डं ।
भुज दण्ड अखण्डं तेज प्रचण्डं जोति अमण्डं भान प्रभं ॥
सुख सन्ताँ करणं दुर्मति दरणं किल बिख हरणं अस सरणं ।
जै जै जग कारण सृष्ट उबारण मम प्रति पारण जै तेगं ॥२॥

भुजंग प्रयात छन्द ।

सदा एक जोत्यं अजूनी सरूपं ।
महाँ देव देवं महाँ भूप भूपं ॥
निरंकार नित्यं निरूपं नृबाणं ।
कलं कारणेयं नमो खड्ग पाणं ॥ ३ ॥

कहूँ फूल ह्वै कै भले राज फूले ।
कहूँ भवर ह्वै कै भली भाँति भूले ॥
कहूँ पवन ह्वै कै बहे बेगि ऐसे ।
कहे मो न आवै कथौं ताहि कैसे ॥ १२ ॥

रचे रैण दिवसं थपे सूर चन्द्रं ।
ठटे दईव दानो रचे वीर बिन्द्रं ॥
करी लोह कलमं लिख्यो लेख माथं ।
सबै जेर कीने बली काल हाथं ॥ २१ ॥

कई मेट डारे उसारे बनाए।
उपारे गढ़े फेरि मेटे उपाए॥
क्रिया कालजू की किनू ना पछानी।
घन्यो पै बिहै है घन्यो पै बिहानी॥ २६॥

किते कृष्न से कीट कोटै बनाए।
किते राम से मेटि डारे उपाए॥
महांदीन केते पृथी माँझ हूए।
समै आपनी आपनी अन्त मूए॥ २७॥

जिते इन्द्र से चन्द्र से होत आए।
तितिओ काल खापा न ते काल घाए॥
जिते अउलीआ अम्बीआ गउस ह्वै हैं।
समै काल के अन्त दाड़ा तलै हैं॥ २९॥

जिते मानधातादि राजा सुहाए।
समै बाँधि कै काल जेलै चलाए॥
जिनै नाम ताको उचारो उबारे।
बिना साम ताकी लखे कोट मारे॥ ३०॥

नराज छन्द।

अनूप रूप राजियं। निहार काम लाजियं।
अलोक लोक सोभियं। बिलोक लोक लोभियं॥ ४५॥
चमक्कि चन्द्र सीसियं। रह्यो लजाइ ईसियं।
सुसोभ नाग भूखणं। अनेक दुष्ट दूखणं॥ ४६॥
कृपाण पाण धारियं। करोर पाप टारियं।
गदा ग्रिष्ट पाणियं। कमाण बाण साणियं॥ ४७॥

सबद संख बज्जियं । घणंकि घुंग्र गज्जियं ।
सरनि नाथ तोरियं । उबार लाज मोरियं ॥ ४८ ॥
अनेक रूप सोहियं । बिसेख देव मोहियं ।
अदेव देव देवलं । कृपा निधान केवलं ॥ ४९ ॥
सु आदि अन्ति एकियं । धरे सरूप अनेकियं ।
कृपाण पाण राजई । बिलोक पाप भाजई ॥ ५० ॥
अलंकृतं सु देहियं । तनो मनो कि मोहियं ।
कमाण बाण धार ही । अनेक सत्रु टार ही ॥ ५१ ॥
घमकि घुंघरं सुरं । नवन्न नाद नूपरं ।
प्रजुआल बिज्जुलं जुलं । पवित्र परम निर्मलं ॥ ५२ ॥

भुजंग प्रयात ।

घटा सावणं जाण स्यामं सुहायं ।
मणी नीलनग्यं लखं सीस निआयं ॥
महाँ सुन्दरं स्यामं महाँ अभिरामं ।
महाँ रूप रूपं महाँ काम कामं । ५९ ॥

फिरै चक्र चउदहूँ पुरीयं मध्याणं ।
इसो कौन बीयं फिरै आइसाणं ॥
कहो कुण्ट कौनै बिखै भाज बाचै ।
सभं सीस के संग श्री काल नाचै ॥ ६० ॥

करे कोट कोऊ धरे कोट ओटं ।
बचैगो न किउँहूँ करै काल चोटं ॥
लिखं जंत्र केते पढ़ं मन्त्र कोटं ।
बिना सरन ताकी नहीं और ओटं ॥ ६१ ॥

लिखं जन्त्र थाके पढ़ं मन्त्र हारे।
करे काल ते अन्त लै कै विचारे॥
कित्यो तन्त्र साधे जनम्मं वितायो।
भए फोकटं काज एकै न आयो॥ ६२॥

किते नास मूँदै भए ब्रह्मचारी।
किते कण्ठ कण्ठी जटा सीस धारी॥
किते चीर कानं जुगीसं कहायं।
सभै फोकटं धर्म कामं न आयं॥ ६३॥

सवैया।

काल ही पाइ भयो भगवान,
सु जागत या जग जाकी कला है।
काल ही पाइ भयो ब्रह्मा सिव,
काल ही पाइ भयो जुगीआ है॥
काल ही पाइ सुरासुर गन्ध्रवं,
जच्छ भुजंग दिसा विदिसा है।
और सकाल सभै वसि काल के,
एक ही काल अकाल सदा है॥ ८४॥

भुजंग प्रयात छंद।

नमो खड्ग खण्डं कृपाणं कटारं।
सदा एक रूपं सदा निरविकारं॥
नमो वाण पाणं नमो दण्ड धारियं।
जिनै चौदहूँ लोक जीतं विधारियं॥ ८७॥

नमस्कारयं मोर तीरं तुफंगं।
नमो खग्ग अदगं अभेयं अभंगं॥

गव्रायं गरिष्टं नमो सेह धीयं।
जिनै तुल्हियं वीर वीयो न र्व.यं ॥ ८८ ॥

रसावल छन्द।

नमो चक्र पाणं। अभूतं भयाणं॥
नमो उग्र दाड़ं। महा गृष्ट गाड़ं ॥ ८६ ॥
नमो तीर तोपं। जिनै सत्रु घोपं॥
नमो धोप पट्टं। जिनै दुष्ट दट्टं ॥ ६० ॥
जिते शस्त्र नामं। नमस्कार तामं॥
जिते अस्त्र भेयं। नमस्कार तेयं ॥ ६१ ॥

सवैया।

मेर करो तृण ते मुहि जाहि,
गरीब नवाज न दूसर तो सो।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन,
भूलनहार कहूँ कोऊ मो सो॥
सेव करी तुमरी तिन के,
सभ ही गृह देखियत द्रव भरोसो।
या फल में सभ काल कृपान के,
भारी भुजान को भारी भरोसो ॥ ६२ ॥
सुम्भ निसुम्भ से कोट निसाचर,
जाहि छिनेक बिखै हन डारे।
धूमर लोचन चण्ड अउ मुण्ड से,
माहख से पल बीच निवारे॥
चामर से रण चिच्छुर से,
रक तिच्छण से भट दै भभकारे।

ऐसो सु साहिब पाइ कहा
परवाह रही इह दास तिहारे ॥ ६३ ॥

मुण्डहु से मधु कीटभ से,
मुर से अघ से जिन कोटि दले हैं।
ओट करी कबहूँ न जिनै,
रण चोट परी पग द्वै न टले हैं॥
सिन्धु विखै जे न बूडे निसाचर,
पावक वाण बहे न जले हैं।
ते अस तोर बिलोक अलोक,
सुलाज को छाडि कै भाजि चले हैं॥ ६४ ॥

रावण से महरावण से,
घट कानहु से पल बीच पछारे।
बारद नाद अकम्पन से,
जग जंग जुरे जिन सिउँ जम हारे॥
कुम्भ अकुम्भ से जीत सभै जग,
सात हूँ सिन्ध हथियार पखारे।
जे जे हुते अकटे बिकटे,
सु कटे करि काल कृपान के मारे॥ ६५ ॥

जो कहूँ काल ते भाज कै बाचियत,
तो किह कुण्ट कहो भज जईयै।
आगे हूँ काल धरे अस गाजत,
छाजत है जिह ते नसि अईयै॥
ऐसो न कै गयो कोई सुदाव रे
जाहि उपाव सों घाव बचईयै।

जाते न छूटीऐ मुड़ कहूँ,
हँसि ताकी न किउँ सरणागति जईयै ॥९६॥

कृसन अउ बिसन जपे तुहि कोटिक,
राम रहीम भली विधि ध्यायो।
ब्रह्म जप्यो अरु सम्भु थप्यो,
तिह ते तुहि को किनहूँ न बचायो।
कोट करी तपसा दिन कोटिक,
काहू न कौडी को काम कढायो।
काम का मंत्र कसीरे के काम न,
काल को घाउ किनहूँ न बचायो॥ ९७॥

काहे को कूर करे तपसा,
इनकी कोऊ कौडी के काम न ऐ है।
तोहि बचाइ सकै कहु कैसे कै,
आपन घाव बचाइ न ऐ है॥
कोप कराल की पावक कुण्ड मैं,
आप टँग्यो तिम तोहि टँगै है।
चेत रे चेत अजो जिय मैं जड़,
काल कृपा बिनु काम न ऐ है॥ ९८॥

ताहि पछानत है न महापसु,
जाको प्रताप तिहूँ पुर माही।
पूजत है परमेसर कै,
जिह कै परसै परलोक पराही॥
पाप करो परमारथ कै,
जिह पापन ते अति पाप लजाही।

पाइ परो परमेसर के जड़,
पाहन मैं परमेसर नाही ॥ ९९ ॥
मौन भजे नही मान तजे,
नही भेख सजे नही मूँड मुँडाए।
कण्ठ न कण्ठी कठोर धरे,
नही सीस जटान के जूट सुहाए॥
साचु कहौं सुनि लै चिति दै,
बिनु दीन दयाल की साम सिधाए।
प्रीत करे प्रभु पायत है,
कृपाल न भीजत लाँड कटाए॥१००॥
कागद द्वीप सभै करि कै,
अरु सात समुद्रन की मसु कै हौ।
काट बनासपती सगरी,
लिखबे हूँ के लेखन काज बनै हौ॥
सारसुती बकता करि कै,
जुगि कोटि गनेसि कै हाथ लिखै हौ।
काल कृपान बिना बिनती,
न तऊ तुमको प्रभु नेक रिझै हौ॥१०१॥

सवैया।

देह शिवा वर मोहि इहै,
शुभ करमन ते कबहुँ न टरों।
न डरों अरि सों जब जाइ लरों,
निश्चय कर आपनी जीत करों॥

अरु सिक्ख हौं आपने ही मन कौ,
इह लालच हउँ गुन तउँ उचरौं।
जब आव की अउध निदान बनै,
अत ही रण मैं तब जूझ मरौं ॥२३१॥
— चण्डी चरित्र।

---

१ ओङ्कार सतिगुरु प्रसादि।

ज्ञान प्रबोध।

त्रिभंगी छन्द—त्व प्रसादि।

अनक्काद सरूपं अमित बिभूतं अचल सरूपं बिसु करणं।
जग जोति प्रकासं आदि अनासं अमित अगासं सर्ब भरणं॥
अनगंज अकालं बिसु प्रतिपालं दीन दिआलं सुभ करणं।
आनन्द सरूपं अनहदि रूपं अमित बिभूतं तव सरणं॥१॥२१॥

कलस।

अमित तेज जग जोति प्रकासी।
आदि अछेद्र अभै अबिनासी॥
परम तत्त परमार्थ प्रकासी।
आदि सरूप अखण्ड उदासी॥ ५ ॥ २५॥

त्रिभंगी छन्द।

अखण्ड उदासी परम प्रकासी आदि अनासी बिस्व करं।
जगतावल करता जगत प्रहरता सभ जग भरता सिद्ध भरं॥
अच्छै अबिनासी तेज प्रकासी रूप सुरासी सरब छितं।
आनन्द सरूपी अनहद रूपी अलख बिभूती अमित गतं॥६॥२६

कलस ।

आदि अभै अनगाधि सरूपं ।
राग रंग जिह रेख न रूपं ॥
रंक भयो रावत कहूँ भूपं ।
कहूँ समुद्र सरता कहूँ कूपं ॥ ७ ॥ २७ ॥

त्रिभंगी छन्द ।

सरता कहूँ कूपं समुद्र सरूपं अलख विभूतं अमित गतं ।
अद्वै अविनासी परम प्रकासी तेज सुरासी अकृत कृतं ॥
जिह रूप न रेखं अलख अभेखं अमित अद्वैखं सरबमई ।
सभ किल विख हरणं पतित उधरणं असरणि सरणं एकदई ॥

कलस । ॥८॥२८॥

आजानु बाहु सारंग कर धरणं ।
अमित जोति जग जोति प्रकरणं ॥
महा बाहु बिस्वम्भर भरणं ।
खड्ग पाण खल दल बल हरणं ॥ ९ ॥ २९ ॥

त्रिभंगी छन्द ।

दल बल हरणं दुष्ट बिडरणं असरण सरणं अमित गतं ।
चल चख चारण मच्छ विडारण पाप प्रहारण अमित मतं ॥
आजान सुबाहं साहन साहं महिमा माहं सरब मई ।
जल थल बन रहिता बन त्रिनि कहिता खल दलि दहिता सुनरि सही ॥ १० ॥ ३० ॥

छप्पै छन्द ।

बेद भेद नहीं लखै ब्रह्म ब्रह्मा नहीं बुज्झै ।
बिआस परासुर सुक सनादि सिव अन्त न सुज्झै ॥
सनति कुआर सनकादि सरब जउ समा न पावहि ।
लख लखमी लख बिसन किसन कई नेत बतावहि ॥
असम्भ रूप अनभै प्रभा अति बलिस्ट जलि थलि करण ।
अच्युत अनन्त अद्वै अमित नाथ निरंजन तव सरण ॥१॥३२॥
अच्युत अभै आभेद अमित आखण्ड अतुल बल ।
अटल अनन्त अनादि अखै आखंड प्रबल दल ॥
अमित अमित अनतोल अभू अनभेद अभञ्जन ।
अनबिकार आतम सरूप सुर नर मुन रञ्जन ॥
अबिकार रूप अनभै सदा मुन जन गन बन्दत चरन ।
भव भरन करन दुख दोख हरन अतिप्रताप भ्रम भै हरन ॥२॥३३
नमो नाथ निरदाइक नमो निमरूप निरञ्जन ।
अगञ्जाण अगञ्जण अभञ्ज अनभेद अभञ्जन ॥
अच्छै अखै अविकार अभै अनभिज्ज अभेदन ।
अखेदान खेदन अखिज्ज अनछिद्र अछेदन ॥
आजानबाहु सारंगधर खड़गपाण दुरजन दलण ।
नर वर नरेस नाइक नृपणि नमो नवल जल थल रवणि ।४॥३५
दीन दयाल दुखहरण दुर्मतहन्ता दुख खण्डन ।
महाँ मोन मनहरन मदन मूरत मह मण्डन ॥
अमित तेज अबिकार अखै आभञ्ज अमित बल ।
निरभञ्ज निरभउ निर वैर निर जुर नृप जल थल ॥
अच्छै सरूप अच्छू अछित अच्छै अछान अच्छर ।
अद्वै सरूप अद्वियं अमर अभिबन्दत सुरनर असर ॥५॥३६॥

चक्रत चार चक्कवै चक्रत चउकुण्ठ चवग्गन ।
कोट सूर सम तेज तेज नहीं दून चवग्गन ॥
कोट चन्द्र चक्र परै तुल्य नहीं तेज बिचारत ।
बिआस परासर ब्रह्म भेद नहि भेद उचारत ॥
साहान साह साहिब सुघरि अति प्रताप सुंदर सबल ।
राजान राज साहिब सबल अमित तेज अच्छै अछल ॥८॥३९॥

कवित्त—त्वप्रसादि ।

गह्यो जो न जाइ सो अगाह कै कै गाहियतु,
छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै पछानियै ।
गंज्यो जो न जाइ सो अगञ्ज कै कै जानियतु,
भंज्यो जो न जाइ सो अभञ्ज कै कै मानियै ॥
साध्यो जो न जाइ सो असाधि कै कै साध कर,
छल्यो जो न जाइ सो अछल कै प्रमानियै ।
मंत्र मैं न आवै सो अमंत्र कै कै मानु मन,
जंत्र मैं न आवै सो अजंत्र कै कै जानियै ॥१॥४०॥

जात मैं न आवै सो अजात कै कै जानु जिय,
पात मैं न आवै सो अपात कै बुलाइयै ।
भेद मैं न आवै सो अभेद कै कै भाखियतु,
छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै सुनाइयै ॥
खंड्यो जो न जाइ सो अखंड जू को ख्यालु कीजै,
ख्याल मैं न आवै गमु ताको सदा खाइयै ।
जंत्र मैं न आवै सो अजंत्र कै कै जापियतु,
ध्यान मैं न आवै ताको ध्यानु कीजै ध्याइयै ॥२॥४१॥

छत्रधारी छत्रीपति छैलरूप छितनाथ,
छौणीकर छायावर छत्रीपत गाइयै।
बिस्वनाथ बिस्वम्भर बेदनाथ बालाकर,
बाजीगरि बानधारी बंधन बताइयै॥
निउली कर्म दूधाधारी बिद्याधर ब्रह्मचारी,
ध्यान को लगावै नैक ध्यान हूँ न पाइयै।
राजन् के राजा महाराजन के महाराजा,
ऐसो राज छोडि अउर दूजा कउन ध्याइयै॥३॥४२॥

जुद्ध के जितैया रंग भूमि के भवैया,
भार भूम के मिटैया नाथ तीनो लोक गाइयै।
काहू के तनैया है न मैया जाके भैया कोऊ
छउनी हूँ के छैया छोड कासिउँ प्रीत लाइयै॥
साधना सधैया धूल धानी के धुजैया,
धोम धार के धरैया ध्यान ताको सदा लाइयै।
आउ के बढैया एक नाम के जपैया
अउर काम के करैया छोड अउर कउन ध्याइयै॥४॥४३॥

काम को कुनिन्दा खैर खूबी को दिहिन्दा,
गज गाजी को गजिन्दा सो कुनिन्दा कै बताइयै।
चाम के चलिन्दा घाउ घाम ते बचिन्दा,
छत्र छौनी के छलिन्दा सो दिहिन्दा कै मनाइये॥
जर को दिहन्दा जान मान को जनिन्दा,
जोत जेब को गजिन्दा जान मान जान गाइयै।
दोख के दलिन्दा दीन दानस दहिन्दा,
दोख दुर्जन दलिन्दा ध्याइ दूजो कउन ध्याइयै॥५॥४४॥

सालित्त सिहिन्दा सिद्धताई को सधिन्दा,
अङ्ग अङ्ग मैं अविन्दा एकु एको नाथ जानियै।
कालख कटिन्दा खुरासान को खुनिन्दा,
गर्ब गाफल गलिन्दा गोल गञ्जख बखानियै॥
गालव गिरन्दा जीत तेज के दिहन्दा,
चित्र चाप के चलिन्दा छोड अउर कउन आनियै।
सत्वता दिहिन्दा सत्वताई को सुखिन्दा,
कर्म काम को कुनिन्दा छोड दूजा कउन मानियै॥५॥४५॥

जोवि को जगिन्दा जंग जाफरी दहिन्दा,
मित्र मारी के मलिन्दा पै कुनिन्दा कै बखानियै।
पालक पुनिन्दा परम पारसी प्रगिन्दा,
रंग राग के सुनिन्दा पै अनन्दा तेज मानियै॥
जाप के जपिन्दा खैर खूबी के दिहिन्दा,
खून माफ के कुनिन्दा हैं अभिज्ज रूप ठानियै।
आरजा दहिन्दा रंग राग के बढिन्दा
दुष्ट द्रोह के दलिन्दा छोड दूजो कौन मानियै॥६॥४६॥

आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि,
बुद्धता बिभूत जाहि सिद्धता सुभाउ है।
राग भी न रंग ताहि रूप भी न रेख जाहि,
अंग भी सुरंग ताहि रंग के सुभाउ है॥
चित्र सो बिचित्र है परमता पवित्र हैसु,
मित्र हूँ के मित्र है बिभूत को उपाउ है।
देवन को देव है कि साहन को साह है,
कि राजन को राजु है कि रावन को राउ है॥७॥४७॥

अर्धनराज छन्द—त्वप्रसादि ।

सजस्तुयं । धजस्तुयं ॥ अलस्तुयं । इकस्तुयं ॥ १ ॥ ६७ ॥
जलस्तुयं । थलस्तुयं ॥ पुरस्तुयं । बनस्तुयं ॥ २ ॥ ६८ ॥
गुरस्तुयं । गुफस्तुयं ॥ निरस्तुयं । निदस्तुयं ॥ ३ ॥ ६९ ॥
रवस्तुयं । ससस्तुयं ॥ रजस्तुयं । तमस्तुयं ॥ ४ ॥ ७० ॥
धनस्तुयं । मनस्तुयं ॥ वृछस्तुयं । बनस्तुयं ॥ ५ ॥ ७१ ॥
मतस्तुयं । गतस्तुयं ॥ व्रतस्तुयं । च्चितस्तुयं ॥ ६ ॥ ७२ ॥
पितस्तुयं । सुतस्तुयं ॥ मतस्तुयं । गतस्तुयं ॥ ७ ॥ ७३ ॥
नरस्तुयं । त्रियस्तुयं ॥ पितस्तुयं । वृदस्तुयं ॥ ८ ॥ ७४ ॥
हरिस्तुयं । करस्तुयं ॥ छलस्तुयं । बलस्तुयं ॥ ९ ॥ ७५ ॥
उडस्तुयं । पुडस्तुयं ॥ गडस्तुयं । दध्रस्तुय ॥ १०॥ ७६ ॥
रवस्तुयं । छपस्तुयं ॥ गर्वस्तुय । द्रिबस्तुयं ॥११॥ ७७ ॥
जैअस्तुयं । खैअस्तुयं ॥ पैअस्तुयं । त्रैअस्तुयं ॥१२॥ ७८ ॥

रसावल छन्द—त्वप्रसादि ।

दयादि आदि धरमं । सन्यास आदि करमं ।
गजादि आदि दानं । हयादि आदि थानं ॥ १ ॥१०९॥
सुवर्न आदि दानं । समुद्र आदि स्नानं ।
बिस्वादि आदि भरमं । विरक्तादि आदि करमं ॥२॥११०॥
निवल आदि करणं । सुनील आदि वरणं ।
अनील आदि ध्यानं । जपत तत्त प्रधानं ॥ ३ ॥१११॥
अमितकादि भगतं । अविक्तादि ब्रकतं ।
प्रछस्तुवा प्रजापं । प्रभगतुवा अथापं ॥ ४ ॥११२॥
सुभक्तादि करणं । अजगतुआ प्रहरणं ।
बिरक्तुआ प्रकासं । अविगतुआ प्रणासं ॥५॥११३॥

समस्तुआ प्रधानं । धुलस्तुआ धरानं ।
अविक्तुआ अभंगं । इकस्तुआ अनंगं ॥ ६ ॥ ११४ ॥
उअस्तुआ अकारं । कृपस्तुआ कृपारं ।
खितस्तुआ अखंडं । गतस्तुआ अगण्डं ॥ ७ ॥ ११५ ॥
घरस्तुआ घरानं । ङिअस्तुआ ङिहालं ।
चितस्तुआ अतापं । छितस्तुआ अछापं ॥ ८ ॥११६॥
जितस्तुआ अजापं । झिकस्तुआ अझापं ।
ञिकस्तुआ अनेकं । टुटस्तुआ अटेटं ॥ ९ ॥११७॥
ठटस्तुआ अठाटं । डटस्तुआ अडाटं ।
ढटस्तुआ अढापं । णकस्तुआ अणापं ॥ १० ॥११८॥
तपस्तुआ अतापं । थपस्तुआ अथापं ।
दलस्तुआदि दोखं । नहिस्तुआ अनोखं ॥ ११ ॥११९॥
पअक्तुआ अपानं । फलक्तुआ फलानं ।
बदक्तुआ बिसेखं । भजस्तुआ अभेखं ॥ १२ ॥१२०॥
मतस्तुआ फलानं । हरिक्तुआ हदानं ।
ड़अक्तुआ अड़ंगं । त्रिकस्तुआ त्रिभंगं ॥ १३ ॥१२१॥
रंगस्तुआ अरंगं । लवस्तुआ अलंगं ।
यकस्तुआ यकापं । इकस्तुआ इकापं ॥ १४ ॥१२२॥
वदिस्तुआ वरदानं । यकस्तुआ इकानं ।
लवस्तुआ अलेखं । ररिस्तुआ अरेखं ॥ १५ ॥१२३॥
त्रिअस्तुआ त्रिभंगे । हरिस्तुआ हरंगे ।
महिस्तुआ महेसं । भजस्तुआ अभेसं ॥ १६ ॥१२४॥
बरस्तुआ बरानं । पलस्तुआ फलानं ।
नरस्तुआ नरेसं । दलस्तुआ दलेसं ॥ १७ ॥१२५॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

चौबीस अउतार ।

चौपई ।

जब जब होत अरिष्टि अपारा ।
तब तब देह धरत अवतारा ॥
काल सबन को पेख तमासा ।
अन्तह काल करत है नासा ॥ २ ॥
काल सभन का करत पसारा ।
अन्त काल सोई खापन हारा ॥
आपन रूप अनन्तन धरही ।
आपहिं मध्य लीन पुन करही ॥ ३ ॥
काल आपनो नाम छपाई ।
अवरन के सिरि दै बुरिआई ॥
आपन रहत निरालम जग ते ।
जान लए जाना मैं तब ते ॥ ५ ॥
आप रचे आपे कल घाए ।
अवरन कै दै मूँड हताए ॥
आप निरालमु रहा न पाया ।
ताँते नामु बिअन्त कहाया ॥ ६ ॥
जो चउबीस अवतार कहाए ।
तिन भी तुम प्रभु तनक न पाए ॥
सभ ही जग भरमे भवरायं ।
ताते नामु बिअन्त कहायं ॥ ७ ॥

सभ ही छलत न आप छलाया।
ताते छलिया आप कहाया॥
सन्तन दुखी निरख अकुलावै।
दीन वन्धु ताते कहलावै॥ ८॥

अन्त करत सभ जग को काला।
नामु काल ताते जग डाला॥
समै सन्त पर होत सहाई।
ताते संख्यासन्त सुनाई॥ ९॥
निरख दीन पर होत दिआरा।
दीन वन्धु इस तवै विचारा॥
संतन पर करुणा रस ढरई।
करुणा निधि जग तवै उचरई॥ १०॥

संकट हरत साधुवन सदा।
संकट हरण नामु भयो तदा॥
दुख दाहत सन्तन के आयो।
दुख दाहन प्रभु तद्दिन कहायो॥ ११॥
रहा अनन्त अन्त नहिं पायो।
याते नामु विअन्त कहायो॥
जग मों रूप सभन के धरता।
याते नामु बखानैं करता॥ १२॥

किनहूँ कहूँ न ताहि लखायो।
इह कर नामु अलक्ख कहायो॥
जोन जगत मैं कबहुँ न आया।
याते सभौं अजोन बताया॥ १३॥

ब्रह्मादिक सब ही पच हारे।
बिसन महेस्वर कउन बिचारे॥
चन्द सूर्य जिन करे बिचारा।
ताते जनियत है करतारा॥ १४॥

सदा अभेख अभेखी रहई।
ताते जगत अभेखो कहई॥
अलख रूप किनहूँ नहि जाना।
तिह कर जात अलेख बखाना॥ १५॥

रूप अनूप सरूप अपारा।
भेख अभेख सभन ते न्यारा॥
दाइक सभो अजाचो सभ ते।
जान लयो करता हम तब ते॥ १६॥

लगन सगन ते रहत निरालम।
है यह कथा जगत मैं मालम॥
जन्त्र मन्त्र तन्त्र न रिझाया।
भेख करत किनहूँ नहिं पाया॥ १७॥

जग आपन आपन उरझाना।
पारब्रह्म काहू न पछाना॥
इक मड़ीअन कबरन वे जाँहीं।
दुहुँअन मैं परमेस्वर नाँहीं॥ १८॥

ए दोउ मोह बाद मों पचे।
इन ते नाथ निराले बचे॥
जाते छुटि गयो भ्रम उर का।
तिह आगै हिन्दू क्या तुरका॥ १६॥

इक तसबी इक माला धरही।
एक कुरान पुरान उचरही॥
करत विरुद्ध गए मर मूढ़ा।
प्रभु को रंगु न लागा गूढ़ा॥ २० ॥
जो जो रंग एक के राचे।
ते ते लोक लाज तजि नाचे॥
आदि पुरख जिन एकु पछाना।
दुतीआ भाव न मन महि आना॥ २१ ॥
जे जे भाव दुतीआ महि राचे।
ते ते मीत मिलन ते बाचे॥
एक पुरख जिन नैक पछाना।
तिनही परम तत्त कहँ जाना॥ २२ ॥
जोगी सन्यासी हैं जेते।
मुँडीआ मुसलमान गन केते॥
भेख धरे लूटत संसारा।
छपत साध जिह नामु अधारा॥ २३ ॥
जिन प्रभु एक वहै ठहरायो।
तिन कर डिम्भ न किसू दिखायो॥
सीस दीयो उन सिरं न दीना।
रञ्च समान देहि करि चीना॥ २६ ॥
कान छेद जोगी कहवायो।
अति प्रपञ्च कर बनहि सिधायो॥
एक नामु को तत्व न लयो।
बन को भयो न गृह को भयो॥ २७ ॥

—आदि मङ्गल।

सवैया।

पाइ गहे जब ते तुमरे,
तब ते कोउ आँख तरे नहीं आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान,
अनेक कहैं मत एक न मान्यो॥
सिमृति शास्त्र वेद सबै,
बहु भेद कहैं हम एक न जान्यो।
श्री असपान कृपा तुमरी कर,
मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो॥ ८६३॥

दोहरा।

सगल दुआर कउ छाडि कै, गह्यो तुहारो दुआर।
बाँहि गहे की लाज अस, गोबिन्द दास तुहार॥ ८६४॥

—रामावतार।

सवैया।

छत्री को पूत हौं बामन को नहिं,
कै तपु आवत है जु करों।
अरु अउर जञ्जार जितो गृह को
तुहि त्याग कहा चित ता मैं धरों॥
अब रीझ कै देहु वहै हम कउ,
जोउ हउँ बिनती कर जोर करों।
जब आउ की अउध निदान बनै,
अति ही रन मैं तब जूझ मरों॥२४८९॥

धन्य जीयो तिह को जग मैं,
मुख ते हरि चित्त मैं जुद्ध बिचारैं।
देह अनित्त न नित्त रहै,
जसु नाव चढ़ै भवसागर तारै॥
धीरज धाम बनाइ इहै तन,
बुद्धि सु दीपक जिउँ उजियारै।
ज्ञानहि की बढनी मनहु हाथ लै,
कातरता कुत बार बुहारै॥ २४९२॥

—कृष्णावतार।

तोमर छन्द।

जो जाप है कलि नाम। तिस पूरन हुइ है काम॥
तिस दूख भूख न प्यास। नित्त हर्ख कहूँ न उदास॥ ३॥
बिन एक दूसर नाहि। सभ रंग रूपन माहि॥
जिह जापिआ तिह जाप। तिनके सहाई आप॥ ४॥
जे जीव जन्त अनेक। तिन मो रहे रम एक॥
बिन एक दूसर नाहिं। जग जान लै जीअ माहि॥ ७॥
भव गढ़न भञ्जन हार। है एक ही करतार॥
बिन एक अउर न कोइ। सब रूप रंगी सोइ॥ ८॥
कई सुक ब्रसपत देख। कई दत्त गोरख भेख॥
कई राम कृष्न रसूल। बिनु नाम को न कबूल॥ १२॥
बिनु एक आसै नाम। नहीं और कौनै काम॥
जे मान हैं गुरुदेव। ते जान हैं अनभेव॥ १३॥

—ब्रह्मा अवतार।

सवैया।

देस बिदेस नरेसन जीत,
अनेस बडे अवनेस संहारे।
आठोई सिद्ध सबै नव निद्धि,
समृद्धन सरब भरे गृह सारे॥
चन्द्रमुखी बनिता बहुतै घर,
माल भरे नहीं जात सँभारे।
नाम बिहीन अधीन भए जम,
अन्ति को नागे ही पाइ सिधारे॥४६१॥
रावन के महिरावन के,
मनु के नल के चलते न चली गउँ।
भोज दिलीपत कौरवि कै,
नहीं साथ दयो रघुनाथ बली कउँ॥
संगि चली अब लौं नहीं काहुँ के,
साच कहौं अघ अउघ दली सउँ।
चेत रे चेत अचेत महाँ पसु,
काहुँ के संगि चली न हली हउँ॥४६२॥
काहे कउ बस्त्र धरो भगवे मुनि,
ते सब पावक बीच्र जलैगी।
क्यों इम रीति चलावत हो,
दिन द्वैक चलै सबदा न चलैगी॥
काल कराल की रीत महाँ,
इह काहू जुगेस छलो न छलैगी।
सुन्दरि देहि तुमारी महा मुनि,
अन्ति मसान ह्वै धूर रलैगी॥४६४॥

काहे को पौन भछो सुनि हो मुनि,
　　पउन भछे कछु हाथ न पै है।
काहे को वस्त्र करो भगवा,
　　इन बातन सो भगवान न पै है॥
वेद पुरान प्रमान कै देखहु,
　　ते सब ही बस काल सबै है।
जार अनङ्गन नङ्ग कहावत,
　　सीस के संगि जटाउ न जै है॥४६५॥
कञ्चन कूट गिर्यो कहु काहे न,
　　सातओ सागर क्यों न सुकानो।
पस्चम भान उदयो कहु काहे न,
　　गंग बही उलटी अनमानो॥
अन्ति बसन्त तप्यो रवि काहे न,
　　चन्द समान दिनीस प्रमानो।
क्यों डम डोल डुबी न धरा मुनि,
　　राजनि पातनि त्यों जग जानो॥४६६॥
अत्र परासर नारद सारद,
　　ब्यास ते आदि जिते मुनि भाए।
गालव आदि अनन्त मुनीस्वर,
　　ब्रह्म हूँ ते नहीं जात गनाए॥
अगस्त पुलस्त वसिस्ट ते आदि,
　　न जान परे किह देस सिधाए।
मन्त्र चलाइ बनाइ महा मति,
　　फेरि मिले पर फेर न आए॥४६७॥

— दत्तात्रे अवतार।

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ।

हज़ारे के शब्द ।

रामकली ।

रे मन ऐसो करि सन्यासा ।
बन से सदन सभै करि समझहु मनही माँहि उदासा ॥१॥ रहाउ ॥
जत की जटा जोग को मंजनु नेम के नखन बढाओ ।
ज्ञान गुरू आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ ॥ १ ॥
अलप अहार सुलप सी निंन्द्रा दया छिमा तन प्रीति ।
सील सन्तोख सदा निरबाहिबो ह्वैबो त्रिगुण अतीति ॥ २ ॥
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै ।
तब ही आतम तत्व को दरसे परम पुरख कह पावै ॥ ३ ॥ १॥

रामकली ।

रे मन इह बिधि जोगु कमाओ ।
सिङी साच अकपट कण्ठला ध्यान बिभूति चढ़ाओ ॥१॥ रहाउ॥
ताती गहु आतम बसिकर की भिच्छा नाम अधारं ।
बाजे परम तार ततु हरि को उपजै राग रसारं ॥ १ ॥
उघटै तान तरंग रंगि अति ज्ञान गीत बन्धानं ।
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि ब्योम बिवानं ॥२॥
आतम उपदेस भेसु सञ्जम को जाप सु अजपा जापे ।
सदा रहै कञ्चन सी काया काल न कबहूँ ब्यापे ॥ ३ ॥२ ॥

रामकली ।

प्रानी परम पुरख पग लागो ।
सोवत कहा मोह निन्द्रा मैं कबहूँ सुचित ह्वै जागो ॥१॥ रहाउ ॥

औरन कहा उपदेसत है पसु तोहि प्रबोध न लागो।
सिञ्चत कहा परे बिखियन कह कबहुँ बिखै रस त्यागो ॥१॥रहाउ॥
केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो।
संग्रह करो सदा सिमरन को परम पाप तजि भागो ॥ २ ॥
जाते दूख पाप नहिं भेटै काल जाल ते तागो।
जो सुख चाहो सदा सभन को तो हरि के रस पागो ॥ ३ ॥ ३ ॥

राग सोरठि।

प्रभु जू तोकह लाज हमारी।
नील कण्ठ नर हरि नाराइण नील बसन बनवारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
परम पुरख परमेस्वर स्वामी पावन पउन अहारी।
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकन्द मुरारी ॥ १ ॥
निर्बिकार निरजुर निन्द्रा बिन निर्बिख नरक निवारी।
कृपासिन्धु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥ २ ॥
धनुर पान धृत मान धराधर अनिबिकार असिधारी।
हौं मति मन्द चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी ॥ ३ ॥१॥४

राग कल्याण।

बिनु करतार न किरतम मानो।
आदि अजोन अजै अबिनासी तिह परमेसर जानो ॥१॥ राहउ ॥
कहा भयो जो आनि जगत मैं दसक असुर हरि घाए।
अधिक प्रपञ्च दिखाइ सभन कहि आपहि ब्रह्म कहाए ॥ १ ॥
भञ्जन गढ़न समरथ सदा प्रभु सो किम जाति गिनायो।
ताते सरब काल के असि को घाइ बचाइ न आयो ॥ २ ॥
कैसे तोहि तारि है सुनि जड़ आप डुब्यो भवसागर।
छुटि हो काल फास ते तबही गहो सरनि जगतागर ॥३॥१॥५॥

ख्याल ।

मित्र प्यारे नूँ हाल मुरीदाँ दा कहणा ।
तुधु विनु रोगु रजाइयाँ दा ओढण नाग निवासाँ दे रहणा ।
सूल सुराही खञ्जरु पियाला बिंगु कसाइयाँ दा सहणा ॥
यारड़े दा सानू सथरु चंगा भट्ठ खेड़याँ दा रहणा ॥१॥१॥६॥

तिलंग काफ़ी ।

केवल काल ई करतार ।
आदि अन्त अनन्ति मूरति गढ़न भञ्जन हार ॥१॥ रहाउ ॥
निन्द उस्तत जउन के सम सत्रु मित्र न कोइ ।
कउन बाट परी तिसै पथ सारथी रथ होइ ॥ १ ॥
तात मात न जात जाकर पुत्र पौत्र मुकन्द ।
कउन काज कहाहिगे ते आनि देवकि नन्द ॥ २ ॥
देव दैत दिसा विसा जिह कीन सरब पसार ।
कउन उपमा तउन को मुख लेत नामु मुरार ॥ ३ ॥१॥७॥

राग विलावल ।

सो किम मानस रूप कहाए ।
सिद्ध समाध साध कर हारे क्यों हूँ न देखन पाए ॥१॥ रहाउ
नारद व्यास परासर ध्रूअ से ध्यावत ध्यान लगाए ।
वेद पुरान हार हठ छाड्यो तदपि ध्यान न आए ॥ १ ॥
दानव देव पिसाच प्रेत ते नेतह नेत कहाए ।
सूछम ते सूछम कर चीने वृद्धन वृद्ध वताए ॥ २ ॥
भूमि अकास पताल सभै सजि एक अनेक सदाए ।
सो नर काल फास ते बाचे जो हरि सरण सिधाए ॥ ३ ॥१॥८॥

राग देवगन्धारी ।

इक बिन दूसर सो न चिनार ।
भञ्जन गढ़न समर्थ सदा प्रभु जानत हैं करतार ॥१॥ रहाउ ॥
कहा भयो जो अति हित चित कर बहु विधि सिला पुजाई ।
प्रान थक्यो पाहिन कहि परसत कछु कर सिद्ध न आई ॥ १ ॥
अच्छत धूप दीप अरपत है पाहन कछू न खै है ।
तामैं कहाँ सिद्ध है रे जड़ तोहि कछू वर दै है ॥ २ ॥
जौ जिय होत तौ देत कछू तुहि मन बच कर्म विचार ।
केवल एक सरण स्वामी बिन यौ नहि कतहि उद्धार ॥३॥१॥६॥

राग देवगन्धारी ।

बिन हरि नाम न बाचन पै है ।
चौदह लोक जाहि बस कीने ताते कहाँ पलै है ॥ १ ॥ रहाउ ॥
राम रहीम उबार न सक हैं जाकर नाम रटै है ।
ब्रह्मा बिसन रुद्र सूरज ससि ते बसि काल सबै है ॥ १ ॥
वेद पुरान कुरान सबै मत जाकहि नेत कहै हैं ।
इन्द्र फनिन्द्र मुनिन्द्र कल्प बहु ध्यावत ध्यान न ऐ है ॥ २ ॥
जाकर रूप रंग नहिं जनियत सो किम स्याम कहै है ।
छुट हो काल जाल ते तबही ताहि चरन लपटै है ॥ ३ ॥
॥ २॥ १० ॥ ३४ ॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

३३ सवैये ।

जागति ज्योति जपै निस बासुर,
एक बिना मन नैक न आनै ।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत,
गोर मड़ी मट भूल न मानै ॥
तीरथ दान दया तप सञ्जम,
एक बिना नहिं एक पछानै ।
पूरन ज्योति जगै घट मैं तब,
ख़ालस ताहिं निख़ालस जानै ॥ १ ॥

सत्ति सदैव सरूप सतव्रत,
आदि अनादि अगाध अजै है ।
दान दया दम सञ्जम नेम,
जतव्रत सील सुवृत अबै है ॥
आदि अनील अनादि अनाहद,
आपि अद्वैख अभेख अभै है ।
रूपि अरूप अरेख जरारदन,
दीन दयाल कृपाल भए है ॥ २ ॥

आदि अद्वैख अभेख महा प्रभु,
सत्ति सरूप सु जोत प्रकासी ।
पूर रह्यो सभ ही घट कै पट,
तत्त समाधि सुभाव प्रणासी ॥

आदि जुगादि अनादि तुही प्रभु,
फैल रह्यो सभ अन्तरि बासी।
दीन दयाल कृपाल कृपा कर,
आदि अजोन अजै अबिनासी ॥ ३ ॥

आदि अभेख अछेद सदा प्रभु,
वेद कतेबनि भेदु न पायो।
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि,
सत्ति सदैव सबै घट छायो॥
सेस सुरेस गणेस महेसुर,
गाहि फिरैं श्रुति थाह न आयो।
रे मन मूढ़ि अगूढ़ इसो प्रभु,
तैं किहि काजि कहो बिसरायो ॥ ४ ॥

अच्युत आदि अनील अनाहद,
सत्त सरूप सदैव बखाने।
आदि अजोनि अजाइ जरा बिनु,
परम पुनीत परम्पर माने॥
सिद्ध स्वयम्भू प्रसिद्ध सबै जग,
एक ही ठौर अनेक बखाने।
रे मन रङ्क कलङ्क बिना हरि,
तैं किहि कारण ते न पछाने ॥ ५ ॥

अच्छर आदि अनील अनाहद,
सत्त सदैव तुही करतारा।
जीव जिते जल मैं थल मैं,
सब कै सद पेट को पोखन हारा॥

वेद पुरान कुरान दुहूँ मिल,
भाँति अनेक बिचार बिचारा।
और जहान निदान कछू नहिं,
ए सुबहान तुही सरदारा ॥ ६ ॥
आदि अगाधि अछेद अभेद,
अलेख अजेय अनाहद जाना।
भूत भविख्य भवान तुही,
सब हूँ सब ठौरन मों मनु माना ॥
देव अदेव महीधर नारद,
सारद सत्ति सदैव पछाना।
दीन दयाल कृपानिधि को कछु,
भेद पुरान कुरान न जाना ॥ ७ ॥

सत्ति सदैव सरूप सतव्रत,
वेद कतेव तुही उपजायो।
देव अदेवन देव महीधर,
भूत भवान वही ठहरायो ॥
आदि जुगादि अनील अनाहद,
लोक अलोक बिलोकन पायो।
रे मन मूढ़ अगूढ़ इसो प्रभु,
तोहि कहो किहि आन सुनायो ॥ ८ ॥

देव अदेव महीधर नागन,
सिद्ध प्रसिद्ध बडो तपु कीनो।
वेद पुरान कुरान सबै गुन,
गाइ थके पै तो जाइ न चीनो ॥

भूम अकास पतार दिसा,
विदिसा जिहि सो सबके चित चीनो।
पूर रही महि मो महिमा,
मन मैं तिहि आन मुझै कहि दीनो॥ ९॥

वेद कतेव न भेद लह्यो,
तिहि सिद्ध समाधि सबै करि हारे।
सिम्मृति शास्त्र वेद सबै,
बहु भाँति पुरान विचार विचारे॥
आदि अनादि अगाधि कथा,
ध्रूअ-से प्रहलाद अजामल तारे।
नामु उचार तरी गनिका,
सोई नामु अधार विचार हमारे॥ १०॥

आदि अनादि अगाधि सदा प्रभु,
सिद्ध स्वरूप सबो पहिचान्यो।
गन्धर्व जच्छ महीधर नागन,
भूम अकास चहूँ चक जान्यो॥
लोक अलोक दिसा विदिसा अरु,
देव अदेव दुहूँ प्रभु मान्यो।
चित्त अज्ञान सुजान सुयम्भव,
कौन की कानि निदान भुलान्यौ॥ ११॥

काहू लै ठोक बधे उर ठाकुर,
काहू महेस कौ एस बखान्यो।
काहू कह्यो हरि मन्दिर मैं,
हरि काहू मसीत कै बीच प्रमान्यो॥

काहू ने राम कह्यो कृष्ना,
काहु काहू मनै अवतारन मान्यो।
फोकट धम बिसार सबै,
करतार ही कउ करता जिय जान्यो ॥ १२ ॥

जौ कहौ राम अजोनि अजै अति,
काहे को कौसल कुक्ष जयो जू।
काल हूँ कान्ह कहैं जिहि कौ,
किहि कारण काल ते दीन भयो जू॥
सन्त सरूप बिबैर कहाइ,
सु क्यों पथ को रथ हाँक धयो जू।
ताही को मान प्रभू करिकै,
जिह को कोऊ भेदु न ले न लयो जू ॥१३॥

क्यों कहु कृष्न कृपानिधि है,
किहि काज ते बद्धक बाणु लगायो।
अउर कुलीन उधारत जो,
किह ते अपनो कुल नासु करायो॥
आदि अजोनि कहाइ कहो किम,
देवकि के जठरन्तर आयो।
तात न मात कहै जिह को,
तिह क्यों बसुदेवहि बापु कहायो ॥ १४ ॥

काहे कौ एस महेसहिं भाखत,
काहि दिजेस को एस बखान्यो।
है न रघ्वेस जद्वेस रमापति,
तै जिन को बिस्वनाथ पछान्यो॥

एक कौ छाडि अनेक भजै,
सुक देव परासर व्यास झुठान्यो।
फोकट धर्म सजे सब ही,
हम एक ही कौ विधनेक प्रमान्यो ॥ १५ ॥
कोऊ दिजेस कौ मानत है अरु,
कोऊ महेस कौ एस बतै है।
कोऊ कहै विसनो विसनाइक,
जाहि भजे अघ ओघ कटै है ॥
वार हजार विचार अरे जड़,
अन्त समै सब ही तजि जै है।
ताही को ध्यान प्रमानि हिये,
जो थे अब है अरु आगेऊ ह्वै है ॥ १६ ॥
कोटक इन्द्र करे जिह के,
कई कोटि उपिन्द्र बनाइ खपायो।
दानव देव फनिन्द्र धरा धर,
पच्छ पसू नहिं जाति गनायो ॥
आज लगे तपु साधत हैं,
सिवऊ ब्रह्मा कछु पार न पायो।
वेद कतेब न भेद लख्यो,
जिह सोऊ गुरू गुरु मोहि बतायो ॥ १७ ॥
ध्यान लगाइ ठग्यो सब लोगन,
सीस जटा नख हाथ बढाए।
लाइ बिभूत फिर्‌यो मुख ऊपरि,
देव अदेव सबै डहकाए ॥

लोभ के लागे फिर्‌यो घर ही घर,
जोग के न्यास सबै बिसराए।
लाज गई कछु काजु सर्‌यो नहिं,
प्रेम बिना प्रभु पान न आए ॥ १८ ॥

काहे कउ डिम्भ करै मन मूरख,
डिम्भ करे अपनी पति ख्वै है।
काहे को लोग ठगे ठग लोगनि,
लोक गयो परलोक गवै है ॥
दीन दयाल की ठौर जहाँ,
तिहि ठौर बिखै तुहि ठौर न ऐ है।
चेत रे चेत अचेत महाँ जड़,
भेख के कीने अलेख न पै है ॥ १९ ॥

काहे कउ पूजत पाहन कउ
कछु पाहन मैं परमेसर नाही।
ताही को पूज प्रभू करि कै,
जिह पूजत ही अघ ओघ मिटाही ॥
आधि बिआधि के बन्धन जेतक,
नाम के लेत सबै छुटि जाही।
ताही को ध्यानु प्रमान सदा,
इन फोकट धर्म करे फलु नाही ॥ २० ॥

फोकट धर्म भयो फल हीन,
जु पूज सिला जुगि कोट गवाई।
सिद्ध कहा सिल के परसे,
बल वृद्ध घटी नव निद्धि न पाई ॥

आजु ही आजु समो जु बित्यो,
नहिं काजि सर्‍यो कछु लाजि न आई।
श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़,
ऐसे ही ऐस सुवैस गवाई॥ २१॥

जौ जुग तैं करि है तपसा,
कछु तोहि प्रसन्न न पाहन कै है।
हाथ उठाइ भली बिध सो जड़,
तोहि कछू बरदान न दै है॥
कउन भरोस भया इह को कहु,
भीर परी नहिं आनि बचै है।
जानु रे जानु अजान हठी,
इह फोकट धर्म सु भर्म गवै है॥ २२॥

जाल बधे सब ही मृत के,
कोऊ राम रसूल न बाचन पाए।
दानव देव फनिन्द धराधर,
भूत भविख्य उपाइ मिटाए॥
अन्त मरै पछुताइ पृथी पर,
जे जग मैं अवतार कहाए।
रे मन लैल इकेल ही काल के,
लागत काहि न पाइन धाए॥ २३॥

काल ही पाइ भयो ब्रह्मा,
गहि दण्ड कमण्डल भूम भ्रमान्यो।
काल ही पाइ सदा सिव जू,
सभ देस बिदेस भया हम जान्यो॥

काल ही पाइ भयो मिट गयो,
जग याँही ते ताहि सबो पहिचान्यो ।
बेद कतेब के भेद सबै तजि,
केवल काल कृपानिधि मान्यो ॥ २४ ॥
काल गयो इन कामन सिउ जड़,
काल कृपाल हिये न चितार्‌यो ।
लाज को छाडि नृलाज अरे तज,
काजि अकाज को काज सवार्‌यो ॥
बाज बने गजराज बडे,
खर को चढ़िबो चित बीज बिचार्‌यो ।
श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़,
लाज ही लाज तैं काजु बिगार्‌यो ॥ २५ ॥
बेद कतेब पढ़े बहुते दिन,
भेद कछू तिन को नहिं पायो ।
पूजत ठौर अनेक फिर्‌यो पर,
एक कबै हिय मैं न बसायो ॥
पाहन को अस्थालय को सिर,
न्याइ फिर्‌यो कछु हाथ न आयो ।
रे मन मूढ़ अगूढ़ प्रभू तजि,
आपन हूड़ कहा उरझायो ॥ २६ ॥
जो जुगियान के जाइ उठ आश्रम,
गोरख को तिहि जापु जपावै ।
जाइ सन्यासन के तिह कौ कहँ,
दत्त ही सत्त है मन्त्र दृढ़ावै ॥

जो कोऊ जाइ तुरक्कन मैं,
महिदीन के दीन तिसै गहि ल्यावै।
आपहि बीच गनै करता,
करतार को भेदु न कोऊ बतावै ॥ २७ ॥
जो जुगियान के जाइ कहै,
सब जोगन को गृह माल उठै दै।
जो परो भाजि सन्यासन के कहै,
दत्त के नाम पै धाम लुटै दै ॥
जो करि कोऊ मसन्दन सौं कहै,
सरब दरब लै मोहि अबै दै।
लेउ ही लेउ कहै सब को,
नर कोऊ न ब्रह्म बताइ हमै दै ॥ २८ ॥
जो करि सेव मसन्दन की,
कहै आनि प्रसादि सबै मुहि दीजै।
जो कछु माल तवालय सो,
अब ही उठि भेंट हमारी ही कीजै ॥
मेरो ई ध्यान धरो निस बासुर,
भूल कै अउर को नामु न लीजै।
दीने को नामु सुने भजि रातहि,
लीने बिना नहि नैकु पसीजै ॥ २९ ॥
आँखन भीतरि तेल कौ डार,
सु लोगन नीरु बहाइ दिखावै।
जो धनवानु लखै निज सेवक,
ताही परोसि प्रसादि जिमावै ॥

जो धनहीन लखै तिह देत न,
मांगन जात मुखो न दिखावै।
लूटत है पसु लोगन को,
कबहूँ न प्रमेसर के गुन गावै॥ ३०॥
आँखन मीच रहै बक की जिम,
लोगन एक प्रपञ्च दिखायो।
न्यात फिर्‌यो सिर बद्धक ज्यों,
अस ध्यान बिलोक बिड़ाल लजायो॥
लागि फिर्‌यो धन आस जितै,
तित लोक गयो परलोक गवायो।
श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़,
धाम के काम कहा उरझायो॥ ३१॥
फोकट कर्म दृढ़ात कहा,
इन लोगन को कोई काम न ऐहै।
भाजत का धन हेत अरे,
जम किङ्कर ते नहिं भाजन पैहै॥
पुत्र कलित्र न मित्र सबै ऊहाँ,
सिक्ख सखा कोऊ साख न दैहै।
चेत रे चेत अचेत महा पसु,
अन्त की बार अकेलोई जैहै॥ ३२॥
तो तन त्यागत ही सुन रे जड़,
प्रेत बखान त्रिया भजि जैहै।
पुत्र कलत्र सुमित्र सखा इह,
बेग निकारहु आइसु दैहै॥

भउन भण्डार धरा गढ़ जेतक,
छाडत प्रान बिगान कहै है।
चेत रे चेत अचेत महा पसु,
अन्त की वार अकेलोई जै है॥ ३३॥

१ ओङ्कार सतिगुरु प्रसादि।

चरित्र नूप कुँअरि का।

[नोट—श्री गुरु गोविन्द सिंह जी का रूप अति सुन्दर और तेजोमय था। भाई नन्दलालजी ने कहा है—

बादीदह उवाव नाक नूँ वेहँ बरामदी।
शरमिन्दह गश्त अज़ रुखे तो आफ़ताबे सुबह॥

एक समय श्री गुरुजी किसी फ़क़ीर से मिलने गए तो वहाँ एक नूप कुँअरि नामक बड़ी अमीर और सुन्दर युवती आपको देख ऐसी मोहित हुई कि आपको वहीं घेर लिया। श्री गुरुजी का इस स्त्री के रूप और धन आदि के आगे झुक जाना तो असम्भव था ही पर आप इस भय के सामने भी न झुके जबकि नूप कुँअरि ने यह कहा कि आप और मैं इस समय अकेले हैं और मैं चीख़ पुकार कर शोर मचाऊँगी और आप पर झूठा दोष लगाऊँगी जिससे आपकी इज़्ज़त मिट्टी में मिल जायगी। अपने आचरण की पवित्रता के सामने अपनी इज़्ज़त की भी कुछ परवाह न करने वाले सतगुरु वहाँ से निर्भयता से चल निकले और

साफ़ बच कर अपने स्थान पर आ पहुँचे। इस सारी वार्त्ता को गुरुजी ने अपने "त्रिया चरित्र" ग्रन्थ में नं० २१, २२, २३ चरित्रों में चरित्रों के रूप में दर्शाया है]

दोहरा।

तीर सतुद्रव के हुतो, पुर अनन्द इक गाँउ।
नेत्र तुङ्ग के ढिंग बसत, काहलूर के ठाँउ॥ ३॥
तहाँ सिक्ख साखा बहुत, आवत मोद बढ़ाइ।
मन बाँछत मुखि माँग वर, जात गृहन सुख पाइ॥ ४॥
एक त्रिया धनवन्त की, तौन नगर मैं आनि।
हेर राइ पीड़ति भई, बधी बिरह के बान॥ ५॥

चौपई।

लखि त्रिय ताहि सुभेख बनायो।
फूल पान अरु कैफ़ मँगायो॥
आगे टर ताकौ तिन लीना।
चित का सोक दूरि करि दीना॥ ११॥

दोहरा।

वस्त्र पहिरि बहु मोल के, अतिथ भेस कौ डारि।
तवन सेज सोभित करी, उत्तम भेख सुधारि॥ १२॥
तब तासौं त्रिय यौं कही, भोग करहु मुहि साथ।
पसु पतारि दुख दै घनौ, मैं बेची तव हाथ॥ १३॥

राइ वाच—

छन्द।

कह्यो तुहारो मानि भोग तोसौं नहिं करि हौं।
कुलि कलंक के हेत अधिक मन भीतर डरि हौं॥
छोरि ब्याहिता नारि केल तो सौं न कमाऊँ।
धरमराज की सभा ठौर कैसे करि पाऊँ॥ १७॥

कुँअरि वाच— दोहरा ।

कामातुर ह्वै जो त्रिया, आवत नर के पास ।

महा नरक सो डारियै, दै जो जान निरास ॥ १८ ॥

राइ वाच—

पाइ परत मोरे सदा, पूज कहत हैं मोहि ।

तासौं रीझ रम्यो चहत, लाज न आवत तोहि ॥ १९ ॥

कुँअरि वाच—

कृष्न पूज जग के भए, कीनी रासि बनाइ ।

भोग राधिका सौं करे, परे नरक नहिं जाइ ॥ २० ॥

पञ्च तत्त लै ब्रह्म कर, कीनी नर की देह ।

किया आप ही तिन बिखै, स्त्री पुरख सनेह ॥ २१ ॥

चौपई ।

ताते आनि रमो मुहि संगा ।

ब्यापत मुर तन अधिक अनंगा ॥

आजु मिले तुमरे बिन मरि हौं ।

बिरहानल के भीतरि जरि हौं ॥ २२ ॥

दोहरा ।

अङ्ग ते भयो अनङ्ग तौ, देत मोहि दुख आइ ॥

महाँ रुद्र जू कोप करि, ताहिन दयो जराइ ॥ २३ ॥

राइ वाच— छन्द ।

धरहु धीरज मन बाल मदन तुमरौ कस करि है ।

महा रुद्र कौ ध्यान धरो मन चीन्ह सु डरि है ॥

हम न तुहारे संग भोग रुचि मानि करैंगे ।

त्यागि धरम की नारि तोहि कबहूँ न बरैंगे ॥ २४ ॥

अड़िल।

कह्यो तिहारो मानि भोग तोसौं क्यों करियै।
घोर नरक के बीच जाइ परबे ते डरियै॥
तब आलिंगन करे धरम अरि के मुहि गहि है।
हो अति अपजस की कथा जगत मोको निति कहिहै॥ २५॥
चलै निन्द की कथा बक्त्र कस तिनै दिखै हौं।
धरम राज की सभा ज्वाब कैसे करि दै हौं॥
छाडि यराना बाल ख़्याल हमरे नहिं परियै।
कही सु हम सौं कही बहुरि यह कह्यो न करियै॥ २६॥

कुंअरि वाच—

नूप कुँअरि यौं कही भोग मो सौं पिय करियै।
परो न नरक के बीच अधिक चित माहि न डरियै॥
निन्द तिहारी लोग कहा करिकै मुख करि हैं।
त्रास तिहारे सौं सु अधिक चित भोतर डरि हैं॥ २७॥
तौ करि है कोऊ निन्द कछू जब भेद लहैंगे।
जौ लखि हैं कोऊ बात त्रास ते मौन रहैंगे॥
आजु हमारे साथ मित्र रुचि सौं रति करियै।
हो नातर छाडौं टांग तरे अब होइ निकरियै॥ २८॥

राइ वाच—

टांग तरे सो जाइ केल कै जाहि न आवै।
बैठ निफूंसक रहै रैनि सिगरी न बजावै॥
बधे धरम के मैं न भोग तुहि साथ करत हौं।
जग अपजस के हेत अधिक चित बीच डरत हौं॥ २६॥

कुँअरिवाच—

कोटि जतन तुम करौ भजे बिनु तोहि न छोरौं।
गहि आपन पर आजु सगर तोकौ निसि तोरौं॥
मीत तिहारे हेत कासि करवत हूँ लैहौं।
हो धरमराज को सभा ज्वाब ठाढी ह्वै दैहौं॥ ३० ॥

आज पिया तव सङ्ग सेजु रुचि मान सुहै हौं।
मन भावत को भोग रुचित चित माहि कमै हौं॥
आजु सुरति सभ रैनि भोग सुन्दर तव करि हौं।
सिव वैरी को दर्प सकल मिलि तुमैं प्रहरि हौं॥ ३१ ॥

राइ बाच—

प्रथम छत्रि के धाम दियो विधि जनम हमारो।
वहुरि जगत के बीच कियो कुल अधिक उजियारो॥
बहुरि सभन मैं वैठि आपु कौं पूज कहाऊँ।
हो रमौ तुहारे साथ नीच कुल जनमहि पाऊँ॥ ३२ ॥

कुँअरि बाच—

कहा जनम की बात जनम सभ करे तिहारे।
रमौ न हम सौ आजु ऐस घटि भाग हमारे॥
विरह तिहारे लाल वैठि पावक मौ वरियै।
हो पीव हलाहल आजु मिले तुमरे विनु मरियै॥ ३३ ।

छन्द।

तरुन कर्‌यो बिधि तोहि तरुनि ही देह हमारो।
लखे तुमै तन आजु मदन वसि भयो हमारो॥
मन को भरम निवारि भोग मोरे संगि करियै।
नरक परन ते नैक अपन चित बीच न डरियै॥ ३७ ॥

राइ वाच—　　　　　　　　दोहरा ।

पूज जानि करि जो तरुनि, मुरि कै करत पयान ।
तवनि तरुनि गुर तचन की, लागत सुता समान ॥ ३६ ॥

छन्द ।

कहा तरुनि सौ प्रीति नेह नहीं ओर निवाहहि ।
एक पुरख को छाडि और सुन्दर नर चाहहि ॥
अधिक तरुन रुचि मानि तरुनि जासौ हित करही ।
हो तुरत मूत्र को धाम नगन आगे कर धरही ॥ ३९ ॥

अड़िल छन्द ।

धन्य तरुनि तव रूप धन्य पितु मात तिहारो ।
धन्य तिहारो देस धन्य प्रतिपालन हारो ॥
धन्य कुअरि तव वक्रत अधिक जामै छवि छाजै ।
हो जल सूरज अरु चन्द्र दर्प कंद्रप लखि भाजै ॥ ४३ ॥

सुभ सुहाग तन भरे चारु चंचल चखु सोहहि ।
खग मृग जच्छ भुजंग असुर सुर नर मुनि मोहहि ॥
सिव सनकादि कथ कित रहत लखि नेत्र तिहारे ।
हो अति अचरज की बात चुभत नहिं हृदै हमारे ॥ ४४ ॥

कवि बाच—　　　　　　　　दोहरा ।

बहुर त्रिया तिह राइ सौं, यौं बच कह्यो सुनाइ ।
आजु भोग तो सौ करौं, कै मरिहौं बिखु खाइ ॥ ४६ ॥

राइ बाच—

बिसिखपरा वरि नैन तव, विधना धरे बनाइ ।
लाज कौच मोकौं दयो, चुभत न तातें आइ ॥ ४७ ॥
बने ठने आवत घने, हेरत हरत ज्ञान ।
भोग करन कौ कछु नहीं, डहकू वेर समान ॥ ४८ ॥

छन्द।

सुधि जब ते हम धरी बचन गुरु दए हमारे।
पूत इहै प्रण तोहि प्राण जब लग घट थारे॥
निज नारी के साथ नेह तुम नित्य बढ़ैयहु।
पर नारी की सेज भूलि सुपने हूँ न जैयहु॥ ५१॥
पर नारी के भजे सहस वासव भग पाए।
पर नारी के भजे चन्द्र कालंक लगाए॥
पर नारी के हेत सीस दस सीस गवायो।
हो पर नारी के हेत कटक कवरन को घायो॥ ५२॥
पर नारी सौ नेहु छुरी पैनी करि जानहु।
पर नारी के भजे काल व्याप्यो तन मानहु॥
अधिक हरीफो जान भोग पर त्रिया जु करही।
हो अन्त स्वान की मृत्यु हाथ लैंडी के मरही॥ ५३॥
वाल हमारे पास देस देसन त्रिय आवहि।
मन वाछत वर माँगि जानि गुर सीस झुकावहि॥
सिख्य पुत्र त्रिय सुता जानि अपने चित धरियै।
हो कहु सुन्दरि तिह साथ गवन कैसे कर करियै॥ ५४॥

कुँअरि वाच— चौपई।

बचन सुनत क्रुद्धित त्रिय भई।
जरि बरि आठ टूक है गई॥
अबही चोरि चोरि कहि उठि हौं।
तुहि कौं पकरि मारि ही सुटि हौं॥ ५५॥

दोहरा।

हसि खेलो सुख सौं रमो, कहा करत हो रोख।
नैन रहे निहुराइ क्यों, हेरत लगत न दोख॥ ५६॥

राइ वाच—

याते हम हेरत नहीं, सुन सखि हमरे चैन।
लखे लगन लगि जाइ जिन, वडे विरहिया नैन ॥ ५७ ॥

छप्पै छन्द।

दिजन दीजियहु दान दुर्जन कह दृस्टि दिखैयहु।
सुखी राखियहु साधि सत्रु सिर खड्ग वजैयहु ॥
लोक लाज कउँ छाडि कछू कारज नहिं करियहु।
पर नारी की सेज पाँव सुपने हुँ न धरियहु ॥
गुर जवते मुहि कह्यो इहै प्रण लयो सुधारै।
हो पर धन पाहन तुल्य त्रिया पर मात हमारै ॥ ५८ ॥

कवि वाच—

दोहरा।

सुनत राव को वच स्रवन, त्रिय मन अधिक रिसाइ।
चोर चोर कहि कै उठी, सिखयन दियो जगाइ ॥ ५६ ॥
सुनत चोर को वच स्रवन, अधिक डरयो नर नाहि।
पन्हीं पामरी तजि भज्यो, सुध न रही मन माहि ॥
॥ ६० ॥ २१ ॥ ४३८ ॥

चोरि सुनत जागे सभै, भजै न दीना राइ।
कदम पाँच सातक लगे, मिले सितावी आइ ॥ २ ॥
आगे पाछे दाहने, घेर दसो दिस लीन।
पैंड भजन को ना रह्यो, राइ जतन यौं कीन ॥ ४ ॥
वाकी कर द्रारी धरी, पगिया लई उतारि।
चोरचोर कर तिह गह्यो, द्वैक मुतहरी झारि ॥ ५ ॥
लगे मुतहरी के गिर्‍यो, भूमि मूर्छना खाइ।
भेद न काहूँ नर लह्यो, मुसकैं लई चढ़ाइ ॥ ६ ॥

लात मुस्ट बाजन लगी, सिख्य पहुँचे आइ।
भ्रात भ्रात त्रिय कहि रह्यो, कोउ न सक्यो छुराइ ॥ ७ ॥

चौपई।

इह छल खेलि राइ भज आयो।
बन्द साल त्रिय भ्रात पठायो ॥
सिख्यन भेद अभेद न पायो।
वाही कौ तसकर ठहरायो ॥१॥२२॥४५७॥
भयो प्रात सभ ही जन जागे।
अपने अपने कारज लागे ॥
राइ भवन ते बाहर आयो।
सभा बैठि दीवान लगायो ॥ १ ॥

दोहरा।

प्रात भए तबनै त्रिया, हिन तजि रिसि उपजाइ।
पन्हीं पामरी जो हुते, सभहिन दए दिखाइ ॥ २ ॥

चौपई।

राइ सभा महि बचन उचारे।
पन्हीं पामरी हरे हमारे ॥
ताँहि सिख्य जो हमैं बतावै।
ताके काल निकट नहिं आवै ॥ ३ ॥

दोहरा।

वचन सुनत गुरु चकत ते, सिख्य न सके दुराइ।
पन्हीं पामरी के सहित, सो त्रिय दई बताइ ॥ ४ ॥

चौपई।

तबै राइ यौं बचन उचारे।
गहि ल्यावहु तिह तीर हमारे ॥

पन्हीं पामरी सँग लै ऐयहु।
मोरि कहे बिनु त्रास न दैयहु॥ ५॥

दोहरा।

सुनत राइ के बचन कौ, लोगि परे अरराइ।
पन्हीं पामरी त्रिय सहित, ल्यावत भए बनाइ॥ ६॥

अड़िल।

कहु सुन्दरि किह काज बस्त्र तैं हरे हमारे।
देव भटन की भोरि त्रास उपज्यो न तिहारे॥
जो चोरी जन करै कहो ताकौं क्या करियै।
हो नारि जानि कै टरौं न तरजिय ते तुहि मरियै॥ ७॥

दोहरा।

पर पियरी मुख पर गई, नैन रही निहुराइ।
धरक धरक छतिया करै, बचन न भाख्यो जाइ॥ ८॥

अड़िल।

हम पूछहिंगे याहि न तुम कछु भाखियो।
याही के घर माँहि भली बिधि राखियो॥
निरनौ करि हैं एक इकान्त बुलाइकै।
हो तब दैहैं इह जान हदै सुख पाइकै॥ ९॥

चौपई।

प्रात भयो त्रिय बहुरि बुलाई।
सकल कथा कहि ताँहि सुनाई॥
तुम कुपि हम परि चरित बनायो।
हम हूँ तुम कह चरित दिखायो॥ १०॥

ताकौ भ्रात बन्दि ते छोर्यो।
भाँति भाँति तिह त्रियहि निहोर्यो॥
वहुरि ऐस जिय कबहूँ न धरियहु।
मो अपराध छिमापन करियहु॥ ११॥

दोहरा।

छिमा करहु अब त्रिय हमैं, वहुरि न करियहु राँधि।
बीस सहंस टका तिसै, दई छिमाहो बाँधि॥
॥ १२॥ २३॥ ४३६॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि

श्री रनखम्भ कला का चरित्र।

चौपई।

सुमति सैन इक नृपति सुना वर।
दुतिय दिवाकर किधौं किरणि धर॥
समरमती रानी गृह ताके।
सुरो आसुरी सम नहिं जाके॥ १॥
श्री रनखम्भ कला दुहिता तिह।
जीति लई ससि अंस कला जिह॥
निरखि भान जिह प्रभा रहत दवि।
सुरी आसुरीन कीनहि सम छवि॥ २॥

दोहरा।

तरुनि भई तरुनी जबै, अधिक सुखन के संग।
लरिका पन मिटि जात भयो, दुन्दभि दियो अनंग॥ ३॥

चौपई ।

चारि भ्रात ताके बलवाना।
सूरबीर सभ सस्त्र निधाना॥
तेजवान दुति मान अतुल बल।
अरि अनेक जीते जिह दलि मलि॥ ६॥

चारों कुअर पढ़न के काजा।
दिज इक बोलि पठायो राजा॥
सुता सहित सुत सौंपे तिह घर।
कछु बिद्या दिजि देहु कृपाकर॥ ७॥

जब ते तहँ पढ़बे कहँ आवैं।
अपनो बिप कह सीस झुकावैं॥
जो सिख्या दिज देत सु लेहीं।
अमित दरब पण्डित कहँ देहीं॥ ८॥

इक दिन कुअरि अगमने गई।
दिज कहँ सीस झुकावत भई॥
सालिग्राम पूजत था दिजबर।
भाँति भाँति तिह सीस न्याइ करि॥ ९॥

ताकौ निरखि कुअरि मुसकानी।
सो प्रतमा पाहन पहिचानी॥
ताहि कहा पूजत किह निमितहिँ।
सिर नावत कर जोरि काज जिहँ॥ १०॥

दिज बाच—

सालग्राम ठाकुर य बाला।
पूजत जिनै बडे नर पाला॥

तैं अज्ञान इह कहा पछानै।
परमेस्वर कहँ पाहन जानै॥ ११॥

राजा सुता वाच— सवैया।

ताहि पछानत है न महाँ जड़, जाको प्रताप तिहूँ पुर माहीं।
पूजत है प्रभु कै तिह को, जिनके परसे परलोक पराहीं॥
पाप करो परमारथ कै, जिहँ पापनते अति पाप डराहीं।
पाइ परो परमेस्वर के पसु, पाहन मैं परमेस्वर नाहीं॥ १२॥

विजै छन्द।

जीवन मैं जल मैं थल मैं,
सभ रूपन मैं सभ भूपन माँहीं।
सूरज मैं ससि मैं नभ मैं,
जहँ हेरौ तहाँ चित्त लाइ तहाँ हीं॥
पावक मैं अरु पौन हूँ मैं,
पृथ्वी तल मैं सु कहाँ नहिं जाँहीं।
व्यापक है सभ ही के विखै,
कछु पाहन मैं परमेस्वर नाँहीं॥ १३॥
कागज दीप सभै करिकै अरु,
सात समुद्रन की मसुकैयै।
काटि बनास्पती सिगरी,
लिखबे हूँ कौ लेखन काज बनैयै॥
सारस्वती बक्ता करिकै,
सभ जीवन ते जुग साठि लिखैयै।
जो प्रभु पायतु है नहि कैसे हूँ,
सो जड़ पाहन मैं ठहरैयै॥ १४॥

दोहरा।

जग में आप कहावई, पण्डित सुघर सुचेत।
पाहन की पूजा करै, याते लगत अचेत॥ १६॥

चौपई।

चित भीतर आसा धन धारै।
सिव सिव सिव मुख ते उच्चारै॥
अधिक डिम्भ कर जगहि दिखावै।
द्वार द्वार माँगत न लजावै॥ १७॥

अड़िल।

नाक मूँदि करि चारि घरी ठाढे रहैं।
सिव सिव सिव है एक चरन स्थित कहैं॥
जो कोऊ पैसा एक देत करि आइकै।
हो दाँतन लेत उठाइ सिवहिं बिसराइकै॥ १८॥

कवित्त।

औरन उपदेस करै आपु ध्यान को न धरै,
लोगन को सदा त्याग धन को दृढ़ात है।
तेही धन लोभ ऊच नीचन के द्वार द्वार,
लाज को त्यागि जेही तेही पैधी घात है॥
कहत पवित्र हम, रहत अपवित्र खरे,
चाकरी मलेच्छन की कै कै टूक खात है।
बडे असन्तोखी हैं कहावत सन्तोखी महाँ,
एक द्वार छाडि माँगि द्वारे द्वार जात है॥ १९॥
माटी के सिव बनाए पूजि कै बहाइ आप,
आइकै बनाए फेरि माटी के सुधारि कै।

ताके पाइ परयो माथो धरी द्वै रगरयो ऐरे,
तामैं कहा है रे दैहै तोहि को विचारि कै ॥
लिङ्ग की तू पूजा करै सिम्भु जानि पाइ परै,
सोई अन्त दैहै तेरे कर मैं निकारि कै।
दुहिता कौ दैहै की तू आपन चवै है ताकी,
यौही तोहि मारि है रे सदासिव ख्वार कै ॥२०॥

बिजै छन्द।

पाहन को सिव तू जौ कहैं पसु,
याते कछू तुहि हाथ न ऐ है।
तिर्जक जोनि जु आप परा,
हसि कै तुहि को कहु का वर दै है॥
आपन सो करि है कबहूँ तुहि,
पाहन की पदवी तब पै है।
जानु रे जानु अजान महाँ,
फिरि जान गई कछु जानि न ऐ है॥ २१॥

द्वैक पुरानन कौ पढ़ि कै तुम,
फूलि गए दिज जू जिय माही।
सो न पुरान पढ़ा जिह के,
इह ठौर पढ़े सभ पाप पराही॥
डिम्भ दिखाइ करो तपसा,
दिन रैन वसै जियरा धन माही।
मूरख लोग प्रमान करैं,
इन वातन को हम मानत नाही॥ २२॥

द्विज वाच—

चौपई ।

कहा विप्र सुनु राजदुलारी ।
तैं सिव की महिमा न विचारी ॥
ब्रह्मा बिसन रुद्र जू देवा ।
इनकी सदा कीजियैं सेवा ॥ २५ ॥
तैं याके भेवहि न पछानै ।
महाँ मूढ़ इह भाँति बखानै ॥
इनको परम पुरातन जानहु ।
परम पुरख मन महि पहिचानहु ॥ २६ ॥
हम हैं कुअरि विप्र व्रत धारी ।
ऊच नीच सम के हितकारी ॥
जिसी किसी कह मन्त्र सिखावैं ।
महाँ कृपन ते दान करावैं ॥ २७ ॥

कुअरि वाच—

मन्त्र देत सिख अपन करन हित ।
ज्यों त्यों भेंट लेत तातें चित ॥
सत्य बात ताकह न सिखावहु ।
ताँहि लोक परलोक गवावहु ॥ २८ ॥
सुनहु विप्र तुम मन्त्र देत जिह ।
लूट लेत तिहि घर विधि जिह किह ॥
ताकह कछू ग्यान नहिं आवै ।
मूरख अपना मूँड मुँडावै ॥ २९ ॥
तिह तुम कहहु मन्त्र सिधि ह्वै है ।
महादेव तो कौ वरु दै है ॥

जब ताते नहिं होत मन्त्र सिधि।
तब तुम बचन कहत हो इह बिधि ॥ ३० ॥
कछू कुक्रिया तुम ते भयो।
ताँते दरस न सिवजू दयो ॥
अब तैं पुन्य दान दिज करु रे।
पुनि सिव के मन्त्रहि अनुसरु रे ॥ ३१ ॥
उलटो डण्ड तिसी ते लेही।
पुनि तिह मन्त्र रुद्र को देही ॥
भाँति भाँति ताकौ भटकावै।
अन्त बार इमि भाखि सुनावै ॥ ३२ ॥
तोते कछु अच्छर रहि गयो।
कै कछु भंग क्रिया ते भयो ॥
ताते तुहि घरु रुद्र न दीना।
पुन्य दान चहियत पुनि कीना ॥ ३३ ॥
इहि विधि मन्त्र सिखावत ताको।
लूटा चहत बिप्र घर जाको ॥
जब वहु दरब रहित ह्वै जाई।
और धाम तब चलत तकाई ॥ ३४ ॥

दोहरा।

मन्त्र जन्त्र अरु तन्त्र सिधि, जौ इन महि कछु होइ।
हजरति ह्वै आपहि रहहि, माँगत फिरत न कोइ ॥ ३५ ॥

दिज वाच— चौपई।

सुनि ए बचन मिस्र रिसि भरा।
धिक धिक ताकहि बचन उचरा ॥

तैं हमरी बातन कहा जानै।
भाँग खाइ कै बैन प्रमानै ॥ ३६ ॥

कुमरि बाच—

सुनो मिस्र तुम बात न जानत।
अहंकार के बचन प्रमानत ॥
भाँग पीए बुधि जाति न हरी।
बिन पीए तब बुधि कह परी ॥ ३७ ॥
तुम आपन स्याने कहलावत।
कबहीं भूलि न भाँग चढ़ावत ॥
जब तुम जाहु काज भिच्छा के।
कर हो ख्वार रहत गृह जाके ॥ ३८ ॥
जिह धन को तुम त्याग दिखावत।
दर दर तिह माँगन कस जावत ॥
महाँ मूढ़ राजन के पासन।
लेत फिरत हो मिस्रजू कन कन ॥ ३९ ॥
तुम जग महि त्यागी कहलावत।
सभ लोगन कह त्याग द्रिढ़ावत ॥
मन महिं दरब ठगन की आसा।
द्वार द्वार डोलत इह प्यासा ॥ ४१ ॥

अड़िल।

बेद ब्याकरन शास्त्र सिंम्रत इम उचरै।
जिनि किसहू ते एक टका मो को भरै ॥
जे तिन को कछु देत स्तुतिं ताकी करै।
हो जो धन देत न तिनै निन्द ताकी करै ॥ ४२ ॥

चौपई ।

दुहुँअन सम ओऊ करि जानै ।
निन्द्या उस्तति सम करि मानै ॥
हम ताही कह ब्रह्म पछानहि ।
वाही कहि द्विज कै अनुमानहि ॥ ४५ ॥
धन के काज करत सभ काजा ।
ऊच नीच राना अरु राजा ॥
ख्याल 'काल को किनूँ न पायो ।
जिन इह चौदहँ लोक बनायो ॥ ४७ ॥

कवित्त ।

एही धन लोभ ते पढ़त ब्याकरन सभै,
एही धन लोभ ते पुरान हाथ धरे हैं ।
धन ही के लोभ देस छाँडि परदेस बसे,
तात अरु मात के दरस हूँ न करे हैं ॥
ऊचे द्रुमसाल तहाँ लाँबे बट ताल जहाँ,
तिन मैं सिधात हैं न जीमैं नेकु डरे हैं ।
धन के अनुरागी हैं कहावत त्यागी आपु,
कासी बीच जए ते कमाऊ जाइ मरे हैं ॥ ४६ ॥

बिजै छन्द ।

गत मान कहावत गात सभै,
कछू जानै न बात गता गत है ।
दुति मान घने बलवान बडे,
हम जानत जोग मछे जत है ॥

पाहन के कहैं बीच्र सही सिव,
जानै न मूढ़ महाँ मत है ।
तुमहूँन विचार सुजान कहो,
इन मैं कहाँ पारवती पति है ॥ ५५ ॥

दोहरा ।

पाहन की पूजा करैं, जे हैं अधिक अचेत ।
भाँग न पते पर भखैं, जानत आप सुचेत ॥ ५८ ॥

दिज वाच— चौपई ।

सुन पुत्री तैं बात न जानै ।
सिव कहँ करि पाहन पहिचानै ॥
विप्रन कौं सभ ही सिर न्यावैं ।
चरनोदक लै माथ चढ़ावैं ॥ ७१ ॥
पूजा करत सकल जग इन की ।
निन्दुया करत मूढ़ तैं जिन की ॥
ए हैं परम पुरातन द्विजवर ।
सदा सराहत जिन कह नृपवर ॥ ७२ ॥

कुअरि वाच—

सुन मूरख दिज तैं नहिं जानी ।
परम जोत पाहन पहिचानी ॥
इन महिं परम पुरख तैं जाना ।
तजि स्यानप ह्वै गयो अयाना ॥ ७३ ॥

अड़िल ।

ए विद्या बल करहि जोग की बात न जानै ।
ए सुचेत करि रहहि हमनि आचेत प्रमानै ॥

कहा भयो जो भाँग भूलि भौंदू नहिं खाई।
हो निज तन ते विसम्भार रहत सभ लखत लुकाई॥८०॥
भाँग खाइ भट्ट भिड़हिं गजन के दाँत उपारहिं।
सिमटि साँग संग्रहहिं सार सन्मुख ह्वै झारहिं॥
तैं मूर्जी पी भाँग कहो का काज सवरि है।
हो ह्वै कै मृतक समान जाइ औंधे मुख परि है॥८१॥

भुजंग छंद।

सुनौ मिस्र सिच्छा इनौ कौं सु दीजै।
महाँ झूठ ते राखि कै मोहि लीजै॥
इतो झूठ कै औरनौ कौं दृढ़ावौ।
कहा चाम के दाम कै कै चलावौ॥८२॥
महाँ घोरई नरक के बीच जैहो।
कि चण्डाल की जोनि मैं अवतरै हो॥
कि टाँगे मरोगे बधे मृत्यु साला।
सनै बन्धु पुत्रा कलत्रान वाला॥८३॥
कहो मिस्र आगे कहा ज्वाब दैहो।
जवै काल के जाल मैं फाँसि जैहो॥
कहो कौन सो पाठ कै होत तहाँ ही।
तऊ लिंग पूजा करौगे उहाँही॥८४॥
तहाँ रुद्र ऐ हैं कि श्री कृष्न ऐ हैं।
जहाँ बाँधि श्री काल तोकौ चलै हैं॥
किधौं आनि कै राम ह्वै हैं सहाई।
जहाँ पुत्र माता न ताता न भाई॥८५॥
महाकाल जू को सदा सीस न्यैये।
पुरी चौदहूँ त्रास जाके त्रसैये॥

घनी बार लौं पन्थ चारौं भ्रमाना।
महाकाल ही कै गुरू कै पछाना ॥ ८९ ॥
मुरीद हौं उसी की वहै पीर मेरो।
उसी का किया आपना जीव चेरो ॥
तिसी का किया बालका मैं कहावौं।
उहो मोहि राखा उसी कौ घ्रिआवौं ॥ ९० ॥

चौपई।

दिज हम महाकाल कौ मानैं।
पाहन मैं मन को नहिं आनैं ॥
पाहन को पाहन करि जानत।
तातैं बुरो लोग ए मानत ॥ ९१ ॥
झूठा कह झूठा हम कह हैं।
जो सभ लोग मनैं कुररै हैं ॥
हम काहूँ को कानि न राखैं।
सत्य बचन मुख ऊपर भाखैं ॥ ९२ ॥
सुनु दिज तुम धन के लब लागे।
माँगत फिरत सभन के आगे ॥
अपने मन भीतर न लजावहु।
इक टक है हरि ध्यान न लावहु ॥ ९३ ॥

दिज बाच—

तब दिज बोला तैं क्या जानै।
सम्भू को पाहन करि मानै ॥
जौ इन कौ करि आन बखानै।
ताकौ ब्रह्म पातकी जानै ॥ ९४ ॥

जो इन कहँ कटु वचन उचारैं।
ताकौं महाँ नरक विधि डारैं॥
इनकी सदा कीजियै सेवा।
ए हैं परम पुरातन देवा॥ ६५॥

कुअरि बाच—

एकै महाकाल हम मानैं।
महाँ रुद्र कह कछू न जानैं॥
ब्रह्म बिसन की सेव न करहीं।
तिन ते हम कबहूँ नहि डरहीं॥ ६६॥
ब्रह्म बिसन जिन पुरख उचारो।
ताको मृत्यु जानियै मारो॥
जिन नर 'काल पुरख को ध्यायो।
ताके निकट काल नहि आयो॥ ६७॥
तिन के रिद्धि सिद्धि सभ घर मौ।
को विदि सभही रहत हुनर मौ॥
भाँति भाँति धन भरे भण्डारू।
जिन का आवत वार न पारू॥ ६६॥
जब तोको दिज काल सतै है।
तब तू को पुस्तक कर लै है॥
भगवत पढ़ो कि गीता कहि हो।
रामहि पकरि कि सिव कहँ गहि हो॥ १०१॥
जे तुम परम पुरख ठहिराए।
ते सभ डण्ड काल के घाए॥
काल डण्ड बिन बचा न कोई।
सिव बिरञ्च बिसनिन्द्रन सोई॥ १०२॥

जैसि जूनि इक दैत बखनियत।
त्यों इक जूनि देवता जनियत॥
जैसे हिन्दु आन तुरकाना।
सभहिन सीस काल जरवाना॥ १०३॥
कबहूँ दैत देवतन मारैं।
कबहूँ दैतन देव संहारैं॥
देव दैत जिन दोउ संहारा।
वहै पुरख प्रतिपाल हमारा॥ १०४॥

अड़िल।

इन्द्र उपिन्द्र दनिन्द्रहि जौन संहारयो।
चन्द्र कुबेर जलिन्द्र अहिन्द्रहि मारयो॥
पुरी चौदहूँ चक्र जवन सुत लीजियै।
हो नमस्कार ताही कौ गुरु करि कीजियै॥ १०५॥

दिज बाच— चौपई।

बहु बिधि बिप्रहि कौ समझायो।
पुनि मिस्रहि अस भाखि सुनायो॥
जे पाहिन की पूजा करि हैं।
ताके पाप सकल सिव हरि हैं॥ १०६॥
जे नर सालिग्राम कह स्यै हैं।
ताके सकल पाप का छै हैं॥
जो इह छाडि अवर कह स्यै हैं।
ते नर महाँ नरक महि जै हैं॥ १०७॥
जे नर कछु धन बिप्रहि दै हैं
आगे माँग दस गुनो लै हैं॥

जो विप्रन बिनु अन्तहि देही।
ताकी कछु सुफले नहि लेई ॥ १०८ ॥

कवियो वाच— अड़िल।

तबै कुअरि प्रतिमा सिव की कर मैं लई।
हसि हसि करि द्विज के मुख कसि कसि कै दई॥
सालिग्राम भे दांति फोरि सभ ही दीए।
हो छीनि छानि करि बस्त्र मिस्र के सभ लीए॥ १०६ ॥

कुअरि वाच—

कहो मिस्र अब रुद्र तिहारो कहँ गयो।
जिह सेवत थो सदा दांत छै तिन कियो॥
जिह लिंगह कौ जपते काल बितायो।
हो अन्त काल सो तुमरे मुख महि आयो॥ ११० ॥

कवियो वाच— चौपई।

ताको दरबु छीन जो लियो।
सो सभ दान द्विजन करि दियो॥
कह्यो मिस्र कछु चिन्त न कर हो।
दान दस गुनो आगे फर हो॥ ११ ॥

कुँअरि वाच— कवित्त।

औरन को कहतु लुटावो तुम खाहु धन,
आपु पहिती मैं डारि खात न बिसारि हैं।
बड़े ही प्रपञ्ची परपञ्चन को लिये फिरैं,
दिन ही मैं लोगन को लूटत बजार हैं॥
हाथ ते न कौड़ी देत कौड़ी कौड़ी माँग लेत,
पुत्री कै कहतु तासों करैं बिभचार हैं।

लोभता के जए हैं कि ममता के भए हैं ए,
सुमता के पुत्र कैधौं दरिद्रावतार हैं॥ ११२ ॥

चौपई।

जौ इन मन्त्र जन्त्र सिधि होई।
दर दर भीख न माँगै कोई॥
एकै मुख तें मन्त्र उच्चारैं।
धन सौं सकल धाम भर डारैं॥ ११४ ॥
राम कृष्न ए जिनै बखानै।
सिव ब्रह्मा ए जाहि प्रमानै॥
ते सभही श्री काल संहारे।
काल पाइ कै बहुरि सवारे॥ ११५ ॥
केते रामचन्द अरु कृष्ना।
केते चतुरानन सिव बिसना॥
चन्द सूरज ए कवन बिचारे।
पानी भरत काल के द्वारे॥ ११६ ॥

दोहा।

स्राप राछसी के दए, जो भयो पाहन जाइ।
ताहि कहत परमेस्र तैं, मन महिं नहीं लजाइ॥ ११८ ॥

दिज बाच—

चौपई।

तब द्विज अधिक कोप ह्वै गयो।
भरभराइ ठाढा उठि भयो॥
अब मैं इह राजा पै जै हौं।
तहीं बाँधि करि तोहि मँगै हौं॥ ११९ ॥

कवियो बाच—

तब तिन कुँअरि दि्जहि गहि लिया ।
डार नदी के भीतर दिया ॥
गोता पकरि आठ सै दीना ।
ताँहि पवित्र भली विधि कीना ॥ १२० ॥

कुमरि बाच—

कही कुँअरि पितु पहि मैं जै हौं ।
तैं मुहि डारा हाथ बतै हौं ॥
तेरे दोनों हाथ कटाऊँ ।
तौ राजा की सुता कहाऊँ ॥ १२१ ॥

दिज बाच—

इह सुनि बात मिस्र डरपयो ।
लागत पाइ कुअरि के भयो ॥
सोउ करौं तुम जु मुहि उचारो ।
तुम निजु जिय ते कोप निवारो ॥ १२२ ॥

कुमरि बाच—

तुम कहियहु मैं प्रथम अन्हायो ।
धन निमिति मैं दरब लुटायो ॥
पाहन की पूजा नहिं करियै ।
महाकाल के पाइन परियै ॥ १२३ ॥

कवियो बाच—

तब दिज महाकाल को ध्यायो ।
सरिता महिं पाहनन बहायो ॥
दूजे कान न किनहूँ जाना ।
कहा मिस्र पर हाल बिहाना ॥ १२४ ॥

१ ॥ २६६ ॥ ५१९४ ॥

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ।

बिनती ।

चौपई ।

धन्य धन्य लोगन के राजा ।
दुष्टन दाह गरीब निवाजा ॥
अखिल भवन के सिरजनहारे ।
दास जानि मुहि लेहु उबारे ॥ ३७६ ॥
हमरी करहु हाथ दै रच्छा ।
पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहै हमारा ।
अपना जान करो प्रतिपारा ॥ ३७७ ॥

हमरे दुष्ट सभै तुम घावहु ।
आपु हाथ दै मोहि बचावहु ॥
सुखी बसै मोरो परिवारा ।
सेवक सिख्य सभै करतारा ॥ ३७८ ॥

मो रच्छा निजु कर दै करियै ।
सभ बैरिन को आज संहरियै ॥
पूरन होइ हमारी आसा ।
तोरि भजन की रहै प्यासा ॥ ३७९ ॥
तुमहिं छाँडि कोइ अवर न ध्याऊँ ।
जो बर चहौं सु तुम ते पाऊँ ॥
सेवक सिख्य हमारे तारियहि ।
चुनि चुनि सत्रु हमारे मारियहि ॥ ३८० ॥

आपु हाथ दै मुझै उबरियै।
मरन काल का त्रास निवरियै॥
हूजो सदा हमारे पच्छा।
श्री असिधुज जू करियहु रच्छा॥ ३८१॥

राखि लेहु मुहि राखनहारे।
साहिब सन्त सहाइ प्यारे॥
दीनबन्धु दुष्टन के हन्ता।
तुम हो पुरी चतुर्दस कन्ता॥ ३८२॥

काल पाइ ब्रह्मा बपु धरा।
काल पाइ सिव जू अवतरा॥
काल पाइ कर बिसन प्रकासा।
सकल काल का किया तमासा॥ ३८३॥

जवन काल जोगी सिव कीयो।
वेद राज ब्रह्मा जू थीयो॥
जवन काल सभ लोक सवारा।
नमस्कार है ताहि हमारा॥ ३८४॥

जवन काल सभ जगत बनायो।
देव दैत्य जच्छन उपजायो॥
आदि अन्ति एकै अवतारा।
सोई गुरु समझियहु हमारा॥ ३८५॥

नमस्कार तिसही को हमारी।
सकल प्रजा जिन आप सवारी॥
सिवकन को सवगुन सुख दीयो।
सत्रुन को पल मो बध कीयो॥ ३८६॥

घट घट के अन्तर की जानत ।
भले बुरे की पीर पछानत ॥
चींटी ते कुञ्चर अस्थूला ।
सभ पर कृपा दृष्टि कर फूला ॥ ३८७ ॥

सन्तन दुख पाए ते दुखी ।
सुख पाए साधन के सुखी ॥
एक एक की पीर पछानै ।
घट घट के पट पट की जानै ॥ ३८८ ॥

जब उदकरख करा करतारा ।
प्रजा धरत तब देह अपारा ॥
जब आकरख करत हो कबहूँ ।
तुम मैं मिलत देह धर सबहूँ ॥ ३८९ ॥

जेते बदन सृष्टि सब धारैं ।
आप आपनी बूझि उचारैं ॥
तुम सभ ही ते रहत निरालम ।
जानत बेद भेद अर आलम ॥ ३९० ॥

निरङ्कार निर्बिकार नृलम्भ ।
आदि अनील अनादि असम्भ ॥
ताका मूढ़ उचारत भेदा ।
जाको भेव न पावत बेदा ॥ ३९१ ॥

ताको करि पाहन अनुमानत ।
महा मूढ़ कछु भेद न जानत ॥
महाँदेव को कहत सदा सिव ।
निरङ्कार का चीनत नहिं भिव ॥ ३९२ ॥

आपु आपुनी बुद्धि है जेती।
बरनत भिन्न भिन्न तुहि तेती॥
तुमरा लखा न जाइ पसारा।
किह विधि सजा प्रथम संसारा॥ ३९३॥

एकै रूप अनूप सरूपा।
रङ्क भयो राव कहीं भूपा॥
अण्डज जेरज सेतज कीनी।
उतभुज खानि बहुरि रचि दीनी॥ ३९४॥

कहूँ फूलि राजा ह्वै बैठा।
कहूँ सिमटि भयो सङ्कर इकैठा॥
सगरी सृष्टि दिखाइ अचम्भव।
आदि जुगादि सरूप सुयम्भव॥ ३९५॥
अब रच्छा मेरी तुम करो।
सिख्य उबार असिख्य संहरो॥
दुष्ट जिते उठवत उतपाता।
सकल मलेच्छ करो रण घाता॥ ३९६॥
जे असिधुज तव सरनी परे।
तिनके दुष्ट दुखित ह्वै मरे॥
पुरख जवन पगु परे तिहारे।
तिनके तुम संकट सभ टारे॥ ३९७॥
जो कलि कौ इक बार धिऐहै।
ताके काल निकट नहिं ऐहै॥
रच्छा होइ ताहि सभ काला।
दुष्ट अरिष्ट टरे ततकाला॥ ३९८॥

कृपा द्रिष्टि तव जाँहिं निहरिहो।
ताके ताप तनक महिं हरि हो॥
ऋद्धि सिद्धि घर मों सभ होई।
दुष्ट छाह छ्वै सकै न कोई॥३९९॥

एक बार जिन तुम्हैं सँभारा।
काल फाँस ते ताहि उबारा॥
जिन नर नाम तिहारो कहा।
दारिद दुष्ट दोख़ ते रहा॥४००॥

खड्ग केत मैं सरनि तिहारी।
आपु हाथ दै लेहु उबारी॥
सरब ठौर मों होहु सहाई।
दुष्ट दोख ते लेहु बचाई॥४०१॥७५५१॥

३०–दरबारी कवियों की रचनाएँ।

अब आगे बरनन करौं, कवि जि रहैं गुरु पास।
सुजस कवित्तन महिं करयो, लेत भए धन रास॥
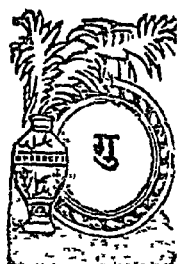
रुजी के दरबार में ५२ कवि रहते थे। यह गिन्ती घटती बढ़ती भी रहती थी। उन सब कवियों के नाम इस प्रकार हैं। अचल दास, अणी राय, अमृत राय, अली हुसेन, अल्लू, आलम शाह, आसासिंह, ईश्वरदास, उदयराय, कलुआ, कुवरेष, खान चन्द, गुणिया, गुरुदास, गोपाल, चन्द, चन्दन, जमाल, टहकन, दयासिंह, धर्मचन्द, धर्मसिंह, धन्नासिंह, ध्यानसिंह, नन्दलाल, नन्दसिंह, नानू, निश्चलदास, निहालचन्द, पिण्डीमल, बल्लभदास, बल्लू, बिध्रीचन्द, बृपा, ब्रजलाल, बुलन्द, मथुरादास, मदनगिरि, मदनसिंह, मद्दू, मल्लू, मानचन्द, मानदास, मालासिंह, मङ्गल, रामचन्द, रावल, रोशनसिंह, लक्खासिंह, सुक्खासिंह, सुकदेव, सुक्खू सुखिया, सुदामा, सुन्दर, सेनापति, सोहन, हंसराम, हीर।

यह सारे कवि प्रत्येक विषय पर सुन्दर कविता रचा करते थे। यह सारी कवितायें एक जगह इकट्ठी कर गुरुजी ने इस विशाल ग्रन्थ का नाम विद्याधर रख दिया। इस ग्रन्थ का बोझ नौ मन के लगभग था। आनन्दपुर के युद्ध में यह सारा ग्रन्थ बैरियों द्वारा लूट लिया गया

और इसके केवल ६२ पृष्ठ पीछे से कवि सन्तोसिंह जी को वहाँ से मिले थे जिनमें में से कुछ कवियों की रचनाएँ आगे दी जाती हैं। यह सब गुरु दरबार के वैभव का एक ऐतिहासिक प्रमाण हैं।

(१) कवि अमृत राय।

जाही ओर जाऊँ, अति आदर तहाँ ते पाऊँ,
तेरे गुन गन को अगाऊँ गनै सेस जू।
हीर चीर मुक्ता जे देति दिन प्रीति दान,
तिनै देख देख अभिलाखति धनेस जू॥
गुनन मैं गुनी कवि "अमृत" पढैया मेरो,
जब इनै हेरो प्यार कीजै अमरेस जू।
श्री गुरु गोविन्द सिंह छीर निधि पार भई,
कीरति तिहारी तुम्हैं कहि कै सन्देस जू॥

(२) कवि आलमशाह।

सोभा हूँ के सागर नवल नेह नागर हैं,
चल भीम सम, सील कहाँ लौं गिनाइयै।
भूम के बिभूखन, जु दूखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के मुख देखे ते अघाइयै॥
हिम्मत निधान, आन दान को बखानै?
जानै "आलम" तमाम जाम आठों गुन गाइयै।
प्रवल प्रतापो पातिशाहु गुरु गोबिन्द जी,
मोज की सी मौज तेरे रोज रोज पाइयै॥

(३) मङ्गल कवि।

मंगल कवि ने महाभारत के शल्य पर्व का भाषानुवाद किया था जो कि संवत् १७५३ वैशाख त्रयोदशी मंगलवार को समाप्त

हुआ था। कवि जी कहते हैं कि इस पर प्रसन्न हो गुरु जी ने उन्हें "अरब खरब" (अत्यन्त) धन दिया। इसी अनुवाद में यह आशीर्वाद भी लिखा हुआ है—

जौं लौं धरन प्रकास गिर, चन्द सूर सुर इन्द।
तौं लौं चिर जीवै जगत, साहिब गुर गोबिन्द॥

मङ्गल कवि जी जैसी अच्छी कविता ब्रज भाषा में करते थे वैसी ही सुन्दर कविता पञ्जाबी बोली में भी रचते थे।

ऊपर नरेस हूँ की, होहि सुभ वेस हूँ को,
कासमीर देस हूँ की, भरी आन धामरी।
बुनी कारीगर भारी, करी खूब गुलकारी,
पहिरैं भिखारी, मोल पावैं लाख दामरी॥
सीत हूँ को जीत लेति, ऐसी सोभा देह देति,
"मङ्गल" सुकवि ज्यों कन्हैया जी को कामरी।
स्याम, सेत, पीरी, लाल, जरद, सबज रङ्ग,
गुरूजी गोबिन्द ऐसी देति मौज पामरी॥ १॥
पूरन पुरख अवतार आनि लीन आप,
जाके दरबार मन चितवै सो पाइयै।
घटि घटि बासी अबिनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइयै॥
नौमे गुरु नन्द जग चन्द, तेग त्याग पूरो,
"मङ्गल" सु कवि कहि मङ्गल सुथाइयै।
आनन्द को दाता गुरु साहिब गोबिन्द राइ,
चाहै जौ आनन्द तौ आनन्दपुर आइयै॥ २॥

(४) सुदामा कवि ।

एक सङ्ग पढ़े अवन्तका सन्दीपन के,
सोई सुध आई तो बुलाइ बूझी बामा मैं।
पुञ्जो फल होति सौ असीस देतो नाथ जी कौ,
तन्दुल ले दीजै बाँध्र लीजै फटे जामा मैं॥
दीन दुआर सुनि कै दयार दरबार मिले,
एतो कुछ दीनो पाई अगनति सामा मैं।
प्रीत करि जाने गुरु गोबिन्द कै माने,
ताँते वहै तूँ गोबिन्द वहै यामन "सुदामा" मैं॥

(५) सुन्दर कवि ।

वेदन महिं स्याम सुनो, सिन्धु मरजादा,
मेरु मण्डल मही मैं, गुरुआई गुन गाए हो।
सरम के सागर, सपूतन के सिरमौर,
"सुन्दर" सुधाधर से सुन्दर गनाए हो॥
रत्नन में दान बानि बानी हरीचन्द की सी,
बिदत बिनय बडे बंस चल आए हो।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरन महिं ऐसे गुरू गोबिन्द कहाए हो॥

(६) कवि सेनापति ।

कवि सेनापति दरबारी कवियों में से एक प्रधान कवि हुए हैं। इन्हों ने श्री गुरुजी का अपनी आँखों देखा जीवन लिखा है। यह ग्रन्थ "श्री गुरु शोभा" के नाम से प्रसिद्ध है और ऐतिहासिक दृष्टि से एक बहु मूल्य रत्न है। एक दिन गुरुजी ने अपने कवियों को संस्कृत के चाणक्य नीति

ग्रन्थ का भाषानुवाद करने की आज्ञा दी और कहा कि जिसका अनुवाद अच्छा होगा उसको एक एक छन्द के बदले एक एक अशर्फ़ी इनाम दी जायगी। यह कठिन कार्य केवल कवि सेनापति ने ही किया प्रतीत होता है। और गुरुजी इनके अनुवाद से इतने प्रसन्न हुए कि एक एक अशर्फ़ी की जगह उन्होंने कविजी को पाँच पाँच अशर्फ़ियाँ इनाम में दीं। नीचे दो छन्द "श्री गुरु शोभा" में से लिये गये हैं—

सवैया।

काहू के मात पिता सुत हैं अरु,
काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन,
काहू के गेह विराजत नारी॥
काहू के धाम माँहि निधि राजत,
आपस मों करि हैं हित भारी।
होहु दयाल दया करि कै प्रभु,
गोविन्द जी मुहि टेक तिहारी॥३५॥८१४

लागी जौ लगन तौ मगन ऐसो भयो,
सौन आसौन नहिं जान जहुरे।
आप आपा गयौ आप आपी भयौ,
आप वीचार जब देख अहुरे॥
जोत सों जोत मिल एक ही रूप है,
एक ही एक नहीं और अहुरे।
टेक है सन्त बेअन्त महिमा,
महा नाम गोविन्द गोविन्द कहुरे॥५७॥८२६

(७) कवि हंसराम ।

कवि हंसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व्व का भाषानुवाद किया था जिस पर उन्हें ६००००) रु० इनाम मिला जैसा कि कविजी ने स्वयम् लिखा है—

प्रथम कृपा करि राख कर, गुरू गोविन्द उदार।
टका करे बख्सीस तब, मोकौं साठ हजार॥

कवि हंसराम भी गुरु दरबार के प्रधान कवियों में से हुए हैं।

अवध अन्हाए कहाँ, तिलक बनाए कहाँ,
द्वारका छपाए कहाँ तन ताइयति है।
कोविद कहाए कहाँ, वेनी के मुण्डाए कहाँ,
काशी के बसाए कहाँ लाहू लखियति है॥
मोहन मनाए कहाँ, भूपत रिझाए कहाँ,
कहाँ "हंसराम" जो धरा मैं धाइयति है।
चारहुँ बरन ताँके हरन कलेश,
गुरु गोविन्द के चरन मुकति पाइयति है॥ १॥

चारों चक्र सेवैं गुरू गोविन्द तिहारे पाइ,
मेरे जानै आज तू ही दूजो करतार है।
प्रबल प्रचण्ड खण्ड खण्ड महिमण्डल मैं,
साचो पातसाहु जाको साचो सिर भार है॥
कामना के दान बान जाको "हंसराम" कहै,
परम धरम देखै विबध विचार है।
परम उदार पर पीर को हरन हार,
कौन जानै कौनै भाँति लीनो अवतार है॥ २॥

(८) हीर कवि ।

हीर कवि एक महान पण्डित होते हुए भी अत्यन्त द्रव्यहीन थे। कभी कभी भोजन वस्त्र से भी तङ्ग रहते थे। इन्होंने श्री गुरु गोविन्द सिंह जी का यश सुना तो आनन्दपुर पहुँचे और गुरु दरबार में यह कवित्त पढ़ा—

पास ठाढ़ौ झगरत झुकति दरेरै मोहि,
बात न करन पाउँ महा बली बीर सों।
ऐसो अरि विकट निकट बसै निस दिन,
निपट निशङ्क सच घेरै फेरि भीर सों॥
दारिद कपूत तेरो मरन बन्यो है आज,
करिकै सलाम विदा हूजै कवि "हीर" सों।
नातरु गोविन्द सिंह चिकल करैगो तोहि,
टूक टूक ह्वै है गाढ़े दाननि के तीर सों॥

इस कवित्त के समाप्त होते ही श्री गुरुजी ने कवि जी को सवा लाख रुपया दान में दिया और उन्हें अपने दरबारी कवियों की मण्डली में शामिल कर लिया।